हमारी राष्ट्रीय समस्याएं

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-15-3

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : एक सौ तीस रुपये मात्र

आवरण : गौरी शंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

HAMARI RASHTRIY SAMASYAEN (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 130

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

प्रकाशकीय

भारत में विश्व की तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियाँ—विश्वव्यापी ईसाई शक्ति, विश्वव्यापी इस्लामी शक्ति एवं कम्यूनिज्म की शक्ति आज धर्मप्राण भारत को ही शिकार का लक्ष्य बनाकर बड़े भीषण रूप से क्रियाशील हैं। अतः भारत एवं भारतीयता की रक्षा हेतु विश्वव्यापी हिन्दुत्व की शक्ति के महाजागरण की आवश्यकता है। विदेशी षड्यन्त्रों से त्राण पाने के लिये वे सभी हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा करते थे—'हे हिन्दू! तू बिन्दु-बिन्दु बनकर मत बिखर। तू बिन्दु-बिन्दु मिलकर सिंधु बन, वेग से बह, तब तुम्हारी धारा को कोई मोड़ नहीं सकेगा। हर हिन्दू जो आया है, उसको एक दिन मरना है, किन्तु हिन्दू समाज को मरना नहीं है। इसलिये हे हिन्दू! तू बिन्दु का जीवन छोड़कर सिंधु का जीवन जी। हे हिन्दू! तू सिंधु बन जा। धारा को अमर बना जा। हिन्दुओं के संगठित रहने से ही देश सुरक्षित रह सकता है'—ऐसा प्रो. ओबराय का स्पष्ट अभिमत था। डॉ. ओबराय का कहना था हिन्दुओं को बचना है तो डॉ. एनी बीसेंट की बात हर हिन्दू को गांठ बांध लेनी चाहिए—कि 'हिन्दुत्व के बिना, भारत का कोई भविष्य नहीं, कोई अस्तित्व नहीं....। जिस प्रकार भारत में प्रश्रय पाने के लिए पारसी, यहूदी, इसलाम व ईसाई समाज आया वैसे वापस चला जाए तो भी भारत-भारतवर्ष रहेगा, पर हिन्दुत्व मिट गया तो भारत मिट जाएगा। क्योंकि हिन्दुत्व ही भारतवर्ष का मूल है.... और इसकी रक्षा हिन्दुओं को ही करनी पड़ेगी।' और हिन्दुओं में जो जयचन्द की परम्परा निभा रहे हैं, तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत होकर वे भविष्य में, इतिहास के कूड़ेदानी में फेंक दिये जायेंगे जैसा कि अतीत के जयचन्द, मानसिंह आदि को कोई नहीं पूजता, पृथ्वीराज और राणाप्रताप सर्वत्र पूजित हैं।

यूरोप में राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई है। भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। भारत धर्म प्रधान देश है। पश्चिमी एवं अरब राष्ट्र मजहब प्रधान देश हैं। मजहब में एक पूजा पद्धति, एक विश्वास एक पैगम्बर या ईश्वर का पुत्र या दूत या एक आचार्य होता है। धर्म समग्र जीवन और पूरे चराचर से सम्बन्धित है, जिसमें अनेकों पूजा पद्धतियों, अनेकों विश्वास और आचार्यों का समावेश हैं। अंग्रेजों ने षड्यन्त्रपूर्वक हिन्दू धर्म के समकक्ष इसलाम और ईसाइयत को एक समान धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया। स्वाधीनता के पश्चात् यह स्थिति बदलनी चाहिये थी। पर जिनको प्रथम प्रधानमन्त्री बनने का अवसर मिला वे भारतीय पम्परा से, धर्म व संस्कृति से कटे होने के कारण और सेमिटिक परम्परा में, यूरोपीय परम्परा में, मुगलों की परम्परा में ढले होने के कारण उन्होंने तो इसलाम और ईसाइयत को हिन्दू धर्म के समकक्ष ही नहीं रखा वरन् उन्हें और अधिक वरीयता दे दी और उन्हें संवैधानिक

विशेष-विशेष सुविधाएँ एवं संरक्षण दे दिया और सेकुलर (Secular) शब्द की व्याख्या पंथ निरपेक्ष न कर धर्मनिरपेक्ष कर दी। भारतीय परम्परा में धर्मनिरपेक्ष शब्द बनता ही नहीं। यूरोप में इस शब्द की उत्पत्ति हुई। और वहाँ भी सेकुलर शब्द का अर्थ पंथ निरपेक्ष या सर्वपंथ समभाव था। वहाँ शासन पंथ के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा, यही इसका आशय था। पर अपने देश में उलटी गंगा बहाते हुए इसे धर्मनिरपेक्ष कर दिया गया। और यह धर्मनिरपेक्षता हिन्दुओं पर लागू है—मुसलमान और ईसाई पर नहीं। संविधान और व्यवहार में शासन हिन्दू धर्मनिरपेक्ष और मुस्लिम एवं ईसाई पंथ सापेक्ष चल रहा है। इस प्रकार अपने ही देश में, अपने ही देश की मूल चेतना धर्म और संस्कृति की उपेक्षा होने से और इसलाम एवं ईसाई पंथ को नाजायज सुविधा, संरक्षण और बढ़ावा मिलने का दुष्परिणाम यह हो रहा है कि जो इसलाम-ईसाइयत ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का विरोधी, पर्यावरण का विरोधी, नारी विरोधी, अपने ही पंथ के अन्य सम्प्रदाय को भी काफिर, हिडेन मानने वाले, उनसे खून की होली खेलने वाले अन्यों के विषय में तो कहना ही क्या इतिहास साक्षी है, ये मानवतावादी कहला रहे हैं और हिन्दू जो ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का सम्मान करने वाले, सारे चराचर को अपने आलिंगन में बाँधने वाले को साम्प्रदायिक कहा जा रहा है, इससे देश में अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई। अतः हिन्दू धर्म और संस्कृति और सेमिटिक पंथों के वास्तविक रूप और हिन्दू धर्म-संस्कृति की उपेक्षा से उत्पन्न संकटों से सम्बन्धित लेख इसमें शामिल किये गये हैं।

स्वाधीन भारत के अपने मूल संस्कृति से निरन्तर कटते चले जाने से जो देश के वासियों का चारित्रिक पतन हुआ और सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला हुआ इससे मिलावट की समस्या उभरी। डालडा (वनस्पति तेल) में गाय की चर्बी मिलायी जा रही थी। उसका आपने सफल भण्डाफोड़ किया। इस संदर्भ में आपने जनता के नाम अपील और लेख तैयार किया।

इसमें डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के प्रथम, तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड से लेख सम्मिलित हैं। परम श्रद्धेय संत अमृतरामजी महाराज 'राम स्नेही' ने पुस्तक का व्ययभार वहनकर मुझे आशीर्वाद दिया है। प्रभु से प्रार्थना है वे सदैव मेरे पर कृपा दृष्टि बनाए रखें। हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स का प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग एवं परमपूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन एवं पार्श्वभूमि

Constant vigilance is the price of eternal liberty 'सतत जागरूकता स्वाधीनता की कीमत है' इस अर्थ की एक अंग्रेजी कहावत है। सामान्य दिखलाई देने वाली गतिविधियों के पीछे कई बार बड़े-बड़े रहस्य छिपे होते हैं। स्थान-स्थान पर देश के विभिन्न भागों में विभिन्न रूपों में मिशनरी गतिविधियां चलती रहती हैं। ऊपर से उनका एक रूप दिखलाई देता है। अधिक छानबीन करने पर उनके ताने-बाने जागतिक स्तर पर फैले दिखलाई देते हैं। जिनके पीछे एक जागतिक योजना कार्यरत है। उस योजना के उद्देश्यों को समझे बिना मिशनरी गतिविधियों का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकेगा तथा उस संदर्भ में देशहित में उचित नीति का निर्धारण असंभव होगा। इसी हेतु को मन में रखकर मिशनरी गतिविधियों के स्वरूप विश्लेषण का यह प्रयास है।

देश के प्रख्यात गांधीवादी विचारक स्व. श्री जे.सी. कुमारप्पा ने जो स्वयं एक अच्छे ईसाई थे, कहा है कि, पश्चिमी देशों की सेनाओं के चार अंग हैं—1. भूदल, 2. नौदल, 3. वायुदल, और 4. चर्च (The Western Nations have four arms : The Army, The Navy, The Air Force and The Church)

उपरोक्त सेना के प्रथम तीन अंग ही स्पष्ट दिखलाई देते हैं किन्तु चर्च अपने स्वरूप के कारण उजागर नहीं होता। ऐसे ही किसी संदर्भ में रूसी तानाशाह स्टालिन ने चर्च को 'अदृश्य सेना' की संज्ञा दी थी। उसका अनुभव था कि 'चर्च' का सहयोग या विरोध भी विशिष्ट स्थितियों में अपना अर्थ रखता है।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लॉर्ड पॉमस्टेन ने सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर के दो वर्ष पश्चात् सार्वजनिक रूप से कहा, 'यह हमारा कर्तव्य ही नहीं किन्तु हमारे हित में भी है कि हम समूचे भारत में यथाशक्ति ईसाइयत का प्रचार करें।' इसी की पुष्टि में तत्कालीन स्टेट सेक्रेटरी फॉर इंडिया, लार्ड हेलिफॉक्स ने कहा था कि, 'नया बनने वाला प्रत्येक ईसाई इस देश को जोड़ने वाली एक अतिरिक्त कड़ी तथा साम्राज्य को बल प्रदान करने वाला एक शक्ति स्रोत है।' (नियोगी समिति की रिपोर्ट, पृष्ठ 40) भारत में ब्रिटिश शासनकाल में विदेशी शासन की नीति उपरोक्त कारणों से मिशनरी गतिविधियों को सर्वतोपरि प्रोत्साहित करने की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में भारत में हिन्दू धार्मिक जागृति की लहर आई। सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना, 1893 में हुए शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द की अभूतपूर्व धार्मिक विजय तथा 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना आदि का उस समय के धार्मिक जगत् में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान था। दूसरी ओर, बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यानी 1905 ई. में शुरू हुए जापान युद्ध में जापान द्वारा रूस, जो कि एक यूरोपियन शक्ति था, की पराजय एक ऐसी घटना थी जिन्होंने एशियाई देशों में स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास को जागृत किया कि वे धर्म, संस्कृति तथा शक्ति संपन्नता में पाश्चात्य राष्ट्रों के समकक्ष ही नहीं अपितु श्रेष्ठ हैं। अत: वे पश्चिमी देशों की गुलामी से स्वयं को मुक्त कर सकते हैं। इससे एशियाई देशों की सोयी राष्ट्रीयता जाग उठी। स्वाधीनता की भावना का उदय हुआ तथा प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी गतिविधियों के रूप में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का शंखनाद गूंज उठा। बंगाल का क्रान्तिकारी आंदोलन आने वाले युग की चेतावनी थी कि पश्चिमी साम्राज्यवाद के दिन अब गिने-चुने ही हैं। इन घटनाओं ने पश्चिमी देशों को अपने भविष्य के बारे में झकझोर दिया। पश्चिमी देशों के मिशनरी संगठन भी इसी चिंता के शिकार हुए तथा इस स्थिति में अपने भविष्य के कार्य की नीति-निर्धारण हेतु आतुर थे। जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन, जिसे इक्युमिनिकल मूव्हमेंट कहा जाता है, इसी चिंता की उपज था।

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन की मूल प्रेरणा

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन का प्रारंभ सन् 1900 के अप्रैल माह में संयुक्त राज्य अमेरीका के न्यूयार्क नगर में संपन्न हुई 'इक्युमिनिकल कान्फ्रेंस' है। बाइबिल में इक्युमिनिकल शब्द 'चर्च के राष्ट्रों से ऊपर' इस अर्थ में जागतिक जिसे अंग्रेजी में Supra National कहा जा सकता है, से किया है। जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन राष्ट्रों की सीमाओं को भेदकर एक जागतिक ईसाई समाज को गठित करना चाहता है।

मिशनरियों के न्यूयार्क में संपन्न उपरोक्त विश्व सम्मेलन में 3000 मिशनरी कार्यकर्ता एकत्रित हुए थे। इस सम्मेलन का निश्चय यह रहा कि इस समय तीव्रगति से संपूर्ण जगत् के ईसाईकरण का प्रयास करना अपना कर्तव्य है तथा 'इसी पीढ़ी में संपूर्ण जगत् का ईसाईकरण' इस वाक्य में प्रकट किया गया। इसी संकल्प की प्रतिध्वनि दो वर्ष पश्चात् 11 से 18 दिसंबर 1902 में मद्रास में संपन्न हुई अखिल भारतीय दसवीं वार्षिक सभा के प्रस्ताव में सुनाई दी, जिसमें प्रत्येक मिशनरी सोसायटी को इसी पीढ़ी में अपने क्षेत्र के संपूर्ण ईसाईकरण हेतु दृढ़ उद्योगपूर्वक प्रयास करने को कहा गया।

ए हिस्ट्री ऑफ द नेशनल ख्रिश्चियन काउन्सिल ऑफ इन्डिया
सन् 1914-1964 पृष्ठ 2 व 3

उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ 3 व 4 पर निम्नलिखित उल्लेख पाया जाता है—

भारत में जल्दी की भावना विभिन्न कारणों से थी। एक था बढ़ता हुआ राष्ट्रवाद जो 1905 में जापान की रूस पर विजय के बाद विशेष शक्तिशाली हुआ था। जो इस बात की चेतावनी थी कि ब्रिटिश साम्राज्य, जिसका संरक्षण ईसाई मिशनों को प्राप्त था, हमेशा के लिए नहीं रह सकता था। उसी के साथ मिशनरियों के कार्य से वृद्धिगत हिन्दू प्रतिशोध जो सन् 1875 में स्थापित आर्य समाज तथा सन् 1897 में स्थापित रामकृष्ण मिशन इन दोनों के द्वारा परिलक्षित हो रहा था। इन सबके रहते हुए भी शीघ्रता की भावना का सर्वप्रमुख कारण चर्च की परिगणित नीतियों में धर्मान्तरण की बृहत् संभावना का पता होना था। जिससे चर्च में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यही समय मिशनों के लिए निर्णायक अवसर है। इसी को स्पष्ट करते हुए उक्त पुस्तक में आगे लिखा है—सन् 1870 की दशाब्दी में तेलंगाना में सामूहिक धर्मान्तरण हुए जिसका असर संपूर्ण भारत के मिशनरी जगत् के लिए विजय-दुंदुभि के समान हुआ। तेलंगाना क्षेत्र में प्रोटैस्टैंट ईसाइयों की संख्या सन् 1871 में 13,000 थी जो सन् 1900 में बढ़कर 2,02,000 हुई। पंजाब के चुहड़ा जाति में और उत्तरप्रदेश की भंगी जाति में तथा महाराष्ट्र की मांग जाति में सामूहिक धर्मान्तरण के प्रयासों को तीव्र किया गया। 1905 ई. में असम के खासी लोगों में धर्मान्तरण किया गया जिसके फलस्वरूप ईसाइयों की संख्या हजारों में बढ़ी। इसी के कुछ समय बाद उत्तर भारत में चमार जाति में धर्मान्तरण की लहर फैली। इन उत्तेजक घटनाओं ने चर्च की एकता का आह्वान किया। इन नई संभावनाओं का पूर्ण लाभ उठाना तभी संभव था जब कि सभी मिशन तथा चर्च आपस में सहयोग करते।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि एक ओर भारत में धार्मिक तथा राष्ट्रीय जागरण के उभार के कारण पश्चिमी साम्राज्यवादी देश तथा उनकी छत्रछाया में पलनेवाले मिशनरी संगठन हिल उठे थे तथा साथ ही भारत की पिछड़ी जातियों के धर्मान्तरण में प्राप्त सफलता से वे आशान्वित भी थे कि इन पिछड़ी जातियों के धर्मान्तरण को तीव्र गति से पूर्ण कर उनको अपने साम्राज्य के रक्षा-दुर्गों में परिणत किया जा सकता है। यह अवसर अधिक दिनों तक नहीं रहने वाला था। क्योंकि यह बात भी स्पष्ट होती जा रही थी कि पश्चिमी साम्राज्य से प्राप्त संरक्षण के दिन अब मिशनरी संस्थाओं के लिए अधिक समय तक नहीं रहने के हैं। इस कार्य को शीघ्रता से संपन्न करने हेतु मिशनरी संगठनों के संसाधन तथा व्यक्तियों के अधिकतम लाभप्रद समायोजन हेतु उनमें परस्पर सहकार्य की आवश्यकता थी

जिससे उनका अपव्यय टाला जा सके तथा उनसे अधिकतम कार्यलाभ संपादित हो। ईसाई ऐक्य आन्दोलन की मूल प्रेरणा यही थी।

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन का प्राथमिक इतिहास : नेशनल मिशनरी काउन्सिल की स्थापना

धार्मिक दृष्टि से ईसाई जगत् दो प्रधान गुटों में बंटा रहा है। कैथलिक तथा प्रोटैस्टैंट। इनमें से कैथलिक संप्रदाय रोम के पोप के एकमुखी नियंत्रण में होने से अधिक संगठित तथा संख्या की दृष्टि से स्वयं में बहुत बड़ा तथा साधन-संपन्न है। इसके विपरीत प्रोटैस्टैंट समुदाय धार्मिक मतभेदों को लेकर कई छोटे-मोटे फिरकों में बंटा होने से कैथलिकों की तुलना में वह धर्मान्तरण कार्य में अपनी पूरी शक्ति नहीं जुटा पाता। इंग्लैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरीका में प्रोटैस्टैंट समुदाय का बाहुल्य होने के कारण उनको साम्राज्य सत्ता का वरदहस्त विशेषकर उन देशों के प्रोटैस्टैंट मिशनरी संगठनों पर था। यूरोपीय इतिहास के पूर्ववर्ती काल में रोम के पोप, जो कि कैथलिक संप्रदाय के धार्मिक पीठ के प्रधान होते हैं, यूरोपीय सत्ताओं के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप कर राजनीतिक उलट-फेर कराते थे। इस कारण रोमन कैथलिक संप्रदाय की ओर वे शंका भरी नजरों से देखते थे। इस कारण भी पश्चिमी राष्ट्र रोमन कैथलिक चर्च से सहयोग करने से कतराते थे। प्रोटैस्टैंट ईसाई जगत् रोम के पोप की धार्मिक सत्ता को नहीं मानते थे तथा पोप भी अन्य ईसाई संप्रदायों की सत्ता को अमान्य करता था। इस स्थिति में एशियाई देशों में बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण प्रयासों में सफलता तभी संभव थी जबकि प्रोटैस्टैंट मिशनरी संगठनों में आपसी तालमेल तथा प्रयासों में एकसूत्रता हो। इंग्लैण्ड के एडिनबर्ग में 1910 ई. में सम्पन्न हुआ प्रथम जागतिक मिशनरी सम्मेलन इस दिशा में प्रथम महत्त्वपूर्ण कदम था।

एडिनबर्ग सम्मेलन में विभिन्न चर्चों से 1355 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। जिनमें से 17 को छोड़कर सब यूरोप तथा अमरीकी देशों से आये थे। यद्यपि सभी प्रतिनिधि विभिन्न चर्चों से आये थे, फिर भी वे चर्चों के प्रतिनिधि न होकर विभिन्न मिशनरी सोसायटियों का प्रतिनिधित्व करते थे। उनमें मिशनरी बोर्डों के सेक्रेटरी तथा ख्यातिप्राप्त चर्च नेता सम्मिलित हुए थे।

यह पहले ही निश्चित हो चुका था कि सम्मेलन में धर्मशास्त्र संबंधी आपसी मतभेदों की चर्चा न होकर मिशनों के कार्यक्षेत्रों में परस्पर सहकार्य की संभावना, आपसी टकराहट को टालने की दृष्टि से धर्मप्रचार क्षेत्रों का बंटवारा, संसाधनों को जुटाना तथा समन्वय आदि विषयों पर चर्चा होगी। एडिनबर्ग सम्मेलन में घोषणा की गई 'समय अल्प है, अपने सुनहरे अवसर के दिन सीमित हैं।' बौद्धिक, नैतिक तथा सामाजिक क्रान्तियां अपूर्वगति से जन्म ले रही है। अविलम्ब, चर्च को जो

देश अभी ईसाई धर्म के लिए खुले हैं, उन देशों में धर्मप्रचार का दायित्व स्वीकार करना चाहिये। राष्ट्रों के ईसाईकरण द्वारा साम्राज्यों के ईसाईकरण का लक्ष्य अपने सन्मुख है। यह कर्म अभी करना होगा। अति शीघ्र।

दि डिसिसिव्ह अवर ऑफ ख्रिश्चियन मिशन्स, लन्दन, पृष्ठ 146

उपरोक्त घोषणा केवल शब्दों में ही प्रगट नहीं की गई वरन् ऐसे कार्य को आगे चलाने के लिए एक संचालन समिति—कंटीन्युएशन कमेटी नियुक्त की गई जिसमें सभी मिशनरी सोसायटियों को प्रतिनिधित्व दिया गया। एक अमरीकी सज्जन श्री जॉन. आर. मोट—जो मिशनरी नहीं थे तथा उन दिनों वर्ल्ड स्टूडेन्ट्स ख्रिश्चियन फेडरेशन के मंत्री थे, को इस समिति के अध्यक्ष के स्थान पर चुना गया, तथा समिति के मंत्रीपद पर एक अंग्रेज सज्जन श्री जे.एच. ओल्डहैम को नियुक्त किया गया। समिति को निश्चित सूचनाएं दी गई थी जिस आधार पर उसे एक स्थायी अंतरराष्ट्रीय संगठन का निर्माण करना था। समिति के कार्य संचालन हेतु वित्तीय साधनों का प्रावधान किया गया। समिति के कार्यालय न्यूयार्क तथा लंदन शहर रखे गये।

समिति ने अध्यक्ष चुनने के बाद श्री जॉन. आर. मोट से आने वाले वर्ष में प्रमुख मिशन क्षेत्रों का प्रवास करने की विनती की। इस प्रवास में उनके साथ रहे एक भूतपूर्व मिशनरी तथा उन दिनों यंग मैन ख्रिश्चियन एसोसिएशन के मंत्री श्री शेरवुड एड्डी द्वारा 25 जुलाई, 1912 ई. को श्री जे.ई. टसी को लिखे पत्र के अनुसार श्री मोट को इस प्रवास में सुविधा तथा महत्त्वपूर्ण संपर्कों में सहायता करने की दृष्टि से अमरीकी तथा ब्रिटिश सरकारों ने पत्र दिए थे जिससे एशियाई देशों की सरकारों के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मिशनरी हितों की दृष्टि से आवश्यक व्यवहार किए जा सकें। पत्र के महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं—

"Moreover Mr. Mott is going with a letter from the American and British Government, which will enable him to deal with men prominent in the Governments of Asia regarding questions of vital concern to the course of missions. On his return from his tour he will place the letter at the disposal of the missionary societies on both sides of the Atlantic. The results of those investigations and discussions will be in the direction of the united constructive policy for more effective spread of Christianity in these nations."

ए हिस्ट्री ऑफ दि नेशनल ख्रिश्चियन काउन्सिल ऑफ इंडिया, पृष्ठ 9

पत्र का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—'इसके अतिरिक्त श्री मोट अमरीकन तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त पत्रकों को साथ ले जा रहे हैं, जो उन्हें एशियाई सरकारों के प्रमुख लोगों से विचार-विमर्श में सहायक होंगे। जो मिशनों की

लक्ष्यपूर्ति की दृष्टि से अतिमहत्त्वपूर्ण होंगे। प्रवास से लौटने पर वे अपने अन्वेषण तथा विचार विमर्श के निष्कर्ष अटलांटिक महासागर के दोनों ओर की मिशनरी सोसायटियों को प्रस्तुत करेंगे। जिससे ईसाइयत का प्रसार इन देशों में अधिक प्रभावी ढंग से करने की सबकी रचनात्मक नीति निर्धारित की जा सके।'

यह प्रवास नवम्बर, 1912 के मध्य में मद्रास से प्रारम्भ हुआ तथा क्रिसमस के अन्त समय में कलकत्ते में समाप्त हुआ। प्रवास के अन्तर्गत क्षेत्रीय बैठकें मद्रास, बंबई, जबलपुर, इलाहाबाद, लाहौर और कलकत्ता में हुई। अन्तिम स्थान का चुनाव राष्ट्रीय बैठक के लिए किया गया था।

जॉन आर. मोटे की इस यात्रा का सही मूल्यांकन इस समय हुई कार्य संबंधी विभिन्न बैठकों के विवरण से करना सही नहीं होगा। एक के बाद एक हुई बैठकों से भी इस यात्रा का महत्त्व कहीं अधिक था। ऐसा कहा जा सकता है कि यह एक तरह से मान्यता प्राप्त विश्व नागरिक तथा चर्च नेता द्वारा भारत की राजसी यात्रा थी। ब्रिटिश तथा अमरीकी सरकारों से पत्रों के कारण उनके लिए सब जगह के दरवाजे खुले थे और राज्यकर्ता तथा चर्च के अधिकारी अपनी परिपाटियों की चिन्ता न कर उनसे मिलते थे। मद्रास के गवर्नर ने उनके तथा रोमन कैथलिक चर्च के आर्चबिशप की भेंट का आयोजन ईसाई ऐक्य के प्रश्न को लेकर किया था। सम्भवत: यह भारत में रोमन कैथलिक तथा प्रोटैस्टैंटों के बीच प्रथम बातचीत थी। दो मेट्रोपॉलियन—एम. बिशप और सीरियन चर्च के कई प्रतिनिधि केरल में व्याग्र विभाजन को कम करने में उनसे सहायता पाने हेतु कलकत्ते तक गए थे। भारत में ऐग्लिकन चर्च के मेट्रोपॉलियन अपनी महत्त्वपूर्ण व्यस्तताओं को छोड़कर जॉन आर. मोट की कलकत्ता की बैठक में उपस्थित हुए थे। वे इस बात में किसी हद तक सफल भी हुए थे। जिससे कि ईसाई मत-मतांतरों के सभी नेता, जो परस्पर कहीं दूर थे, एकत्र लाए जा सकें। सीरियन ऑर्थोडोक्स चर्च केरल के प्रमुख तथा दक्षिण भारत में सातवेशन आर्मी के प्रमुख वार्ता की टेबल पर पहली बार आमने-सामने आकर ईसाई धर्म प्रचार के कार्य में परस्पर सहकार्य के प्रश्न पर विचार-विमर्श करते देखे गए।'

उपरोक्त पुस्तक पृष्ठ 9 व 10 :

इन बैठकों में दलित वर्गों में तथा वनवासी जातियों में चल रहे सामूहिक धर्मान्तरणों की चर्चा की गई। इन अवसरों का उपयोग करने पर यह आवश्यक पाया गया कि मिशन क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया जाए जिससे यह मालूम हो कि कहां, किस समय तथा कितनी शक्ति की आवश्यकता होगी। जैसे मद्रास की बैठक में कहा गया कि विशिष्ट शहरों तथा ग्रामों पर केन्द्रीकृत (कान्सन्ट्रेटेड) प्रहार किया जाए तथा बड़े शहरों में सभी मतों के ईसाई मिला-जुला प्रयास करें।

कलकत्ता में 18 से 21 दिसम्बर, 1912 में सम्पन्न अखिल भारतीय सम्मेलन में 58 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे जो भारत के सभी क्षेत्रों से आये थे। सम्मेलन में कहा गया—"It is doubtful how long the door will remain open. Strong influances are tending to close it. The Christian forces ought to press through it with all their might while it is still open.' अर्थात् अवसर का द्वार कब तक खुला रहेगा कहा नहीं जा सकता। अतः ईसाई शक्तियों को अपनी संपूर्ण शक्ति से उसके खुला रहते शक्ति भर आगे बढ़ना चाहिए।'

उपरोक्त पुस्तक पृष्ठ 12 व 13

उपरोक्त बैठक के बाद बंगाल, बिहार, उड़िसा, मुंबई, पंजाब, मध्य भारत, ऊपर के प्रांत, मद्रास तथा ब्रह्मदेश की प्रान्तीय समितियां 1913 ई. में गठित हुई। इस तरह 'नेशनल मिशनरी कौन्सिल' बैठक की सिद्धता की। 4, 5 फरवरी, 1914 की बैठक में, जो कलकत्ता में सम्पन्न हुई, नेशनल मिशनरी कौन्सिल गठित की गई। इसी का नामान्तरण होकर उसे बाद में नेशनल ख्रिश्चियन कौन्सिल ऑफ इंडिया कहा जाने लगा।

इन्टरनेशनल मिशनरी काउन्सिल तथा वर्ल्ड काउन्सिल आफ चर्चेस की साधना

एडिनबर्ग के जागतिक सम्मेलन द्वारा नियुक्त संचालन समिति को दिए निर्देशों के अनुसार उसे एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण करना था। इस संगठन के निर्माण में प्रथम विश्वयुद्ध ने अड़ंगे निर्माण किए। फिर भी अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्कों को बनाया गया। अंत में 1921 ई. में सम्पन्न सभी प्रतिनिधियों की सभा में 'इन्टरनेशनल मिशनरी काउन्सिल' का निर्माण हुआ।

एडिनबर्ग सम्मेलन के परिणामस्वरूप एक नई कल्पना साकार हुई। ईसाई धर्म में व्याप्त मत-मतांतरों के रहते हुए भी सामान्य लाभ हेतु व्यावहारिक धरातल पर ऐक्य प्रयास सफल हुआ। उक्त सम्मेलन की योजना में यह बात मान ली गई थी कि उसमें ईसाई-मत में व्याप्त मत-मतांतरों पर चर्चा नहीं होगी। सम्मेलन में निरपवाद रूप से यूरोपीय तथा अमरीकी ही सम्मिलित थे, जो उन देशों के विभिन्न मिशन बोर्डों के सेक्रेटरी तथा चर्च नेता थे। स्थायी ईसाई ऐक्य हेतु यह आवश्यक था कि व्यावहारिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु सम्मिलित प्रयासों के चालू रहते हुए ही ईसाइयत में व्याप्त मत-मतांतरों के निराकरण द्वारा सामंजस्य स्थापना हेतु भी स्वतंत्र प्रयास किए जाएं। इसके परिणामस्वरूप जागतिक ईसाई ऐक्य हेतु दो स्वतंत्र किन्तु परस्पर पूरक आन्दोलनों का जन्म हुआ।

प्रथम आन्दोलन था 'लाइफ एण्ड वर्क'। इसके प्रणेता उप्पसलासा (स्वीडन) के लूथरान आर्चबिशप सीडर वूलीम थे। इस आन्दोलन का हेतु विभिन्न चर्चों

की ईसाईमत के आधार पर विद्यमान सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रश्नों पर प्रत्यक्ष सहकार्य हेतु प्रेरित करना था। इस अर्थ में यह आन्दोलन शुद्ध 'ऐहिक' यानी कि सैक्यूलर था। श्री सीडर वूलीम ने 1920 ई. में एक इक्युमिनिकल कौन्सिल का विचार रखा जो 1925 ई. में स्टाकहोम में सम्पन्न 'युनिव्हर्सल कान्फ्रेंस आन लाइफ एण्ड वर्क' के अधिवेशन के रूप में प्रत्यक्ष हुआ। इस सम्मेलन में आर्थिक, उद्योग संबंधी, सामाजिक संबंध, शिक्षा आदि विषयों पर विचार हुआ था। इसका दूसरा सम्मेलन एडिनबर्ग में 1937 ई. में हुआ। जिसका प्रमुख विषय था 'चर्च, नेशन एण्ड स्टेट' अर्थात् चर्च, राष्ट्र और राज्य।

दूसरा आन्दोलन था 'पैनथ एण्ड आर्डर'। इसके प्रणेता थे फिलिपाइन्स स्थित अमरीकन एपिस्कोपल चर्च के विशेष चार्ल्स हेनरी ब्रैन्ट। इस आन्दोलन का हेतु विभिन्न ईसाई मतों में सामंजस्य प्रस्थापित करना था। यह इस अर्थ में विशुद्ध 'धार्मिक' था। इसका प्रथम अधिवेशन ल्यूसान (स्वीडन) में 1927 ई. में सम्पन्न हुआ तथा दूसरा सम्मेलन ऑक्सफोर्ड में 1937 ई. में हुआ।

1937 में सम्पन्न लाइफ एण्ड वर्क आन्दोलन के एडिनबर्ग तथा पैनथ एण्ड आर्डर के ऑक्सफोर्ड सम्मेलनों में हुए विचार-विमर्श के फलस्वरूप दोनों आन्दोलनों के सहकार्य से वर्ल्ड काउन्सिल आफ चर्चेस की स्थापना हेतु तदर्थ समिति गठित की गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण इसका कार्य रुकावटों के कारण आहिस्ता चला। अंत में ई. सन् 1948 में एम्स्टर्डम में सम्पन्न अधिवेशन में 'वर्ल्ड काउन्सिल आफ चर्चेस' यानी विश्व चर्च परिषद् की विधिवत स्थापना हुई। विश्व चर्च परिषद् का प्रथम महाधिवेशन 1948 ई. में एम्स्टर्डम में हुआ। उसके बाद प्रति छह वर्ष में एक बार इस क्रम से उसका द्वितीय महाधिवेशन ह्युन्स्टन (अमेरीका) में 1954 में सम्पन्न हुआ। तृतीय महाधिवेशन 1961 ई. में दिल्ली यानी भारत में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन के अवसर पर इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल विश्व चर्च परिषद् में विलीन हो गई।

विश्व चर्च परिषद् की स्थापना के समय रूस की नीति परिषद् के घोर विरोध की थी। किन्तु 1958 में स्टालिन की मृत्यु के बाद नीति क्रमशः बदलती गई तथा अंततोगत्वा 1961 ई. में सम्पन्न विश्व चर्च परिषद् के दिल्ली महाधिवेशन के अवसर पर रूसी ऑर्थोडाक्स चर्च विश्व चर्च परिषद् का विधिवत सदस्य बना। तब से विश्व चर्च परिषद् के छह अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष रूसी ऑर्थोडाक्स चर्च का होता है। ईसाइयत के सभी फिरकों को समान प्रतिनिधित्व मिले इसलिए परिषद् के छह अध्यक्ष रहते हैं।

विश्व चर्च परिषद् के दिल्ली महाधिवेशन में रोमन कैथलिक चर्च के प्रतिनिधि निरीक्षक के रूप में उपस्थित हुए थे। पोप द्वारा सितम्बर 1965 में

आमंत्रित द्वितीय व्हिटिकान कौन्सिल के निर्णय के अनुसार विश्व चर्च परिषद् तथा व्हिटिकान सेक्रेटरिएट फार प्रमोटिंग ख्रिश्चियन युनिटि अन्यान्य विभागों में परस्पर सहकार्य तथा पूछताछ से कार्य करते हैं। इस प्रकार विश्व चर्च परिषद् का दिल्ली महाधिवेशन इस अर्थ में अपनी विशेषता तथा महत्त्व रखता है। क्योंकि इस अवसर पर रूसी प्रभाव के चर्च उसके सदस्य बने तथा रोमन कैथलिक चर्च भी अपनी पृथक्ता की परम्परा को छोड़कर विश्व चर्च परिषद् के साथ विशिष्ट मुद्दों पर सहकार्य के लिए अग्रसर हुआ। इस प्रकार जागतिक ईसाई समाज के ऐक्य आन्दोलन को एक व्यापक आधार प्राप्त हुआ है। आगे चल कर विश्व राजनीति का विशिष्ट मोड़ देने में उसकी अपनी भूमिका भी हो सकती है।

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन का मन्तव्य तथा कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इन्टरनेशनल अफेयर्स

जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन के मन्तव्यों को समझने के लिए सर स्टेफोर्ड क्रिप्स के उद्गार, जो कि किंग्स कॉलेज कैंब्रिज के जी. हालैंड द्वारा लिखित तथा क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी फॉर इंडिया द्वारा 1943 ई. में प्रकाशित छोटी-सी पुस्तिका 'क्रिश्चियनडम इन मार्डन वर्ल्ड' के पृष्ठ 2 पर उद्धृत है, काफी सहायक होंगे। उनके मूल अंग्रेजी उद्गार तथा उसका हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार है—

"Declaring that the Christian Church has lost its strength because it has failed to give the world leadership it needs, Sir Stafford Cripps said that our goal is a Christian world order and the Church must rouse itself if it is going to play its part in making that new order."

अर्थात् 'यह घोषणा करते हुए ख्रिश्चियन चर्च ने अपनी शक्ति इसलिए खो दी क्योंकि वह संसार को आवश्यक नेतृत्व देने में असफल रहा है। सर स्टेफोर्ड क्रिप्स ने कहा कि अपना लक्ष्य ईसाई जागतिक व्यवस्था है और चर्च को स्वयं को ऊपर उठाना चाहिए यदि उसे इस नई व्यवस्था को बनाने में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है।'

पुस्तक के लेखक ने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स के वक्तव्य की व्याख्या करते हुए आगे पृष्ठ 7 पर लिखा है कि 'If sir Stafford cripps statement means any thing two things appears to be necessary, First, Christiandom has got to arrange a scheme for the management & international relations which must involve the just and joint acting of Church and State. Second, the Church itself has to acquire such a measure of uniting that it may fulfil its commission as a leader on behalf of Christiandom."

अर्थात् 'यदि सर स्टेफोर्ड क्रिप्स का वक्तव्य कोई मतलब रखता है तो दो चीजें आवश्यक प्रतीत होती हैं। प्रथम, ईसाई जगत् की अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की व्यवस्था हेतु एक योजना का निर्माण करना होगा जिसके अन्तर्गत चर्च तथा राज्य की मिली-जुली गतिविधियों का अंतर्भाव हो। दूसरी, चर्च स्वयं उस ऐक्य को प्राप्त करे जिससे वह ईसाई जगत् के नेतृत्व का दायित्व निभा सके।'

ईसाई मिशनरी की गतिविधियों की जांच के लिए नियुक्त नियोगी जांच समिति के पृष्ठ 52 पर लिखा है, 'द्वितीय विश्वयुद्ध के चलते सन् 1941 में ब्रिटेन में कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इंटरनेशनल फ्रेन्डशिप एण्ड सोशल रिस्पान्सिबिलिटी की स्थापना की गई। सन् 1942 में उपरोक्त कमीशन ने एक दस्तावेज 'ख्रिश्चियन चर्च एण्ड वर्ल्ड आर्डर व्युव्ड फ्रॉम ख्रिश्चियन पाइन्ट ऑफ व्यू सच एज कामन आल परपज इंटरनेशनल पालिटिकल फ्रेमवर्क, इकानामिक जस्टिस, डिस आर्मामेन्ट एण्ड राईट ऑफ मायनारिटी एण्ड कालोनियल पीपल' प्रस्तुत किया। इस दस्तावेज में ईसाई दृष्टिकोण से सामान्य नीति मूल्य, अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक ढांचा, आर्थिक न्याय, निरस्त्रीकरण और अल्पसंख्यकों के अधिकार तथा उपनिवेशवासियों के अधिकार आदि विषयों पर विवेचन किया गया। उसी समय संयुक्त राज्य अमेरीका में फेडरल काउन्सिल आफ चर्चेस जिसकी स्थापना 1908 ई. में हुई थी ने 1941 ई. में एक समिति स्पेशल कमीशन ऑन जस्ट एन्ड ड्युरेबल पीस की स्थापना श्री जान फास्टर डलेस की अध्यक्षता में की। समिति ने एक गोलमेज परिषद् का आयोजन किया जिसने जागतिक व्यवस्था पर एक ईसाई संदेश प्रसारित किया। सम्मेलन ने जागतिक आधार पर ईसाईकरण अभियान हेतु प्राप्त अवसर पर भी जोर दिया। इसी समिति ने जनवरी, 1945 में एक राष्ट्रीय अध्ययन दल नियुक्त किया जिसमें डम्बरटन ओक कान्फ्रेंस के प्रस्तावों में सुधार के लिए भी नौ सुझाव प्रस्तुत किए। यह कान्फ्रेंस संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापनार्थ विचार-विमर्श के लिए बुलाई गई थी। इन सुझावों को अमरीकी चर्चों में व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ तथा उन पर सरकारी क्षेत्रों ने बारीकी से विचार किया। उसी समय ब्रिटिश काउन्सिल आफ चर्चेस ने सन् 1945 में ब्रिटिश सरकार को प्रस्तुत करने के लिए सुझाव तैयार किए। उपरोक्त कान्फ्रेंस में उपस्थित धार्मिक प्रवर्तनाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में मानवाधिकार समिति के लिए प्रावधान का श्रेय दिया जाता है। कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन जस्ट एण्ड ड्युरेबल पीस ने अपनी नवम्बर, 1945 में सम्पन्न बैठक में घोषित किया, 'अब युद्ध की समाप्ति के साथ ईसाई चर्च का जगत् व्यापी संगठन विकसित किया जा सकेगा जिससे कई देशों में जागतिक व्यवस्था के ईसाई प्रयास में हेतु तथा समय की सहकारिता हो। विश्व की ईसाई शक्तियों को जो अभी भी अल्प संख्या में हैं, उसी कारण शीघ्रता

से एक सुसंगठित उग्र अल्पसंख्यक के रूप में गठित होना चाहिए।' (उपरोक्त वृत्त, पृष्ठ 53)

"Now with the war ended, world wide organization of the Christian Church can be developed so as to co-ordinate as to substance and timing the Christian effort (for world order) in many binds. The Christian forces of the world, though still a minority, must on that very account quickly become a well organized and militant minority."

इसी समिति ने इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल की अस्थायी (इन्टेरिम) समिति के अनुरोध पर चर्च नेताओं का एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया था। इस सम्मेलन ने इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल तथा वर्ल्ड काउन्सिल ऑफ चर्चेस के संयुक्त तत्त्वावधान में कार्य के लिए एक स्थायी माध्यम के रूप में 'दि कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' के विधान का प्रारूप प्रस्तुत किया। कमीशन के डायरेक्टर डॉ. फ्रेडरिक ओ. नोल्डे ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की मानवाधिकार समिति से निकट सम्पर्क रखा जिसके परिणामस्वरूप वर्ल्ड काउन्सिल ऑफ चर्चेस तथा इंटरनेशनल मिशनरी काउन्सिल द्वारा स्वीकृत व धार्मिक स्वतंत्रता की व्याख्या उद्घोषित की गई। (उपरोक्त वृत्त, पृष्ठ 53)

'कमीशन ऑफ दी चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' गैर सरकारी संगठनों की 'ब' श्रेणी के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बद्ध है। ऐसे संगठनों को आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर पूछताछ तथा सलाह करने की सुविधा प्राप्त है तथा वे संयुक्त राष्ट्र संघ के सचिवालय से संपर्क कर अपने विचार अभिव्यक्त कर सकते हैं। (एव्हरी मेन युनाइटेड नेशन्स, पृष्ठ 23)

'दि इक्युमिनिकल कमीशन ऑन यूरोपियन कोऑपरेशन' की स्थापना जून, 1950 में की गई जिसे जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन से संबद्ध लोगों ने गठित किया। इसके अध्यक्ष फ्रांस के प्रोफेसर आंद्रे फिलिप हैं। इसके सदस्यों में राजनीति, प्रशासन तथा शिक्षा क्षेत्र के ख्यातमान लोगों का अंतर्भाव किया गया है जो ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैंडस, जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन तथा इटली के हैं। यह सम्मेलन अनौपचारिक रीति से 'कमीशन ऑफ द चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' से तथा 'वर्ल्ड काउन्सिल ऑफ चर्चेस' के अध्ययन विभाग से अनौपचारिक रीति से संबद्ध है। 'इक्युमिनिकल कमीशन ऑन यूरोपियन कोऑपरेशन' ने अपने कई सम्मेलनों में टिकाऊ अर्थव्यवस्था, यूरोपीय सेना की आवश्यकता, यूरोपीय सहकार्य के स्वरूप, यूरोपीय सुरक्षा में जर्मनी का सहभाग, पूर्व तथा पश्चिम का तनाव, उत्तरी अमेरीका, एशिया तथा अफ्रीका से संबंध

आदि विषयों पर विचार किया तथा इन विषयों पर कई वक्तव्य प्रकाशित किए हैं जिसमें इस संबंध में ईसाई अभिव्यक्ति हेतु चर्च के दायित्व का उल्लेख किया है : (वर्ल्ड ख्रिश्चियन हैंड बुक 1952)

अभी तक के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'कमीशन ऑफ दि चर्चेस ऑन इंटरनेशनल अफेयर्स' जागतिक ईसाई ऐक्य आन्दोलन की नीतियों के निर्धारण तथा कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है तथा गैर-सरकारी स्तर पर पश्चिमी देशों के राजनैतिक तथा सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक का कार्य करता है। भारत में कार्यरत चर्च तथा मिशन 'विश्व चर्च परिषद्' से सम्बद्ध होने के कारण इनकी गतिविधियों का प्रभाव भारत की आंतरिक स्थितियों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार की आड़ में इसको चलने देना राष्ट्र हित में नहीं होगा। 'विश्व चर्च परिषद्' के प्रस्ताव भारत में मिशनरी गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। अतः इन प्रस्तावों के प्रकाश में उन गतिविधियों का स्वरूप समझना आवश्यक है।

कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यात्मक विवरण

अगस्त 1948 में 'विश्व चर्च परिषद्' की बैठक एम्स्टर्डम में सम्पन्न हुई जिसमें श्री जान फादर डलेस ने एक प्रबन्ध पढ़ा जिसका विषय था 'विभाजित जगत् में ईसाइयों की जिम्मेदारी'। 'Christian responsibility in our divided world." इस बैठक में रांची के गोस्सेनर इव्हेजेलिकल मिशन के श्री जुएल लकड़ा उपस्थित थे। (नियोगी समिति, वृत्त पृष्ठ 55)

रेव्ह श्री जुएल लकड़ा, थिआलॉजिकल कालेज रांची के प्राचार्य नियोगी समिति के सम्मुख गवाह के रूप में अम्बिकापुर में प्रस्तुत हुए थे। अपनी गवाही में उन्होंने स्वीकार किया कि वे 'विश्व चर्च परिषद्' से निकट संपर्कित हैं। 1948 में उन्होंने 'विश्व चर्च परिषद्' में गोस्सेनर लूथरान चर्च के प्रतिनिधि के रूप में हिस्सा लिया था। उस बैठक में श्री डलेस उपस्थित थे तथा वहां उन्होंने एक प्रबन्ध पढ़ा था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यद्यपि जर्मनी सैनिक नियंत्रण में था तथा कोई भी वहां बिना पारपत्र के प्रवेश नहीं पा सकता था, फिर भी उन्हें बिना किसी पारपत्र के प्रवेश दिया गया। वे ब्रिटिश क्षेत्र से अमरीकी क्षेत्र में प्रवेश कर सके। (नियोगी समिति वृत्त पृष्ठ 100)

रेव्हरेंड लकड़ा झारखंड आन्दोलन से सम्बद्ध रहे हैं। जिन अवस्थाओं से जाकर झारखंड आन्दोलन का विकास हुआ इसका विवरण श्री एम.डी. टिग्गा द्वारा प्रकाशित तथा इव्हेजेलिकल लूथरान द्वारा मुद्रित 'छोटानागपुर केर पुत्री' नामक पुस्तक के पृष्ठ 29 पर पाया जाता है। आदिवासी मन के राजनैतिक और आर्थिक

पतन को देख के 1898 के साल में एक सभा खडा मेलख, उकर शुरूनाम 'छोटानागपुर क्रिश्चियन एसोसियेशन' की रही। बढ़ते-बढ़ते 1915 साल में ऊ सभा कुछ मजबूत भई। मेलख और उकरकाम छोटानागपुर उन्नति समाज रखल गेला। अंतमा अभी आहे सभा 1938 साल में आदिवासी महासभा के केशनाम से चालू रहे। इस विवरण से स्पष्ट है कि 1898 ई. में स्थापित ख्रिश्चियन एसोसिएशन ही 1915 ई. में बढ़कर छोटानागपुर उन्नति समाज बना। अंत में वही संगठन आदिवासी महासभा के नाम से चला।

इसी आदिवासी महासभा के 22 जन. 1939 को रांची में श्री जयपाल सिंह की अध्यक्षता में संपन्न अधिवेशन में उन्होंने कहा—अब आदिवासी बहुसंख्यकों के अत्याचारों से अपनी मुक्ति के लिए एक हुए हैं। हम एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करते हैं जो आदिवासियों के इतिहास में आश्चर्यजनक तथ्य है। यहां कार्य करने वाली सभी मिशनरी संस्थाएं हमारे साथ हैं, यह दूसरी उल्लेखनीय सफलता है। बंगाली भी अलग होने के लिए आक्रोश कर रहे हैं। यूरोपियन तथा एंग्लो इंडियन खुले आम हमें सहानुभूति दिखा रहे हैं। (नियोगी समिति वृत्त, पृष्ठ 50)

आदिवासी स्थान, जिसे बाद में झारखंड के नाम से पुकारा गया, उसके संबंध में नियोगी समिति वृत्त में महत्त्वपूर्ण उल्लेख इस प्रकार है, अपनी प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करने तथा उसे ढहने से बचाने के लिए तथा संभवत: इस क्षेत्र में पराये हितों को अवसर प्रदान करने के लिए मिशनरी आदिवासियों को समाज के अन्य वर्गों से अलग रखने के लिए प्रचार कर रहे थे और इस प्रकार झारखंड के लिए आंदोलन का प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन को आदिवासियों, स्थानीय ईसाइयों तथा मुस्लिमों की सहमति प्राप्त थी और मिशनरी सभी राष्ट्रीय तत्त्वों को उससे अलग रखकर उसे अपने प्रभाव में बनाए रखना चाहते थे। आदिवासी स्थान के लिए मांग 1938 में पाकिस्तान के साथ ही उठाई गई। मुस्लिम लीग द्वारा प्रचार कार्य के लिए एक लाख रुपये दिये जाने के भी समाचार हैं। भारत में राजकीय स्वाधीनता के उदय के साथ आदिवासी स्थान के लिए मांग को तीव्र किया गया जिससे पूर्वी बंगाल को हैदराबाद से जोड़ने वाला गलियारा निर्माण हो, जिसका उपयोग भारत तथा पाकिस्तान के युद्ध के अवसर पर तोड़-फोड़ व आंदोलन के लिए किया जा सके। (नियोगी समिति वृत्त, पृष्ठ 9)

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि ईसाईकरण के साथ ऐसी कौनसी प्रक्रिया का अवलंबन किया जाता है जिस कारण यह विशिष्ट समुदाय अपने ही अन्य देशवासियों से स्वयं को अलग समझने लगता है। इसका उत्तर 1932 ई. में प्रकाशित 'री थिंकिंग मिशन्स' नामक प्रतिवृत्त के पृष्ठ 138 पर ब्रह्म देश के करेन लोगों के बारे में जो उल्लेख मिलता है, उससे स्पष्ट हो जाता है। उक्त उल्लेख

इस प्रकार है—मिशनरियों के आगमन के पूर्व करेन एक आश्रित जाति थी। जो निःसर्ग पूजक थी। मिशनरियों ने उसे शिक्षा दी तथा बाइबिल के अनुवाद के द्वारा एक लिखित भाषा दी। यह उल्लेखनीय सफलता, एक जाति को राष्ट्रीयता प्रदान करना, जो कि एक परेशानी बन गई। मिशनरियों को करेन लोगों की ब्रह्मीकरण की प्रक्रिया को धीमी करने के लिए जिम्मेदार समझा जाता है। आज करेनों का एक बलशाली राष्ट्रीय समाज है जिसने अपना एक प्रतिनिधिमंडल करेन राष्ट्र की वकालत करने लंदन भेजा।

'क्रिश्चियनिटी एंड एशियन रेव्होल्यूशन' नाम के अपने प्रतिवृत्त में उसके लेखक श्री राजा वी. मानिकम जो 'विश्व चर्च परिषद्', पूर्वी एशिया के सह सचिव हैं तथा जिसका मुख्यालय मद्रास में है, पृष्ठ 77 पर लिखते हैं—धार्मिक राष्ट्रीयता विद्यमान एशियायी राजनीति के सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षणों में से एक लक्षण है। पाकिस्तान का जन्म इसका प्रमुख उदाहरण है। ईसाइयत से संबंधित इसी प्रकार के आंदोलन असम के नागाओं में, ब्रह्मदेश के करेन लोगों में तथा इंडोनेशिया के ऐयोनीझ लोगों में पाये जाते हैं। परिणामतः जब इंडोनेशिया स्वतंत्र हुआ तब ऐयोनीझ लोगों ने जिनमें से अधिकांश ईसाई थे, अपनी ही राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। जब ब्रह्मदेश ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अलग हुआ तब ब्रह्मदेश सरकार के विरुद्ध करेन विद्रोह के नेताओं में से कई ईसाई थे। आज भारत से अलग स्वतंत्र नागा राज्य की मांग करने वाले आंदोलनकारियों में से कुछ आंदोलनकारी ईसाई हैं। इन तथ्यों ने इस संदेह को बल प्रदान किया है कि ईसाइयत एशियाई लोगों को अपनी राष्ट्रीयता से विलग करती है। (क्रिश्चियनिटी एंड एशियन रेव्होल्यूशन, पृष्ठ 215)

क्रिश्चियनिटी एंड एशियन रेव्होल्यूशन नामक प्रतिवृत्त का संपादन विश्व चर्च परिषद्, पूर्वी एशिया के सह सचिव की हैसियत से श्री आर. वी. मानिकम ने किया तथा उसे 'विश्व चर्च परिषद्' के ह्यूस्टन, अमेरीका में संपन्न द्वितीय महाधिवेशन के अवसर पर 1954 ई. में प्रस्तुत किया था। इसलिए इन उल्लेखों का अधिकृतता के ताने से विशेष महत्त्व है। 'विश्व चर्च परिषद्' ने पाकिस्तान से लेकर जापान तक के क्षेत्र को प्रबंध की दृष्टि से पूर्वी एशिया तक इस इकाई के अन्तर्गत माना है।

'दि इक्युमिनिकल स्टडी कान्फरेन्स फॉर ईस्ट एशिया' का आयोजन 'विश्व चर्च परिषद्' की अध्ययन शाखा द्वारा लखनऊ में सन् 1952 में किया। उसने घोषित किया की ईसाई इस बात को मानने को तैयार हों कि समाज की रचना में परिवर्तन मुख्यतः राजनीतिक कार्यवाही द्वारा संपन्न किये जाते हैं और इसलिए उन्हें सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए राजनैतिक कार्यवाही की आवश्यकता को स्वीकार करना चाहिए। (नियोगी समिति वृत्त, पृष्ठ 55)

'इंटरनेशनल मिशनरी कौन्सिल' तथा 'वर्ल्ड कौन्सिल ऑफ चर्चेस' के तत्त्वावधान में बैंकाक में सन् 1949 में पूर्वी एशियाई ईसाई सम्मेलन का आयोजन किया गया। उसमें की गयी नैतिक उपदेश तथा नैतिक कल्पनाओं का उद्घोष अपर्याप्त है....

ईश्वरीय-वाणी का उद्घोष पूर्वी देशों में चल रहे वैचारिक तथा राजनैतिक संघर्षों के गंभीर संदर्भ में करना यह एशियाई चर्च का प्रमुख कार्य है। बैंकाक सम्मेलन के वक्तव्य में कहा गया कि, The Prophetive ministry of the church in social and politics order depends on the church being truely a community of persons rooted in the word of God... A true christian congregation has the most effective prophetic witness to the devine right cureness in society, and the only answer to the challenge of political ideologies that view man solely in terms of his social and political functions. The christian congregation has revolutionary significance in East Asia Political situation. (क्रिश्चियनिटी एंड एशियाई रेव्होल्यूशन, पृष्ठ 100)

इस तरह बैंकाक कॉन्फ्रेंस के अनुसार पूर्वी एशियाई राजनैतिक स्थिति में ईसाई समुदाय का अपने विचारों के कारण राजनैतिक विचारों के संघर्ष में समाज में न्याय स्थापना के हित में क्रांतिकारी महत्त्व है। लखनऊ तथा बैंकाक सम्मेलन के प्रस्तावों से स्पष्ट हो जाता है कि 'जागतिक ईसाई ऐक्य आंदोलन' एशियाई तथा भारतीय संदर्भ में अलगाव तथा विद्रोही प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

दिल्ली में संपन्न 'विश्व चर्च परिषद्' के तृतीय महाधिवेशन में धार्मिक स्वतंत्रता पर एक वक्तव्य सर्व-सम्मति से स्वीकृत किया गया। उक्त वक्तव्य का परिच्छेद 'क' इस प्रकार है।

It includes freedom to practice religion or belief, whether by performance of acts of mercy or by the expression in word or deed of the implications of belief in social, economic and political matters, both domestic and international. (New Delhi Report Page 160.)

इसके अनुसार धार्मिक मत या विश्वास के निहितार्थों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक मामलों में घरू तथा अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में बोलकर या कृति से चरितार्थ करना भी धार्मिक स्वतंत्रता की परिधि में आता है। भारतीय संविधान के परिच्छेद 2581 में कहा है कि सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा स्वास्थ्य को क्षति न पहुंचाते हुए सभी व्यक्तियों को समान रूप से अपना विश्वास रखने की स्वतंत्रता है और प्रकट रूप से अपने धर्ममत को मानने, तदनुसार आचरण तथा प्रचार करने का अधिकार है। इसी के अन्तर्गत अनुच्छेद 2 'अ' के अनुसार

राज्य को यह अधिकार है कि वह धार्मिक व्यवहारों के संदर्भ में कोई भी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक तथा ऐहिक गतिविधियों को सीमित करें।

अतः भारतीय संविधान के अनुसार धार्मिक स्वतंत्रता अपने धर्म को मानने तथा तदनुसार आचरण तथा प्रचार करने तक ही सीमित है। किन्तु जहां तक उनके आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक तथा ऐहिक गतिविधियों संबंधी पहलुओं का संबंध है, उन पर राज्य को नियंत्रण का अधिकार प्राप्त है। इसके विपरीत विश्व चर्च परिषद् के धार्मिक स्वतंत्रता पर वक्तव्य को मान्यता देने का परिणाम धार्मिक मत या विश्वासों को घरू तथा अंतरराष्ट्रीय, दोनों ही क्षेत्रों में, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक मामलों में हावी होने देने का अवसर प्रदान करना होगा। जो कि भारतीय संदर्भ में 'धर्मनिरपेक्षता' के सिद्धान्त के प्रतिकूल होगा। और जब इन विचारों के नियमन में विदेशी शक्तियों को धार्मिक स्वतंत्रता के आवरण में कार्य करने की छूट मिल जायेगी तब उसके घातक परिणाम और भी गंभीर होंगे।

'क्रिश्चियन पार्टिसिपेशन इन नेशनल बिल्डिंग' नामक पुस्तक में जो कि 'नेशनल क्रिश्चियन काउन्सिल ऑफ इंडिया' तथा 'दि क्रिश्चियन इन्स्टिट्यूट फॉर दि स्टडी ऑफ रिलिजन एंड सोसायटी' द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित है। इसके पृष्ठ 53 पर कहा है—

The Churches, as churches, ought not be directly involved in party politics. Though Bishops and clergy, as citizens of state have a right to express their opinions on political issues, great care should be taken by them in the use of their official position.

Citizenship groups or study circles may be organised in parishes to promote intelligent understanding of the issues that face the nation... It would also be desirable to foster progressive groups in the chruches to continue to create a format in society to bring about desirable social changes.

The National christian council and the Regional christian councils, two student christian movements, the Y.W.C.A. the Y.M.C.A. and other international christian organizations have a great role to play in the formulation of christian opinion on current political issues and the political education of christian community. In this connection, we are in need for a greater working liasion among all these agencies.

There is need for a special body to activate the churches in making a constructive contribution to politics by appraising the work of the Government and expressing a christian mind on day to day affairs. The need of a group of competent christian persons to

study together from time to time, the proposed legislative measures of the central and state Governments and to formulate a christian critique is keenly felt. Such groups may very well be sponsored by the National christian council and its regional branches. There should be periodic rootings of christian political leaders and legislators belonging to different parties along with christian theologians for appraising contemporary affairs. P. 54

Several concrete programmes of action have been proposed and discussed. Those which have found general support are the following :

(i) Attempts should be made from a common fellowship of politically minded christians who would meet from time to time to discuss political problems and formulate views on them for guidence of christians actively engaged in political work and others.

(ii) The establishment of a christian institute of public affairs is strongly recommended. It is suggested that the Christian institute for the study of religion and society develops its own branch or takes initiative to bring it into existence as an independent body with regional branches.

(iii) Christian intellectuals interested in public affairs in various state capitals and national capital may be requested to act as observers and to report on political and parliamentary trends and also utilise such opportunities as they have of meeting the members of the Legislature with a view to influence as far as possible, policies and legislation with christian insights.

(v) The existing christian papers should co-operate in the matter of publishing articles on political questions by christian writers as well as reports of christian consultations and conferences on such questions, particularly in all the regional languages. P. 55-56.

(vi) Relevant litereature pertaining to political parties, their manifestoes, and reports of deliberations of various christian consultations and conferences, should be made available to the administrative machinery we consider it worth while as a means to achieve our objectives.

ईसाइयत मीठा जहर

जहाँ तक ईसाइयों का सम्बन्ध है सामान्य रूप से वे इसे न केवल पूर्णतया नुकसानरहित मानते हैं बल्कि इसे मानवता के प्रति सहानुभूति और प्रेम का प्रतिरूप समझते हैं। उनके भाषण सेवा और मानव मोक्ष के शब्दों से भरे हुए होते हैं जैसे कि ईश्वर ने मानवता के उत्थान के लिए उन्हें विशेषरूप से नियुक्त किया है। वे हर जगह विद्यालय और महाविद्यालय, अस्पताल और अनाथालय चलाते हैं। हमारे देश के साधारण और निर्दोष लोग इन चीजों के बहकावे में आ जाते हैं। परन्तु उनका इन सब गतिविधियों में करोड़ों रुपये खर्च करने का वास्तविक और अन्तिम उद्देश्य क्या है? क्या यह सिर्फ मानवता के विचार से है?

हमारे भूतपूर्व आदरणीय राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद एक बार असम गये। उन्होंने उन पहाड़ी इलाकों में इन ईसाई मिशनरी द्वारा स्थापित विद्यालयों और अस्पतालों का निरीक्षण किया। उन्होंने इसे सराहा। अन्त में उन्होंने उन्हें सलाह भी दी, 'आपने निःसन्देह बहुत अच्छा कार्य किया। परन्तु इन सब चीजों का उपयोग धर्मान्तरण के उद्देश्य से नहीं करना।' लेकिन मिशनरीज ने खुले तौर पर कहा, 'अगर हम इन सबके लिए मानवता के विचार से प्रेरित होते, हमें इतनी दूर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी? क्यूं हमने इतना सारा धन खर्च किया? हम यहाँ केवलमात्र इस कारण से आए हैं कि हम ईसामसीह के अनुयायियों की संख्या बढ़ा सकें।' वे इस मामले में बिल्कुल स्पष्ट थे।

इन तमाम मिशनरीज द्वारा धर्म सम्बन्धी विचार को जो बढ़ावा दिया गया वह भी चकित करने वाला है। सच्चे धर्म और ईश्वर के प्रति श्रद्धा का इसमें कोई स्थान नहीं है। एक बार मैं एक मिशनरी से मिला। उसने मुझे इंग्लैण्ड के आर्कबिशप द्वारा लिखित एक पुस्तक दी और कहा कि यह पुस्तक उनके द्वारा किये हुए कार्यों के स्वभाव को मेरे समक्ष स्पष्ट कर देगी। मैंने इसे पढ़ा। जब उसे मैंने इस पुस्तक को वापस लौटाया तो उसने मुझे पूर्ण रुचिपूर्वक पूछा, 'यह पुस्तक कैसी है?' मैंने जवाब दिया, 'अगर तुम्हारा आर्कबिशप ऐसा है तो तुम कैसे हो?' इस बात ने उसे चौंका दिया। मैंने उस पुस्तक के गद्यांशों की ओर इशारा किया।

वहाँ लिखा हुआ था, 'ईश्वर प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है कि कोई दिन में दो बार प्रार्थना करे और रविवार को चर्च में उपस्थित रहे। बाकी के समय में यदि वह किसी प्रकार की भौतिक खुशियाँ और मनोरंजन में व्यस्त रहे तो कोई नुकसान नहीं होता।' ये शब्द वास्तव में उस महान संत ईसामसीह की शिक्षाओं के विपरीत हैं। मैं स्वयं भी बाइबिल का पूर्णतया अध्ययन कर चुका हूँ। मैं वर्तमान के बहुत से ईसाई मिशनरीज से ज्यादा ज्ञान इस बाबत रखता हूँ। मेरा पूर्ण विश्वास है कि ईसाई मिशनरियों के क्रियाकलाप पूर्णतया धर्म-रहित हैं। जैसा कि उनके स्वयं के धर्मग्रन्थों में बताया गया है।

उनके क्रियाकलाप न केवल अधार्मिक हैं बल्कि वे राष्ट्रविरोधी भी हैं। एक बार मैंने एक ईसाई मिशनरी से पूछा कि वे हमारी धार्मिक पुस्तकों, देवी-देवताओं के प्रति अपशब्द क्यों कहते हैं? उनका जवाब अति महत्त्वपूर्ण था। 'हमार लक्ष्य है कि हम हिन्दुओं के हृदय से उनकी आस्थाओं को पूर्णतया निकाल देवें। जब उनकी आस्था पूर्णतया चकनाचूर हो जायेगी तो उनकी राष्ट्रीयता भी नष्ट हो जायेगी। उनके मन में एक खालीपन उत्पन्न हो जायेगा, तब उस खालीपन को ईसाइयत से भरना आसान होता है।' इस प्रकार उनका प्रयास है कि यहाँ की भूमि से जुड़े बच्चों को उनकी मातृभूमि का विरोधी बनाना। उनका कार्य न तो धार्मिक है न ही मानवीय। न केवल यही, यह अत्यधिक राष्ट्रविरोधी है।

कुछ वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश की सरकार ने एक कमेटी को नियुक्त किया जो उसे ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों की जानकारी दे। कमेटी के चेयरमैन श्री नियोगी हाइकोर्ट के अति आदरणीय सेवानिवृत्त जज हैं जो कि किसी पार्टी या समूह से सम्बन्ध नहीं रखते हैं। उन्होंने पूरे मध्यप्रदेश का दौरा किया और धर्मांतरित ईसाइयों, मिशनरियों और अन्य लोगों से मुलाकात की। उन्होंने बहुत से चर्चों का भी निरीक्षण किया। इन तमाम व्यक्तिगत छानबीन के आधार पर उन्होंने एक लम्बा ब्योरा तैयार किया और उसे सरकार को सौंप दिया।

उस रिपोर्ट में उन्होंने कहा, 'ये तमाम आर्थिक प्रलोभन इन मिशनरियों का छुपाने का केवल एक मुखौटा है, जो वे धर्मान्तरण की गतिविधियाँ कर रहे हैं। कभी-कभी वे धमकाकर और कभी-कभी वे लालच देकर सरल ग्रामीण व्यक्तियों का धर्मान्तरण कर रहे हैं। इन क्रियाकलापों की जड़ में इनकी महत्त्वाकांक्षा है कि वे संख्या के आधार पर एक अलग ईसाई राज्य काटकर ले लें। वे यह असंख्य करोड़ रुपये इस एकमात्र उद्देश्य के लिये खर्च कर रहे हैं।'

यह उनकी गतिविधियों का वास्तविक स्वभाव है। वे पाकिस्तान के मुसलमानों द्वारा अलग किये गये टुकड़े की तरह एक अलग राज्य प्राप्त करने का

स्वप्न संजो रहे हैं। नागा पहाड़ियों में सशस्त्र विरोध और अलग झारखण्ड के लिए आंदोलन और एक अलग पर्वतीय असम राज्य। यह इसका स्पष्ट सबूत है कि उनके तमाम क्रिया-कलापों के पीछे का अंतिम उद्देश्य क्या है।

आपको ज्ञात है कि कुछ वर्ष पूर्व केरल के वामपंथी शासन को उखाड़ फेंकने का आंदोलन लोगों ने किया तो उस आंदोलन में शामिल होने वाले ईसाई नेताओं ने घोषित किया, 'हमें यह निश्चय करना है कि हम कैथोलिक ईसाई शासन चाहते हैं या वामपंथी शासन।' उनके प्रत्येक क्रियाकलाप में उनका इरादा कितना ज्यादा स्पष्ट है।

ईसाइयत कोई धर्म नहीं केवल राजनीति

हममें से कुछ को याद होगा कि बहुत से प्रमुख ईसाई मिशनरियों ने अपने विचारों में कहा था कि हम इस देश को ईसा के साम्राज्य का एक प्रान्त बनाना चाहते हैं। क्या अर्थ है इस वाक्य का? इसका अर्थ है कि इस देश के तमाम लोगों का ईसाइयत में धर्मान्तरण होना चाहिए। अर्थात् उनकी परम्परागत वंशानुगत धर्म, दर्शन और जीवन पद्धति का विनाश करना और उनको वैश्विक ईसाइयत के संघ में शामिल कर लेना। वे हमारे मित्र नहीं हैं—अर्थात् हिन्दू लोगों के लिए या हमारे वंशानुगत जीवन पद्धति के, हमारे दर्शन के, हमारी संस्कृति और हमारे धर्म के मित्र नहीं हैं। कभी-कभी मैं महसूस करता हूँ कि आधुनिक धर्मांतरित धर्म के अन्दर धर्म बहुत कम है। वे सब धर्म का उपयोग करने का प्रयास कर रहे हैं और ईश्वर और मसीही के नाम का उपयोग करने का प्रयास कर रहे हैं एक हथियार के रूप में अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए। यही कारण है कि मैं बहुत बार महसूस करता हूँ कि एक सच्चे धर्म में न कोई धर्मान्तरण की आवश्यकता है न ही श्रद्धा में परिवर्तन की आवश्यकता है और न पूजा-पद्धति में परिवर्तन की कोई आवश्यकता ही है। उदाहरणार्थ, हमारे ही देश में गौतम बुद्ध से भी काफी समय पूर्व हमारे प्राचीन पूर्वजों ने, जिन्होंने अपने राज्य का विस्तार विश्व के बड़े भू-भाग में स्थापित किया, वे जहाँ कहीं भी गये वहाँ के लोगों का बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन नहीं कराया। इसके विपरीत बिना अपना धर्म छोड़े उन्होंने प्रयास किया कि वे लोग अपने धर्म को और उच्च बनायें और उसको सही परिप्रेक्ष्य देवें और वह सही दर्शन दें जिससे कि उनके अन्दर अति महान सर्वव्यापी गुण, मन और हृदय में भर जायें और वे अपने ही प्रकार की पूजा में और श्रेष्ठ श्रद्धालु बनें।

वास्तव में यही सही धर्म था। धर्मान्तरण का यह मतलब नहीं है कि ईश्वर का नाम और मसीही का नाम और धर्म का उपयोग दुनियादारी की वस्तुएं प्राप्त करने में किया जाये।

एक अति स्पष्ट उदाहरण

इस प्रकार यह धर्मान्तरित धर्म जो हमारे देश में आया है उसका उद्देश्य बहुत कुछ राजनीतिक है। उदाहरण के लिए—असम में नागालैण्ड बनाये जाने का आंदोलन। किसने किया है यह? स्थानीय नागा लोगों ने नहीं किया। वे तो बहुत अच्छे लोग हैं। क्योंकि यह मैं जानता हूँ, मैंने हमारे देश के उस हिस्से को जाकर देखा है। परन्तु पिछले एक सौ या एक सौ पचास साल में ब्रिटिश शासन के दौरान ब्रिटिश मिशनरियों ने उन लोगों पर पकड़ बनाने का प्रयास किया और उनकी अज्ञानता और सरलता का फायदा उठा कर उन्हें अपने धर्म में शामिल कर लिया और ऐसे हालात उत्पन्न कर दिये जिससे वह अपने देश से कटकर एक अलग राज्य बन जाये। सन् 1947 में ब्रिटिश लोगों के जाने के बाद वे हताशा महसूस करने लगे और अपनी हताशा के कारण उन्होंने स्थानीय लोगों से विद्रोह करवाया। उनको हथियार और बारूद व नेता उपलब्ध करवाए और यह विद्रोह जारी रहा। तब हमारे देश के महान नेताओं ने सोचा कि उन लोगों की मांगें मान ली जाए और उन्हें एक नागालैण्ड दे दिया जाये। वे लोग अब भी कहते हैं कि नागालैण्ड अभी भी हमारे देश का हिस्सा है जो कि गवर्नर के अन्तर्गत है जो असम पर शासन करता है और हमारा संविधान है, आदि-आदि।

ये सब चीजें बिल्कुल ठीक हैं। परन्तु वहाँ एक अशुभ तथ्य है जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए कि ये नागालैण्ड सीधा हमारी होम मिनिस्टरी के अंतर्गत रहना चाहिए न कि किसी विदेश मंत्रालय के अन्तर्गत। अगर नागा ये मांग करें तो हमें उनको यह कहना होगा कि वे हमारे देश के लोग हैं और हमारे देश की राजनीति से अलग होने की सोच रहे हैं। परन्तु नागालैण्ड वास्तव में विदेश मंत्रालय के अन्तर्गत है। यही अत्यधिक अशुभ है। हम यह भी जानते हैं कि दबाव व तनाव के अन्तर्गत जो छूट यहाँ के लोगों को दी गई वह अभी भी जारी है। यहाँ तक कि अलग नागालैण्ड बनाने के निश्चय के बाद हमारी योजनाओं में से एक को लागू करने से इन्कार कर दिया। दूसरी प्रकार का जो दबाव है वह अन्तरराष्ट्रीय है जिसके बारे में हमारे कुछ नेता थोड़ा ज्यादा जागरूक और संवेदनशील हैं परन्तु जितने होने चाहिएं उतने नहीं हैं। हम जानते हैं कि एक नेता जो कि ईसाई है वह पाकिस्तान और कुछ दूसरों की सहायता से गायब होकर इंग्लैण्ड चला गया। उसे वहाँ एक विशिष्ट ईसाई मिशनरीज के घर पर शरण दी गई और उसी ने उसको सहायता दी जिससे हमारी इज्जत को नुकसान पहुंचाने वाले कई वक्तव्य उस नेता ने दिये। हमारे कुछ नेता अन्तरराष्ट्रीय सम्मानों के प्रति अति संवेदनशील हैं। उन्होंने सोचा ये ज्यादा अच्छा है कि एक अलग नागालैण्ड दे दिया जाए बनिस्बत एक शान्ति स्थापक के रूप में अपने सम्मान की बलि देने के।

हमने अपने आपको शान्तिदूत बनाए रखने के लिए अपने देश के विभाजन को एक बहुत सस्ता मूल्य देना उचित समझा है। इसलिए उन्होंने विद्रोहियों की तमाम बातें स्वीकार की क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय दबाव उन पर लगातार बना हुआ था। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वह दिन दूर नहीं है जब नागालैण्ड एक पूर्णतया अलग राज्य होगा और एक स्वतंत्र राज्य होगा जिस पर ईसाई शासकों का आधिपत्य होगा। यह पूर्णतया राजनीतिक है, क्या ऐसा नहीं है? इसमें कोई धर्म नहीं है।

और अधिक उदाहरण

ऐसी ही एक मांग झारखण्ड की है। हम जानते हैं कि केरल के ईसाई नेता क्या कहते थे जब वहाँ वामपंथी शासन के विरुद्ध आंदोलन चल रहा था। वे कहते थे कि यह केरल के ईसाई मिशन के लिए जीवन और मृत्यु का संघर्ष है। वे तो इस हद तक भी कह गये कि 'केरल पर या तो ईसाई शासन करेंगे या वामपंथी करेंगे और हम शासन करना चाहेंगे।' यही वे करने का प्रयास कर रहे हैं।

मुझे यह भी याद है कि कुछ दिन पहले एक अन्तरराष्ट्रीय ईसाई पादरियों की सभा जो कहीं यूरोप में हुई उसमें एक पैंफलेट प्रकाशित हुआ था। मुझे इस सम्मेलन का स्थल याद नहीं है—जो कि 12-13 दिन चला था। उस पैंफलेट में उन्होंने एक योजना प्रस्तावित की कि वे पूरे विंध्य और सतपुड़ा की पहाड़ियों के आरपार तथा पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को घेरते हुए समुद्री किनारों पर केवल मात्र ईसाई केन्द्रों की नींव डालेंगे। यह तो पहला उदाहरण है। दूसरे उदाहरण में पूरे हिमालय क्षेत्र में आधिपत्य स्थापित करने की घोषणा की।

हममें से कुछ को याद होगा, यद्यपि हमारा वर्तमान राजनीतिक स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है या कोई ज्ञान नहीं है, कि ये मिशन हमारे देश में गत 25-30 सालों से विकसित हो रहे हैं। हमें यह भी याद होगा कि हमारे देश के अन्दर स्थानीय मिशन और मुस्लिम लीग के बीच यह समझौता हुआ कि वह दोनों मिलकर विभाजन करेंगे पूरे देश का, जो विंध्याचल और हिमालय के बीच में है। सम्पूर्ण गंगा का मैदानी इलाका, पंजाब और मणिपुर मुस्लिमों को जाएगा तथा प्रायद्वीप व हिमालय ईसाइयों के हिस्से में आएंगे। यह समाचार किसी प्रकार अखबारों में उन दिनों आ गया। वास्तव में कहें तो हम यहाँ के भूमि-पुत्रों से ऐसी आशा नहीं कर सकते। इस कार्य को एक आक्रामक व्यवहार माना जाना चाहिए। वे केवल यहाँ के धार्मिक तथा सामाजिक ताने-बाने को ही ध्वस्त नहीं करना चाहते बल्कि यहाँ अपना कई स्थलों पर राजनीतिक बाहुल्य क्षेत्र स्थापित करना चाहते हैं, और सम्भव हो तो पूरे देश पर आधिपत्य चाहते हैं। यह निश्चित रूप से एक आक्रामक रवैया है और इसलिए हम कह सकते हैं कि वो इस धरती के पुत्र नहीं हैं।

ईसाई मिशनरी जहाँ भी जाते हैं मानव सेवा का बहाना लेकर ही जाते हैं, परन्तु कुछ वर्षों में वे क्या गुल खिलाते हैं, यह देखिये स्वतंत्र केनिया देश (अफ्रीका महाद्वीप) के प्रथम राष्ट्रपति जोमिया के न्याटो के शब्दों में, 'जब ईसाई मिशनरी हमारे देश में आये, उनके हाथ में बाइबिल थी। उन्होंने हमें बाइबिल दी और कहा—आंखें बन्द करो और प्रभु यीशू का ध्यान करो। हमने आँखें बन्द की और प्रभु का ध्यान किया। हमने आँखें खोली तो हमने देखा बाइबिल हमारे हाथ में है और देश की सारी भूमि मिशनरियों के हाथ में थी।

—प्रथम राष्ट्रपति केन्या (अफ्रीका)

रोमां रोलां कहता है कि पचीस साल पहले की बात है। मैं सुबह के समय घूमता हुआ एक गिरजे के सामने से गुजरा, पादरी प्रवचन पढ़ रहा था—

'ईश्वर! हमारे शत्रुओं का नाश करो, अधर्मियों के लिए नरक के द्वार खोल दो, हमारे देश को सुख-सम्पदा से भर दो, हमारे सम्राट को दिग्विजयी बनाओ...'

आज एक-चौथाई सदी बीतने पर भी हमारे गिरजाघरों में लगभग इसी प्रकार के प्रवचन पढ़े जाते हैं। उनके खयाल से मेरे मन में विद्रोह की आंधी आयी और मैं सोचता हूँ : कैसा है यह प्यारा ईश्वर? वह दया और सहानुभूति का ईश्वर नहीं। वह अनन्त प्रेम का ईश्वर नहीं, वरन् वह हिंसा का ईश्वर है, रक्तपात का ईश्वर है जो दो-दो विश्वयुद्धों को जन्म देकर शैतान की हंसी हंसता है।

पिछले पचीस सालों से मैं उस ईश्वर से घृणा करता आ रहा हूँ और अपनी कल्पना में ऐसे ईश्वर को साकार करता रहा हूँ जो मनुष्यों के अपार गौरव और महानता का प्रतीक हो। उस ईश्वर की खोज में मैंने संसार के सभी नये-पुराने दर्शनशास्त्र पढ़े हैं, परन्तु मुझे संतोष नहीं मिला।

हां, हिन्दुओं का वेदान्त पढ़ने पर मुझे जरूर कुछ संतोष हुआ है और मेरी कल्पना का ईश्वर साकार किया है। हिन्दू दर्शन कहता है—

मुझे घृणा से मुक्त कर दो, मुझे अजातशत्रु बनाओ और भावनाओं के तूफान में मुझे इस प्रकार अचल-अटल बनाओ कि मैं सबको समझ सकूं और प्यार कर सकूं।

हिन्दू धर्म एकमात्र नगद धर्म है जो साधना से इसी लोक में, इसी शरीर में प्रभु से मिलन करा देता है अन्य पंथ तो उधार हैं जो मरने के बाद कयामत के दिन के बाद बहिश्त जाने का, लम्बी—दूर अवधि का आश्वासन भर देते हैं।

हिन्दू धर्म प्रतिमुहूर्त का धर्म है जबकि ईसाइयत सप्ताह में एक घण्टे का धर्म है गिरजा में जाना। **—स्वामी रामतीर्थ**

झारखण्ड दर्पण

'झारखण्ड पार्टी' के अध्यक्ष श्री डेविड मुंजनी ने गत 19 मई '68 को पार्टी के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि यदि अलग झारखण्ड राज्य की माँग नहीं मानी गई तो भारत सरकार को उसी स्थिति का सामना करना पड़ेगा जिसका वह नागालैण्ड और मिजो पहाड़ी जिलों में कर रही है। यह धमकी उस कुचक्र की संकेतक है जो भारत को पृथक्तावाद और विघटनवाद द्वारा अशक्त बनाने के लिए प्रकट व अप्रकट दोनों रूपों में एक लम्बे अरसे से चलाया जा रहा है।

नागालैण्ड में पादरी माइकल स्कॉट का दुश्चक्र

नागालैण्ड में विदेशी पादरी माइकल स्कॉट ने विद्रोही नागाओं का तथाकथित आध्यात्मिक व राजनीतिक नेता बनकर जो चालबाजियाँ कीं और विदेशों में भारत को बदनाम करने के लिए जो दुश्चक्र चलाया वह सर्वविदित है और उसी का यह परिणाम था कि ढुलमुल व तुष्टीकरण की नीति अपनाने वाली भारत सरकार को भी माइकल स्कॉट को भारत से चले जाने का आदेश देना पड़ा। विद्रोही नागाओं द्वारा इस समय की जा रही करतूतों से हर कोई परिचित हैं।

आज छोटानागपुर में आदिवासी विक्षोभ के बहाने पुनः जो झारखण्ड आन्दोलन चलाया जा रहा है उसका मूल ऐतिहासिक व तथ्यपूर्ण परिचय देना इसलिए समीचीन होगा ताकि इससे अनभिज्ञ व्यक्ति इसकी वास्तविकता व पृष्ठभूमि को जान सकें। इन तथ्योद्घाटनों से अवगत होने पर हमारे देशभक्त भारतीय चाहे वे किसी भी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति के हों, सही मार्ग व युक्त-अयुक्त का निर्णय स्वयं कर सकेंगे।

विदेशी पादरियों और मुस्लिम लीग का संयुक्त षड्यन्त्र

'विदेशी पादरी बेल्जियम और जर्मनी से आए तथा बिहार और उड़ीसा, जशपुर में सन् 1834 में बस गये। वे बहुत से लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने में सफल हुए। अपनी सत्ता को बढ़ाने तथा संगठित करने और सम्भवतः

इस भाग में विदेशियों के पाँव जमाने के लिए यह कहा जाता था कि पादरी लोग आदिवासियों को अन्य जातियों से पृथक् रखने के सम्बन्ध में प्रचार किया करते थे और इस प्रकार झारखण्ड आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

आन्दोलन को आदिवासियों, स्थानीय ईसाइयों और मुसलमानों का समर्थन प्राप्त था। पादरियों ने इस आन्दोलन को अपने प्रभाव में रखने के लिए इसमें राष्ट्रवादी लोगों को सम्मिलित नहीं होने दिया। 1938 में पाकिस्तान की माँग के साथ-साथ आदिवासी-स्थान की माँग ने भी जोर पकड़ा। कहा जाता है कि मुस्लिम लीग ने इस प्रचार कार्य के लिये एक लाख रुपया प्रदान किया।'

—जस्टिस डॉ. भवानी शंकर नियोगी

(नियोगी कमीशन रिपोर्ट पृष्ठ 4, 5)

नागालैण्ड से नागपुर वाया छोटानागपुर

'जब भारत में स्वतन्त्रता का उदय हुआ तब आदिवासी-स्थान का आन्दोलन और भी तीव्र कर दिया गया, विशेषकर इस दृष्टि से कि पूर्वी बंगाल को हैदराबाद से संयुक्त करने के लिए एक कोरीडोर (गलियारा) प्राप्त किया जा सके और जिसका उपयोग भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध के समय एक सैनिक अंचल के रूप में किया जाय।' (नियोगी कमीशन रिपोर्ट पृ. 5)

मुस्लिम लीग तथा झारखण्ड पार्टी के बीच गुप्त पत्राचार

संस्कृति विहार के पास कलकत्ता जिला मुस्लिम लीग के महामन्त्री तथा कलकत्ता कारपोरेशन के तत्कालीन मेयर श्री एस. एम. उस्मान द्वारा प्रो. जे. सी. हेवर्ड के नाम लिखे सन् 1947 के गुप्त पत्रों की फोटोकापी है जिससे प्रमाणित होता है कि मुस्लिम लीग ने जयपाल सिंह को विशाल आर्थिक सहायता प्रदान की। देश की हत्या करने वाली मुस्लिम लीग से सहायता एवं आशीर्वाद पाने वाले झारखण्डी नेताओं की नीयत के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

बिरसा भगवान एवं ईसाई पादरी

दुर्भाग्य की बात है कि जो ईसाई पादरी बिरसा भगवान एवं उनके कार्य का जीवन भर विरोध करते रहे तथा जिनके अत्याचार के विरुद्ध ही बिरसा भगवान ने अपना धनुष-बाण उठाया वे झारखण्ड आन्दोलन में बिरसा का नाम लेकर भोले-भाले वनवासियों को बहकाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

'The Christian missionaries took
Birsa and his preachers to be mad.'

—Life and Times of Birsa Bhagwan P. 84

By Surendra Prasad Sinha

Publisher : Bihar Tribal Research Institute, Ranchi

'ईसाई पादरी बिरसा और उसके प्रचारकों को पागल समझते थे।'

(लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान पृ. 84)

जो ईसाई पादरी आदिवासियों के भगवान (बिरसा) को पागल कहते रहे, आज उन्हें बिरसा भगवान के नाम का दुरुपयोग कर आदिवासियों का नेतृत्व करने का क्या अधिकार है?

बिरसा भक्तों पर ईसाइयों का अत्याचार

'They (Mundas) were also demoralised by oppressions practiced upon them by the German Lutheran Mission, viz., arresting and dragging the Mundas, making them naked, snatching money from their possession and freeing some of them from wrongful confinement after getting some ransom, of looting the property of these victims and getting the Kabooleats signed from them and dispossessing them of their land, of cutting those trees which they worshipped.'

—Life and Times of Birsa Bhagwan, P. 41

'उन मुण्डा लोगों ने जर्मन लूथरन मिशन के निम्न अत्याचारों के विरुद्ध ज्ञापन दिया, यथा, मुण्डा लोगों को गिरफ्तार करना तथा घसीटना, उन्हें नंगा कर देना, उनके पास से धन छीनना, उनमें से कुछ से रिश्वत लेकर उन्हें अवैध गिरफ्तारी से छुड़वा देना, उनके घरों से सम्पत्ति लूट लेना तथा उनसे कबूलियत पर हस्ताक्षर करवा लेना, उनसे जमीन छीन लेना, तथा उन वृक्षों को कटवा देना जिनकी वे पूजा करते थे।'

—लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान (पृष्ठ 41)

बिरसा भगवान की गिरफ्तारी एवं हत्या के दोषी

'The large scale slaughter of men, women and children by the British army made the local officers very panicky and the machinery of administration was fully mobilized to suppress this movement. The high officers of the executive and the police, reinforced by the military and assisted by some traitors, led to regular hunt in search of Birsa and his followers. The Christian informants were playing havoc in their respective areas and on slightest information Mundas were arrested. The villages were

surrounded and a thorough search was conducted. A reign of terror actually ensued.'

—Life and Times of Birsa Bhagwan, P. 100

'ब्रिटिश फौज द्वारा पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के कत्लेआम से स्थानीय अधिकारी बहुत आतंकित हो गये और शासनतन्त्र को इस आन्दोलन को कुचल डालने के लिये गतिशील किया गया। शासन एवं पुलिस के बड़े अधिकारियों ने, जिन्हें सेना से भी कुमुक मिल गई थी, कुछ गद्दारों से सहयोग प्राप्त कर बिरसा और उसके अनुयायियों की बाकायदा खोज की। ईसाई सूचनादाता अपने-अपने क्षेत्र में तबाही मचा रहे थे तथा सरकारी सूचना पर मुण्डा लोगों को गिरफ्तार कर लिया जाता था। गाँवों को घेर लिया जाता और एक-एक वस्तु की पूरी तलाशी ली जाती थी। इस तरह वास्तव में एक आतंक का राज्य प्रारम्भ हो गया था।'

—लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान (पृष्ठ 100)

उक्त तथ्यों से प्रमाणित होता है कि ब्रिटिश शासन एवं ईसाई पादरियों ने मिलकर देवपुरुष बिरसा भगवान तथा उनके अनुयायियों पर भयंकर अत्याचार किए, उन्हें जी भर कर सताया तथा उनके ग्रामों में जाकर सैकड़ों निरपराध वनवासियों को गोली तथा तोपों का शिकार बनाया और अन्त में रांची जेल में विष देकर बिरसा भगवान के प्राण हरण कर लिये।

राष्ट्रवादी भारतीय सतर्क रहें

देश के प्रति निष्ठा रखने वाले भारतीयों को उन विदेशी मिशनरियों से सावधान रहना चाहिए जो धर्म की आड़ में राजनीति का खेल खेलते हुए कोई भी हथकण्डा अपनाने से नहीं चूकते और हमारे राष्ट्र को सदियों की गुलामी के बाद भी पराश्रयी, अशक्त व परानुगामी बनाये रखना चाहते हैं।

(रांची एक्सप्रेस से साभार)

झारखण्डी नेतागण—देश के मित्र अथवा कृतघ्न शत्रु?

किसी भी आन्दोलन के 'राष्ट्रीय आन्दोलन' या 'राष्ट्र-घातक' आन्दोलन होने की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि उस आन्दोलन के नेतागण शुद्ध राष्ट्रभक्त हैं अथवा नहीं। किसी नेता विशेष की राष्ट्रभक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण यह होना चाहिये कि—

(क) वह भारतमाता को केवल एक भूखण्ड मात्र न मानकर माता जगदम्बा का दिव्य देव-विग्रह मानता हो।

(ख) उस भगवती जगदम्बा की सेवा, पूजा, अर्चना, उसकी रक्षा एवं संवर्द्धन के लिए उक्त नेता के जीवन का प्रत्येक श्वास समर्पित हो।

(ग) देव-भक्ति के समान देश-भक्ति भी निःस्वार्थ, निष्कपट एवं राजनीति के क्षुद्र स्वार्थों से मुक्त हो।

(घ) वह नेता किसी देश-द्रोही शक्ति के साथ कभी सम्पर्क अथवा समझौता न करे।

(ङ) वह मनसा, वाचा, कर्मणा अपना सर्वस्व भारत एवं भारतीयता की पूजा के लिए समर्पित करने को सदा तत्पर हो।

उक्त कसौटियों से झारखण्ड आन्दोलन के जनक एवं प्रेरक नेताओं की राष्ट्रभक्ति के विषय में हर ईमानदार भारतीय को गम्भीर सन्देह पैदा हो जाता है।

पाकिस्तान के ढंग पर अलग झारखण्ड

'लूथरन और रोमन मिशन के प्रभाव द्वारा आदिवासियों में जो पृथक् रहने की भावना का जन्म हुआ, वह ब्रिटिश सरकार तथा मिशनरियों की संयुक्त नीति का ही परिणाम था। साइमन कमीशन की सिफारिश पर सन् 1931 की जनगणना में मूल हिन्दू जाति से आदिवासियों का विच्छेद कर दिया गया और सन् 1935 में इसके इन्डिया ऐक्ट में परिणत हो जाने पर तो पाकिस्तान के ढंग पर एक अलग झारखण्ड की माँग के लिए एक क्षेत्र तैयार हो गया।'

—नियोगी कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ 25

आदिवासी महासभा

सन् 1931 में श्री एम. डी. तिग्गा ने 'छोटानागपुर केर पुत्री' नामक एक पुस्तक लिखी। यह रांची में छपी। इसके पृष्ठ 14 पर लिखा है—

'आदिवासी मनके राजनीतिक और आर्थिक पतन के देखिके 1898 के साल में एक सभा खड़ा भेलक। उकर शुरु नाम 'छोटानागपुर क्रिश्चियन एसोसियेशन' रहे। बढ़ते-बढ़ते 1915 साल में उ सभा कुछ मजबूत भइ गेलक और उकर नाम 'छोटानागपुर उन्नति समाज' रखल गेलक। अन्त मा अभी ओहे सभा 1938 साल में 'आदिवासी महासभा' केर नाम से चालू रहे।'

श्री जयपाल सिंह का विद्रोही भाषण

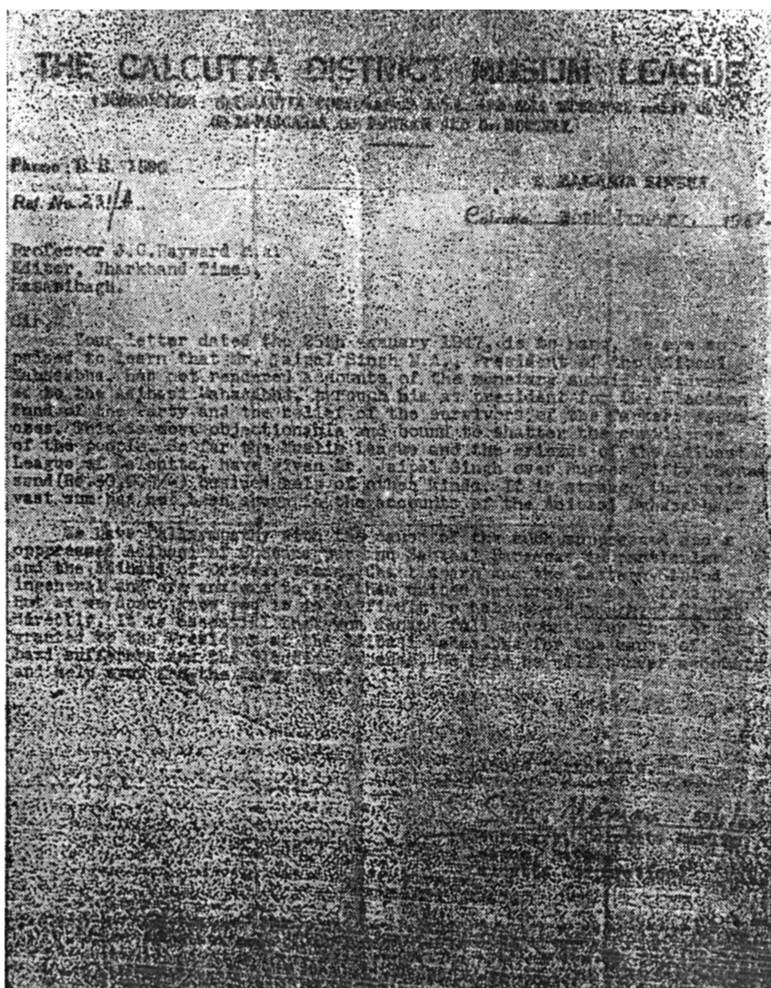
21 जनवरी सन् 1939 को रांची में प्रथम बार आदिवासी महासभा की कान्फ्रेंस बुलाई गयी। उसमें श्री जयपाल सिंह ने अध्यक्षीय भाषण में कहा—'आज हम सब आदिवासी अपनी स्वतन्त्रता के संघर्ष के लिए तथा बहुसंख्यक के अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए एक हैं। ये हम लोगों का एक संयुक्त मोर्चा है, जो आदिवासियों के इतिहास में अभूतपूर्व है। सभी मिशनरी संस्थाएँ, जो यहाँ कार्य कर रही हैं, हमारे साथ हैं। यहाँ तक कि बंगाली लोग भी विभाजन की माँग कर रहे

हैं। यूरोपियन, एंग्लो इण्डियन सभी हमारे साथ खुली सहानुभूति दिखा रहे हैं।'

—नियोगी कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ 26

जयपाल सिंह की मुस्लिम लीग से साँठगाँठ

कलकत्ता जिला मुस्लिम लीग के मन्त्री तथा कलकत्ता कार्पोरेशन के तत्कालीन मेयर श्री एस. एम. उस्मान ने 30 जनवरी, 1947 को श्री जयपाल सिंह के मन्त्री प्रो. जे. सी. हेवर्ड को जो पत्र लिखा उसमें झारखण्डी नेताओं की देशद्रोही शक्तियों के साथ साँठगाँठ करके भारत की एकता एवं अखण्डता को नष्ट-भ्रष्ट करने के षड्यन्त्र का पर्दाफाश हो जाता है।



THE CALCUTTA DISTRICT MUSLIM LEAGUE

Ref. No. 231/A

Professor J. C. Hayward
Editor, Jharkhand Times,
Hazaribagh.

Sir,

फोटो चित्रित पत्र का हिन्दी अनुवाद :

कलकत्ता जिला मुस्लिम लीग

अधिकार क्षेत्र : (1) कलकत्ता कार्पोरेशन क्षेत्र, तथा (2) 24 परगना (3) हावड़ा तथा (4) हुगली के मिल म्यूनिसिपल क्षेत्र।

फोन : बी. बी 1590 — 8, जकारिया स्ट्रीट

कलकत्ता, 30 जनवरी, 1947

प्रो. जे. सी. हेवर्ड, एम. ए.
एडिटर, झारखण्ड टाइम्स,
हजारीबाग।

श्रीमन्,

आपका पत्र दिनांक 25 जनवरी, 1947 हस्तगत हुआ है। हमें यह जानकर अचंभा हुआ कि श्री जयपाल सिंह, एम. ए. अध्यक्ष, आदिवासी महासभा ने उन आर्थिक सहायताओं का कोई हिसाब नहीं दिया, जो उनके आदिवासी महासभा के अध्यक्ष होने के नाते, उनके माध्यम से पार्टी के चुनाव फण्ड के लिए तथा तपकरा संहार के हताहतों की मदद के लिए दी गई थी। यह बहुत आपत्तिजनक बात है तथा इससे लोगों का विश्वास टूट जाता है। अभी तक मुस्लिम लीग तथा फ्रेंड्स आफ आदिवासी लीग, कलकत्ता ने श्री जयपाल सिंह को अन्य प्रकार की प्रचुर सहायता के अतिरिक्त 50,000 रु. (पचास हजार रुपया) से अधिक दिया है। यह विचित्र बात है कि इस भारी रकम को आदिवासी महासभा के हिसाब-किताब में नहीं दिखाया गया है।

हमें, विशेष रूप से छोटानागपुर तथा संथाल परगना के, तथा सामान्य रूप से उड़ीसा, विजाग, छत्तीसगढ़ तथा पूर्वी राज्यों के अतिशय दलित एवं पीड़ित आदिवासियों से पूर्ण सहानुभूति है तथा हम उन्हें संगठित तथा एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में फलता-फूलता देखने के लिए आतुर हैं। किन्तु, क्योंकि हम आपको नहीं जानते, अतः 'झारखण्ड टाइम्स' को सीधे ही सहायता भेजना कठिन है। यह आवश्यक है कि आप आदिवासी महासभा के अध्यक्ष को आदिवासी पीड़ितों तथा चुनाव खर्चे के लिए दी गई प्रचुर आर्थिक सहायता का पूरा हिसाब माँगें। हम आशा करते हैं कि वह हिसाब दे देंगे तथा आपको पार्टी के कोष से सहायता करेंगे।

आपका विश्वासी,
(हस्ताक्षर) एस. एम. उस्मान (30.1.47)
मन्त्री, कलकत्ता मुस्लिम लीग
मेयर, कलकत्ता कार्पोरेशन

देशभक्त पाठक विचार करें—

(क) मुस्लिम लीग से सहायता माँगने वाले मुस्लिम लीग के समान ही देश की हत्या करना चाहते हैं।

(ख) मुस्लिम लीग को विदेशी ब्रिटिश शासन का समर्थन प्राप्त था तथा मुस्लिम लीग द्वारा निर्मित पाकिस्तान ब्रिटेन-अमरीका के सैनिक संरक्षण में ही भारत पर बार-बार आक्रमण करता है।

(ग) जिस प्रकार मुस्लिम लीग ने भारत की छाती में छुरा घोंपकर पाकिस्तान एक अलग राष्ट्र बनाया, उसी प्रकार वह झारखण्ड को भारत से पृथक् एक 'स्वतन्त्र राष्ट्र' के रूप में देखने के लिए आतुर थी।

स्वतन्त्र प्रभुसत्ता सम्पन्न भारतीय जनतन्त्र के घटक कोट्यावधि स्वतन्त्र भारतीय नागरिक उक्त तथ्यों को अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से अपनी अखंड राष्ट्रनिष्ठा के निकष पर कस कर निर्णय करें कि झारखण्ड के नेतागण भारत-भक्त हैं अथवा भारत के कृतघ्न शत्रु?

पाश्चात्य ईसाई जगत् द्वारा मानवता का सर्वसंहार

'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्ध-पिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार-परायण तथा सर्वाधिक सत्ता-मदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में, पाश्चात्य ईसाईयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किया है; इनकी सेनाओं ने, जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर-ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा-खसोटा—पूर्णतया अशिक्षित आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर ईसाई राष्ट्रों तक के प्रति उनका यही अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, अफ्रीकावासी, आस्ट्रेलियावासी तथा एशियाई जनसमूह—सभी इस विचित्र प्रकार के 'ईसाई-प्रेम' के शिकार हुए हैं, जिसके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों का, सामाजिक संस्थाओं का, तथा 'ईसाई-प्रेम' के शिकार हुए व्यक्तियों की जीवन-पद्धति का विनाश, शराबखोरी, यौन रोगों, व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, इत्यादि-इत्यादि।'

डॉ. पितृम ए. सोरोकिन

डाइरेक्टर, हार्वर्ड रिसर्च सेन्टर इन क्रिएटिव अल्ट्रइज्म,

(रीकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी, पृ. 47

प्रकाशक : भारतीय विद्या भवन, बम्बई)

तीन विदेशी शक्तियों का गठजोड़

आज देश के पूर्वांचल में 3 विदेशी राजनीतिक शक्तियों का कुत्सित गठजोड़ चल रहा है। 26 जनवरी, 1968 के दिन (गणतन्त्र दिवस पर) गोहाटी महानगरी में चीनपरस्त कम्युनिस्टों, पाकपरस्त मुस्लिम घुसपैठियों तथा एंग्लो अमरीकन ब्लाक के विदेशी पादरियों ने मिलकर जो भारत एवं भारतीयता का अपमान करते हुए, भारत के राष्ट्रीय ध्वज को जलाया, भारतीयों की धन-सम्पत्ति से खुलेआम होली खेली तथा भारतीयों को असम से निकल जाने की धमकियाँ दीं, उससे राज्य एवं राष्ट्र को जिस प्रकार सजग हो जाने की आवश्यकता थी वह आशा पूरी नहीं हुई। आज छोटानागपुर में भी उन्हीं तीनों विदेशी राजनीतिक शक्तियों का अपवित्र गठबन्धन चल रहा है ताकि झारखण्ड राज्य बना कर ईसाईस्तान के लिए मार्ग साफ किया जा सके।

देशभक्त नगरवासी, ग्रामवासी, वनवासी बन्धुओं को भारतमाता के इन कुटिल शत्रुओं से सावधान रहना चाहिए। इस कार्य में देश के 50 कोटि भारतवासी सदा उनके साथ हैं। भारतीय इतिहास के इस निर्णायक मोड़ पर यदि हम चूक गये तो भावी इतिहास हमें कभी क्षमा नहीं करेगा!!!



ज्यों-ज्यों ईसाइयत का प्रचार बढ़ा, चर्च की स्थापना हुई त्यों-त्यों ईसाइयत पीछे हटती गयी, चर्च आगे आता गया। चर्च के संगठन में ईसा की शिक्षाओं के स्थान पर चर्च के अध्यक्ष पोप का हुक्म चलने लगा। चर्च धर्म के प्रचार का केन्द्र होने के स्थान पर भौतिक शक्ति का केन्द्र हो गया। पोप का भी धार्मिकता के नाम पर एक दुनियावी राज्य हो गया।

—प्रो. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार

पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृतियों में भेद

पश्चिम ने ईसा मसीह के धर्म-संदेशों को मुंह-मुंह से स्वीकार किया है। ईसाइयत के मानव प्रेम का सुन्दर उदाहरण मिलता है। जो सबसे गरीब हो उसे वस्त्र देने चाहिए, जो भूखा हो उसे अन्न देना चाहिए—यह बात ईसाई धर्म में जितनी विशद रूप से कही गई है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। (उपर्युक्त मानव-प्रेम के स्थान पर) यूरोप में हमें स्वाधीनता का कलुषित और स्वदेश पूजा का विषाक्त रूप देखने को मिलता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर



रोमन कैथोलिक मिशन को 'अवैध' रियायत

रांची में रोमन कैथोलिक मिशन के अधिकार में विगत 4 वर्ष से 46½ एकड़ सरकारी खास महल जमीन अवैध रूप से पड़ी हुई है। ब्रिटिश शासन द्वारा रोमन मिशन को सन् 1916 में पुरुलिया रोड पर स्थित 46½ एकड़ सरकारी खास महाल जमीन 25 वर्ष के पट्टे (लीज) पर धार्मिक, शैक्षणिक एवं जनसेवी कार्य के लिए मात्र 15 रुपये प्रति एकड़ प्रतिवर्ष की सस्ती दर पर दी गयी थी। सन् 1941 में ब्रिटिश सरकार द्वारा पुनः वही जमीन अगले 25 वर्ष के लिए पट्टे पर दे दी गयी। उस पट्टे की अवधि 31 मार्च, 1966 को समाप्त हो गयी। रोमन मिशन ने उस भूमि पर सेन्ट जेवियर कॉलेज, सेन्ट जॉन स्कूल, उर्सूलाइन कॉनवेन्ट, मैनेरसा हाउस, सेन्ट एलाइस मिडिल तथा हाई स्कूल, सेन्ट जॉन क्लब, लायला हॉस्टल, कैथोलिक प्रेस, कैथोलिक बक, कैथोलिक चर्च, टेक्निकल स्कूल, कैथोलिक कोऑपरेटिव सोसाइटी इत्यादि दर्जनों संस्थाएं खड़ी कर ली हैं।

पिछले झारखण्ड आन्दोलन के समय सभी जुलूस मिशन के अहाते से ही निकलते थे। रोमन मिशन चर्च के सामने ही पुलिस की एक जीप को जला दिया गया था। मिशन कम्पाउण्ड की सभी दीवारों पर बड़े भयानक नारे लिखे रहते थे, यथा 'पुलिस की गाड़ी पर बम फेंको।' पट्टे की समाप्ति के बाद से आज तक लगातार चार वर्षों से मिशन का उस भूमि पर अवैध कब्जा चल रहा है।

संस्कृति विहार की ओर से मई, 1968 में ही बिहार सरकार को आवेदन दिया गया था कि सारी भूमि भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए निर्मित इस संस्था (संस्कृति विहार) को 25 वर्ष के पट्टे पर दे दी जाए। संस्कृति विहार की ओर से इस भूमि के लिए दुगुना किराया तथा बिहार सरकार को 25 लाख रुपया सलामी देने का प्रस्ताव भी किया गया था। पट्टे के नियमों के अनुसार पट्टे की अवधि की समाप्ति के बाद जो पट्टादार पट्टे की भूमि पर कब्जा बनाये रखता है उसे वही भूमि पुनः पट्टे पर नहीं मिल सकती। बिहार सरकार देशी एवं विदेशी राजनीतिक प्रभाव के कारण अभी तक उस भूमि के पट्टे का निर्णय नहीं कर पायी है तथा पोप को प्रसन्न करने के लिए इस विषय में अकारण टाल-मटोल किया जा रहा है। पता चला है कि इस मामले में केन्द्रीय स्तर पर दबाव चल रहा है। मैं सरकार को चेतावनी देता हूँ कि यदि हमें न्याय नहीं दिया गया तो इस विषय में एक विराट् जन आन्दोलन खड़ा किया जायेगा और इसकी सारी जवाबदेही सरकार पर होगी।

31 जनवरी 1971, रांची एक्सप्रेस

नागालैण्ड से केरल तक ईसाईस्तान बनाने का भीषण कुचक्र

24 प्रतिशत मुसलमानों की मांग पर पाकिस्तान बन गया। तो 30 प्रतिशत ईसाई ईसाईस्तान क्यों नहीं बना सकते। इस कुतर्क के संदर्भ में ईसाइयों के प्रयास और मन्सूबों की एक झांकी प्रस्तुत है। प्रो. ओबराय अनेक वर्षों तक आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ ईसाई मिशनरियों का कार्य सर्वाधिक है, सेवा कार्य कर चुके हैं।

—सम्पादक, ज्ञानदीप

ईसाई शासकवर्ग को प्रभावित करने में सफल

विदेशी दासता के काल में ईसाइयों ने भारत में धर्म-परिवर्तन के लिए मिशनरी के रूप में आकर काम करना आरम्भ किया था। विगत सैकड़ों वर्षों से ईसाई मिशनरी ब्रिटिश राज्यकाल की छत्रछाया में निर्बाध एवं निःशंक रूप से भारत में भोले-भाले लोगों को किसी-न-किसी प्रलोभन द्वारा फँसा कर उन्हें पतित करके ईसाई बना लेते थे। निम्नजातीय असंख्य व्यक्ति किसी-न-किसी कारण से हिन्दू धर्म को छोड़कर ईसाई बनते रहे। परन्तु भारतवासी अंग्रेजों की तरह विदेशी ईसाइयों को भारत का शत्रु समझते थे और उन्हें खदेड़ने के लिए अनेकानेक महापुरुषों ने अपनी आहुतियाँ दीं।

स्वतन्त्रता के उपरान्त यह आशा होना स्वाभाविक था कि इन विदेशी ईसाइयों को भारत से निकाल दिया जायेगा और घबरा करके पतित किए गए अपने भाइयों को वापस हिन्दू धर्म में लाने की ओर ध्यान दिया जायेगा। किन्तु यह आशा धूमिल हो गई क्योंकि कूटनीतिक स्तर पर विदेशी ईसाई पादरी भारतीय शासकवर्ग को प्रभावित करने में अत्यधिक सफल रहे। यही कारण है कि आज भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् भी विदेशी धर्मगुरु का चोला पहनकर भारत में विघटन के लिए घोर षड्यन्त्र रचने में सक्रिय हैं तथा भारत में नागालैण्ड, मिजोलैण्ड, झारखण्ड इत्यादि ईसाई राज्य निर्माण कर भारत को पुनः खंडित करने में सचेष्ट हैं। आज देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि भारत में देश के शत्रु को देश के भीतर धर्मगुरु के रूप में पूजा जा रहा है।

ईसाई एवं मुस्लिम लीग के बीच दुरभिसंधि

इतिहास के पन्ने पलटने पर यह दृष्टिगोचर होता है कि विदेशी ईसाई पादरियों और मुस्लिम लीग के बीच यह दुरभिसंधि थी कि दोनों मिलकर नागालैण्ड से हैदराबाद तथा छोटानागपुर के रास्ते से लगभग तीन हजार मील लम्बी अभारतीय राज्यों की एक शृंखला बनायेंगे जिसमें नागालैण्ड, मिजोलैण्ड ईसाई राज्य होंगे, पूर्वी पाकिस्तान मुस्लिम राज्य होगा, झारखण्ड (रांची, पलामू, धनबाद, सिंहभूम, हजारीबाग, संथाल परगना) ईसाई राज्य होंगे। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश के जसपुर, अम्बिकापुर से लेकर बस्तर क्षेत्र तक तथा उड़ीसा के सुन्दरगढ़ से लेकर विजय क्षेत्र तक आदिवासी बाहुल्य शृंखला में ईसाई राज्य होगा। जबकि उसके आगे हैदराबाद में मुस्लिम राज्य। यह स्थिति सन् 1947 तक की थी। अब हैदराबाद के स्थान पर आन्ध्र के 25 प्रतिशत लोगों को ईसाई बना लिया गया है। मद्रास तथा मैसूर में भी ईसाई 25 प्रतिशत के लगभग हैं तथा केरल में 28 प्रतिशत से ऊपर हैं। विदेशी ईसाई मिशनरियों का यह तर्क है कि जिस भारत देश में 24 प्रतिशत मुसलमान दुनिया के सबसे बड़े इस्लामी राज्य पाकिस्तान का निर्माण खंजर की नोक पर कर सकते हैं उस देश में तीस प्रतिशत ईसाई जिसकी पीठ पर दुनिया के 76 ईसाई देशों के समर्थन का हाथ है, नागालैण्ड से कन्याकुमारी तक ईसाईस्तान का निर्माण क्यों नहीं कर सकते?

रांची ईसाई मिशनरियों का केन्द्र

बिहार के जिला रांची को लीजिए। यह भारत ही नहीं एशिया भर में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का केन्द्र बन गया है और विदेशी मिशनरियों के झुंड पाये जाते हैं तथा रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है ताकि इस अविकसित क्षेत्र के सीधे-सादे आदिवासियों को अधिकाधिक संख्या में ईसाई बनाया जा सके। रांची जिला के कुछ क्षेत्रों में तो ईसाईयत का प्रकोप इतना बढ़ गया है कि वहाँ हिन्दुओं का जीना दूभर हो गया है। वह खुलेआम गो हत्या करते हैं, सरकारी स्कूलों के छात्रावासों में धोखे से हिन्दू छात्रों-अध्यापकों को गोमांस खिलाया जाता है। कई मन्दिरों को तोड़ा एवं भ्रष्ट किया जा रहा है। विगत अकाल के समय लाखों लोगों को ईसाइयों ने पतित करके उनका धर्म भ्रष्ट किया।

यही नहीं ज्यों-ज्यों ईसाई-गतिविधियों सम्बन्धी तथ्य सामने आते हैं तो उन्हें सुनकर खून खौलने लगता है और साथ ही यह रोना आता है कि विदेशियों को भारत को खंड-खंड करने के कुचक्र से रोका क्यों नहीं जा रहा? हिन्द महासागर में अंडमान निकोबार द्वीपों में ईसाइयों का प्रकोप अत्यन्त भीषण रूप धारण करता जा रहा है। निकोबार में शत-प्रतिशत लोग ईसाई बना लिए गये हैं। वहाँ पीछे आर. ए. एफ. (ब्रिटेन) का एक हवाई जहाज भी उतरा था।

रेडियो स्टेशन स्थापित—ईसाई कार्यक्रम का प्रसारण

मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर में स्टेशन रोड पर एक रेडियो स्टेशन स्थापित किया गया है, जहाँ सभी भारतीय भाषाओं में ईसाई कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं और उन कार्यक्रमों के रिकार्ड आदीस अबाबा (इथोपिया) से प्रसारित किये जाते हैं।

यदि 'सातावेशन आर्मी' ब्रिटेन की गतिविधियों सम्बन्धी रिपोर्ट पढ़ी जाये तो पता लगेगा कि मिशनरी बाइबिल के स्थान पर बन्दूक का हाथ पकड़ने के आदी हो चुके हैं। भारत सरकार ने गैरकानूनी सरगर्मियों को रोकने का जो बिल बनाया है उसका उपयोग इन्हीं पर किया जाना चाहिए।

अफ्रेशियाई देशों में 1968 में इस सातावेशन आर्मी ब्रिटेन द्वारा 788073 पौंड व्यय किये गये, इनमें 394605 पौंड अफ्रीका में और भारत में 218865 पौंड खर्च किए गए अर्थात् समूचे विश्व में ईसाई प्रसार के लिए जितनी धनराशि का व्यय किया गया है, उसका तीसरा भाग भारत में किया गया। यह स्थिति अत्यन्त विस्फोटक है। इंडोनेशिया में 39492 पौंड व्यय किए गए।

स्मरण रहे इन्हीं आंकड़ों के अनुसार पाकिस्तान में केवल 20561 पौंड खर्च हुए और बर्मा में 729 पौंड।

ये आँकड़े काफी दुख भरे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समय रहते चेतें और इस नवीन षड्यन्त्र को निर्मूल कर दें।

2 मई 1968, ज्ञानदीप

भारत में पादरियों का धर्म प्रचार हिन्दू धर्म को मिटाने का खुला षड्यंत्र है, जो कि एक लम्बे अरसे से चला आ रहा है। हिन्दुओं का तो यह धार्मिक कर्तव्य है कि वे ईसाइयों के षड्यंत्र से आत्म रक्षा में अपना तन-मन-धन लगा दें और आज जो हिन्दुओं को लपेटती हुई ईसाइयत की लपट परोक्ष रूप से उनकी ओर बढ़ रही है उसे यहीं पर बुझा दें। ऐसा करने से ही भारत में धर्मनिरपेक्षता, धार्मिक बंधुत्व तथा सच्चे लोकतंत्र की रक्षा हो सकेगी, अन्यथा आजादी को पुनः खतरे की संभावना हो सकती है। **—पं. श्रीराम शर्मा**

हमारा लक्ष्य होना चाहिये राष्ट्र का सैन्यीकरण करना और सेना का आधुनिकीकरण करना। आक्रांताओं को भारत की भूमि से निकाल फेंकना होगा।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय

वनवासियों की समस्याएं और समाधान

प्राचीनकाल में वनवासी

राम युग के वानर, रीछ और शबर छोटानागपुर अँचल के निवासी थे। डा. अरविन्द वर्मा के अभिमत में वे सम्भवतः दक्षिण से आये और इस अँचल में बस गये। राम ने इनका संगठन कर इन्हीं की सहायता से रावण को पराजित किया। वाल्मीकि रामायण में वानर का तात्पर्य वनवासियों से ही वर्णित है न कि बन्दर से। वनवास के समय पंचवटी में राम का निवास था जहाँ से इन्होंने वनवासियों का संगठन किया था। राम युग में ताड़का नामक राक्षसी बक्सर में, खर भारत के पूर्वांचल में, दूषण पश्चिमाँचल में और मारीच मध्याँचल में रावण के गुप्त आतंकवादी थे। ये छोटानागपुर के वनवासियों को त्रस्त करते थे और उत्तर के नगरवासियों को भी। इसलिए विश्वामित्र के आग्रह पर दशरथ ने राम को उनके साथ जाने की अनुमति दे दी और राम ने सर्वप्रथम ताड़का का वध किया। किन्तु प्रथम बार अन्य आतंकवादी से न निबट सके। अतएव भारत के कल्याण के लिए और आतंकवादियों के विनाश के लिए राम ने वनवास स्वीकार किया और पंचवटी क्षेत्र में मारीच का वध किया। भारत के वर्तमान मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार और बंगाल के मध्यवर्ती अंश के लोगों से राम ने आत्मीयता, सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करके उनके दिलों को जीता तथा उनका संगठन किया। केवट मिलन, शबरी का आतिथ्य ग्रहण, सुग्रीव के साथ मैत्री स्थापना इस बात के प्रमाण हैं और हमारे लिए प्रेरक तथा मार्गदर्शक हैं।

मुण्डाओं का विवरण मध्व पुराण में मरण्डा के रूप में आता है। समुद्रगुप्त के नाम शिलालेख में मरण्डा शब्द आया है। विष्णु पुराण में ग्यारह शासकों में मुण्डा का उल्लेख है। डा. वर्मा के अनुसार प्राचीनकाल में इस देश के प्रथम निवासी मुण्डा और उराँव हैं जो कौल रूप में वर्णित हैं। ये पारिवारिक शासक के अधीन रहते थे। जब उनकी संख्या बढ़ी तो अपने वंश के पारिवारिक प्रधान को राजा चुना।

वनवासियों की स्थिति

प्राचीन भारत में वनों की अधिकता थी। अतः जिस प्रकार गाँवों एवं नगरों में रहने वाले मनुष्य स्थानीय साधनों, कृषि और वाणिज्य के द्वारा अपनी जीविका चलाते थे उसी प्रकार वनवासी एवं गिरिजन वनों एवं पहाड़ों की सम्पदाओं से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। उनकी आवश्यकताएँ सीमित थीं और वे ग्रामों एवं नगरों की चकाचौंध के प्रेमी नहीं थे। यही कारण था कि उन्होंने ग्राम एवं नगरों के मनुष्यों की जीवन-विधि का अनुकरण नहीं किया। उनकी सारी आवश्यकताएँ जंगलों से पूरी होती थीं। जंगल के फल-फूल, लकड़ी के द्वारा तथा जंगल काटकर खेत बनाकर खेती भी करते थे और सुख से जंगलों में जीवन बिताते थे। वनों पर वे अपना प्रमुख अधिकार समझते थे। अतः उन्होंने इस सुख के सामने गाँवों एवं शहरों के सुखों को तुच्छ समझा और इधर ध्यान ही नहीं दिया। मुसलमानों का जब भारत पर अधिकार हुआ उस समय भी इन वनवासियों और गिरिजनों पर अत्याचार ही हुआ। उनको जीवन की धारा में मिलाने का प्रयत्न नहीं हुआ। उन्होंने भी अपनी साधारण आवश्यकताएँ जंगलों से ही पूरी करने के कारण सामान्य जन-जीवन में बहने तथा मिलने की कोशिश नहीं की। अंग्रेजों का जब भारत पर अधिकार हुआ तो वनवासी-बहुल स्थानों में वनवासियों ने उनका विरोध किया फलतः वे तरह-तरह से सताये और दबाए गये। वनवासियों की सरलता, असमर्थता और अशिक्षा ने अंग्रेजों के मन में राज्य विस्तार के समान अपने धर्म के विस्तार की भावना पैदा की। क्योंकि इससे उनके अपने धर्म के समर्थक बढ़ते थे जो उनकी दृढ़ता में सहायक होते। इसलिए उन्होंने वनवासियों के बीच धर्म-प्रचार करना शुरू किया।

ईसाई मिशनरी ने भारत में सदा उपेक्षित रहने वाले वनवासियों को शिक्षा, दवा, भोजन और नौकरी देकर उन्हें सुखी बनाने के बहाने से ईसाई बनाना शुरू किया। सदा से अपने लोगों से उपेक्षित रहने वाले वनवासी ईसाई बनकर तथा शिक्षित होकर सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे। सुख के लोभ से प्रक्रिया बढ़ने लगी। जंगली इलाकों में वनवासी ईसाई होने लगे। आज वनवासी इलाकों में वनवासी ईसाइयों की इतनी संख्या हो गई है कि आज के मिशनरी के बहकावे में आकर झारखण्ड की माँग करने लगे हैं। झारखण्ड की माँग यहाँ के वनवासियों की नहीं अपितु ईसाई बनकर सुखी जीवन बिताने वाले मिशनरियों में कार्यरत ईसाइयों की है। वे सीधे-सादे गैर-ईसाई वनवासियों को हर तरह से विरोध के लिए उकसाते हैं।

अंग्रेजों का इस देश में मूल उद्देश्य था अधिक से अधिक धन कमाना। भू-कर, आय का मुख्य स्रोत था। वे धीरे-धीरे उस पर अपना अधिकार बढ़ाते गये,

राजा-महाराजा उनके कब्जे में आते गये। जमींदारी व्यवस्था शुरू हुई। बिक्री नियम के कारण जमीन छीनी जाने लगी। फलतः इस क्षेत्र में बगावतों का सिलसिला शुरू हुआ। सिपाही विद्रोह के बाद सन् 1859 में रेन्ट ऐक्ट पास हुआ। सर्वे-सेटलमेन्ट के दौर चले। भू-सम्बन्धी नये कानून बनाये गये। वनवासियों के हाथ से बहुत-सी जमीन निकल गयी और निकलती ही गयी। आन्दोलन होने लगे। कई ताकतों ने मिलकर वनवासी और गैर-वनवासी के बीच एक खाई पैदा करने की कोशिश की फिर भी उनकी आन्तरिक एकता अखण्डित रही। यों तो देश की आजादी के पहले से भी इस क्षेत्र में आर्थिक सुधार के अन्य द्वार प्रशस्त होने लगे थे। खान और खनिज उद्योग शुरू हो चुके थे। जंगलों की कटाई भी होती थी और यदा-कदा ठेकेदारी भी चलती थी। मगर आजादी के बाद इन सभी क्षेत्रों में जैसे बाढ़-सी आ गई। इस क्षेत्र में बड़े-बड़े कल-कारखाने खुलने लगे। खनिजों एवं वनों का राष्ट्रीयकरण हुआ। जंगल की कटाई धुआँधार होने लगी। फलतः वनवासियों का जीवनयापन संकुचित हो गया तथा उनके जीवन के साधन का कोई दूसरा प्रबन्ध नहीं किया गया। इस असन्तोष के वातावरण का लाभ ईसाई मिशनरियों को हुआ। वे ईसाई धर्म के प्रचार में सदैव संलग्न थे।

इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि इस क्षेत्र की घोर उपेक्षा हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में जो कुछ भी काम हुआ है, उसमें ईसाई मिशनरियों की भूमिका प्रमुख रही है और रोजगार का लाभ भी धर्म परिवर्तित ईसाई समुदाय को अधिक हुआ है। संथाल परगना, हजारीबाग, गिरिडिह और पलामू देश के निरक्षर जिले हैं। यहाँ करीब 16 प्रतिशत ही साक्षर हैं। खनिज बहुल इस देश के लाखों वनवासी औद्योगीकरण के कारण औद्योगिक-बंजारे बन गये हैं। वनवासी आबादी में ईसाई वनवासी लगभग 30 प्रतिशत हैं। ईसाई हो जाने के बावजूद वनवासी अपनी सामाजिक मान्यताओं को छोड़ नहीं सका है। ये वनवासी भारतीय प्रशासन व्यवस्था को गैर मानते हैं, इसके प्रति उनके मन में रोष और भय है। यह एक दुखद स्थिति है कि बिहार के वार्षिक बजट के लिए छोटानागपुर, संथाल परगना क्षेत्र 75 प्रतिशत वित्तीय साधन उपलब्ध कराता है, लेकिन उसके हिस्से में मात्र 25 प्रतिशत आता है।

प्रस्तावित झारखण्ड राज्य की माँग को लेकर वनवासी नेताओं में अनेक मुद्दों पर मतभेद है। संसद सदस्य और झारखण्ड पार्टी के अध्यक्ष एन. ई. होरो चार विभिन्न राज्यों के 16 जिलों को मिलाकर झारखण्ड राज्य की कल्पना करते हैं। दूसरा कार्तिक उराँव की माँग के अन्तर्गत छोटानागपुर, संथाल परगना के सिर्फ 7 जिले ही आते हैं। जिनकी आबादी 1 करोड़ 43 लाख तथा क्षेत्रफल 79 हजार 638 वर्ग कि.मी. है। पृथक् झारखण्ड की माँग सबसे पहले सन् 1928 में सामने

आयी। साइमन कमीशन के आगमन पर ईसाई धर्म में दीक्षित और शिक्षित मुण्डा और उराँव युवकों ने रायसाहब बन्दी राम उराँव, जुएल लकारा, थियोहोर हुरा और आनन्द मोटोपने जैसे वनवासी नेताओं के नेतृत्व में साइमन कमीशन के सामने पृथक् झारखण्ड की माँग रखी थी। लेकिन इस माँग का विरोध छोटानागपुर के प्रवासी जमींदारों के संगठन (जो ब्रिटिश राजभक्तों का संगठन था) ने अपने प्रधान ठाकुर महेन्द्र नाथ सिंह देय के नेतृत्व में किया था। 1916 में जयपाल सिंह नामक वनवासी जो आई. सी. एस. अफसर थे, इस संगठन के अध्यक्ष बने। उन्होंने वनवासियों के साथ-साथ अनुसूचित जातियों और मोमिन (मुसलमानों का गरीब तबका) को भी इस संगठन में शामिल कर आन्दोलन को एक सशक्त जनाधार प्रदान किया था। स्वतन्त्रता के पूर्व और पश्चात् के चुनावों में इस संगठन ने अपने क्षेत्र में कांग्रेस के पैर उखाड़ दिये थे, तो पं. नेहरू ने संगठन की माँगों को पूरा करने का आश्वासन देकर जयपाल सिंह को इस बात के लिए राजी कर लिया कि अपने संगठन का कांग्रेस में विलय कर दें। विलय के पश्चात् जयपाल सिंह को केन्द्रीय सत्ता में स्थान दिया गया, लेकिन इससे भी वनवासियों की समस्याएं अपने स्थान पर बनी रहीं।

पार्टी के कांग्रेस में विलय विरोधी लोगों ने अपनी एक अलग झारखण्ड पार्टी बनाये रखी और इसने गोपाल मुंजाल नामक एक पंजाबी को महामन्त्री और पाल दयाल को अध्यक्ष चुना। 1969 में इस संगठन का आल इण्डिया झारखण्ड पार्टी नाम से पुनर्गठन किया गया। बागुन सम्बुराई अध्यक्ष और ई. एन. होरो इसके महामन्त्री बने। इसके बाद के वर्षों में नेतृत्व स्पर्धा के कारण यह पार्टी कई-कई बार टूटी और नये रूपों में सामने आयी। 1977 में बागुन सम्बुराई इंदिरा कांग्रेस में शामिल हो गये। ई. एन. होरो ने भी आल इण्डिया झारखण्ड पार्टी छोड़कर अपनी अलग झारखण्ड पार्टी बनायी और स्वयं उसके अध्यक्ष बने। अब आल इण्डिया झारखण्ड पार्टी का नेतृत्व सलखान मुरमु कर रहे हैं। केन्द्र में मुख्यतः चार मिशनरियाँ कार्यरत हैं—

1. सोसाइटी फॉर प्रिचिंग ऑफ मारपेल (ब्रिटेन)
2. जी. ई. एल. चर्च गौसनर
3. रोमन कैथोलिक (रोम)
4. सेर्वेथ डे एडविटिक्ट मिशन (अमरीकन)

केन्द्रीय गृह राज्यमन्त्री योगेन्द्र मकवाना ने लोकसभा में सांसद श्री नारायण चौबे के एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि कुछ ब्रिटिश, फ्रेंच, पश्चिम जर्मन, डच मिशनरियों और कुछ स्वयंसेवी संघ झारखण्ड आन्दोलन को सहायता पहुँचा रहे हैं तथा वनवासियों को उनकी माँगों के समर्थन में आन्दोलन के लिए संगठित कर रहे

हैं। श्री मकवाना का यह उत्तर पश्चिम बंगाल सरकार की सूचना पर आधारित था। इसके पूर्व पश्चिम बंगाल सरकार ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा चुकी थी।

प्रस्तावित झारखण्ड राज्य का स्वरूप

झारखण्ड राज्य—प्रस्तावित राज्य में 16 जिलों की माँग है। ये जिले विभिन्न प्रदेशों के वनवासी क्षेत्रों को मिलाकर बनाये गये हैं। इनमें बिहार के छोटानागपुर के 6 जिले (रांची, सिंहभूम, धनबाद, हजारीबाग, गिरिडिह, पलामू) एवं संथाल परगना, पश्चिम बंगाल के तीन जिले (पुरुलिया, मिदनापुर एवं बाँकुडा), उड़ीसा के 4 जिले (मयुरभंज, खीर, सुन्दरगढ़ एवं सम्बलपुर) और मध्यप्रदेश के 2 जिले (सरगुजा और रायगढ़), वनवासी बहुल जिले हैं। इसका क्षेत्रफल 1 लाख 87 हजार 646 वर्ग किलोमीटर और आबादी 1971 ई. की जनगणना के अनुसार 3 करोड़ 5 लाख 98 हजार 991 व्यक्ति हैं।

वनवासियों की समस्या का समाधान

1. कृषि-उद्योग में वनवासी समाज को प्रशिक्षित कर कृषि को उन्नत किया जाए।
2. कुटीर उद्योग में वनवासी समाज को प्रशिक्षित कर कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया जाय।
3. कृत्रिम गर्भाधान द्वारा पशुओं की नस्ल अच्छी बनाने का काम हो। उनके चारे आदि की व्यवस्था में सहायक होना। अच्छा चारा उपजाने में सहायक बनें।
4. उनमें शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए रात्रि पाठशाला की योजना के माध्यम से उन्हें शिक्षित किया जाए, इनमें धार्मिक चेतना जगायी जाए एवं संस्कारित किया जाए।
5. जहाँ-तहाँ खेलकूद की व्यवस्था कर उन्हें पुरस्कृत कर प्रोत्साहन दिया जाए।
6. उस क्षेत्र में प्रत्येक गांव में साप्ताहिक सत्संग, भजन-कीर्तन की व्यवस्था की जाए।
7. जिस क्षेत्र में कार्य करे उस क्षेत्र की भाषा में धर्म जागरण हेतु छोटी-छोटी पुस्तिकाएं, भगवान् राम, कृष्ण एवं अन्य महापुरुषों के चरित्र की एवं भगवान् की प्रार्थना छपवाकर वितरण किया जाए।
8. इनमें प्रचलित नृत्य, गीत-उत्सवों को प्रोत्साहन दिया जाए।

9. इनमें प्रचलित दुर्व्यसनों एवं अंधविश्वासों से मुक्त किया जाए।

10. स्थानीय भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए, यहाँ के साहित्य की रचनाओं को देवनागरी (हिन्दी) लिपि में प्रकाशित कराया जाए और उनको पुरस्कृत कर प्रोत्साहन दिया जाए।

11. वनवासियों की समस्याओं को राजनीतिक समस्या न मान मानवीय समस्या माना जाए एवं उसका समाधान किया जाए।

यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि ईसाइयत के लिए अब खुले युद्ध का अवसर नहीं होने से उन्होंने युद्ध के प्रकार में परिवर्तन कर लिया है। अब खुले युद्ध का प्रकार सेना का चौथा अंग पादरी पहले चलते हैं। उसके पीछे-व्यापारी उसके पीछे सेनाएं। पर अब इस प्रकार के युद्ध का अवसर नहीं है। अतः युद्ध का प्रकार बदल लिया है। अब सेवा की आड़ में धर्मान्तरण, राष्ट्रान्तरण कर, देश के शत्रु बना कर देश के लिए समस्या खड़ी कर रहे हैं।

इनका उद्देश्य धर्म प्रचार का कतई नहीं है, न सेवा ही उद्देश्य है। ईसाई तत्त्वज्ञान में गैर-ईसाइयों (Hidden) के लिए सेवा का स्थान ही कहाँ है? यदि धर्म प्रसार उद्देश्य होता तो अपने देश में ही धर्म प्रचार करते क्योंकि उनके अपने देश में ईसाइयत से आस्था उठ रही है, दिन-प्रतिदिन चर्च खाली पड़ते जा रहे हैं पर वहाँ अपने धर्म का प्रचार नहीं। न ही धर्म की रक्षा ही और न सेवा ही उद्देश्य है नहीं तो गरीब ईसाई राष्ट्रों में सेवा का प्रकल्प चलाते। पूरा अफ्रीका जो ईसाई है सबसे पिछड़ा हुआ है। पर वहाँ सेवा नहीं। पर भारत में सेवा प्रकल्प चला रहे हैं। यहाँ धर्म का अभाव नहीं वरन् भारत ही उनको धर्मोपदेश दे सकता है पर वे यहाँ धर्म-प्रचार चला रहे हैं सिर्फ इसलिए कि बचे-खुचे, खंडित भारत को ईसाइयत की झोली में डाल कर अपने देश के हित में उनका शोषण कर सकें!

प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के शासनकाल में आदिवासियों का एक प्रतिनिधिमंडल उनसे मिला। उन्होंने बताया हमने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। पर उससे हमारी स्थिति में कोई सुधार व परिवर्तन नहीं हुआ। दो-चार नेता बन गए हैं बाद-बाकी की वही स्थिति पूर्ववत बनी हुई है। हाँ, जब तक हम हिन्दू थे, तब तक हमारी परम्परागत धर्म-संस्कृति व परम्पराएं सुरक्षित थीं। अब ईसाइयत के चक्कर में आकर हम उनसे हाथ धो बैठे हैं।

स्पष्ट है काल प्रवाह से हमारा वनवासी समाज पिछड़ गया है उनमें आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जागरण लाने का कार्य हम भारतीयों का है यह कार्य कोई विदेशी शक्ति नहीं कर सकती। वह तो अपने हित में शोषण ही करेगी और आज तक का उनका यही इतिहास है, चरित्र है।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लार्ड पामस्टेन ने सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर के दो वर्ष पश्चात् सार्वजनिक रूप से कहा था कि 'हमारा कर्तव्य ही नहीं अपितु हमारे हित में भी है कि हम समूचे भारत में यथा शक्ति ईसाइयत का प्रचार करें। इसी की पुष्टि में स्टेट सेक्रेटरी फार इंडिया, लार्ड हेलिफाक्स ने कहा था कि, नया बनने वाला प्रत्येक ईसाई उस देश को जोड़ने वाली एक अतिरिक्त कड़ी या साम्राज्य को बल प्रदान करने वाला एक शक्ति स्रोत है। (नियोगी समिति रिपोर्ट पृष्ठ-40)। भारत में ब्रिटिश शासनकाल में विदेशी शासन की नीति उपरोक्त कारणों से मिशनरी गतिविधियों को सर्वतोपरि प्रोत्साहित करने की थी।

और, आज तो हिन्दुओं की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई है कि सर्वधर्म-समभाव के नाम पर उन्हें किसी भी छल-प्रपंच का शिकार बनाया जा सकता है। इसी तरह किसी महापुरुष अथवा किसी संत, सूफी या नबी का नाम लेकर कोई भी कबाड़ उनके गले में उतारा जा सकता है। यह एक गंभीर मानसिक-वैचारिक विकृति तथा संकट का सूचक है। इसे किसी सद्भावना के नाम पर अनदेखा करना अपने आप को भुलावा देना है। अतः वनवासी समाज की सेवा का दायित्व हमारा है। हिंदू समाज का है। आज तक जो उपेक्षा हुई है उसका परिमार्जन करते हुए सेवा करें।



H.G. Wells ने ईसाइयत के सारे इतिहास का सर्वेक्षण करते हुए लिखा है, 'सारे विश्व में आज तक केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ जो क्रूस पर मर गया।' इस पर उसके मित्र ने व्यंग्य करते हुए टिप्पणी की कि वह भी ईसाई कहाँ था? वह तो स्वयं यहूदी ही था। H.G. Wells ने उनके जीवन, जन्म तिथि आदि पर अनेक शंकाए उठायी हैं। जब ईसा को अपनी सूली ढोनी पड़ रही थी, अपार वेदना हो रही थी, तब God से शिकायत करते हुए कह उठे—हे God! तुमने भी कष्ट के समय साथ छोड़ दिया। तब H.G. Wells प्रश्न उठाते हैं God ने अपने पुत्र का ही साथ छोड़ दिया तो उनके शिष्यों का क्या होगा?



वनवासी समाज एवं ईसाई अभियान

भारत एक धर्म प्राण देश है। जिसका भाव है कि भारत का प्राण उसके धर्म में ही निहित है। इसीलिए भारतीय महापुरुष राष्ट्र के प्राण रूप धर्म की रक्षा हेतु अपना निजी प्राण न्योछावर करने में सौभाग्य मानते रहे हैं। भारतीय धर्म एवं संस्कृति का विकास वनों में ही हुआ। अरण्याश्रमों में साधना करने वाले ऋषि-महर्षि वनवासी ही थे। भगवान राम ने राष्ट्रीय एकात्मता की साधना हेतु स्वेच्छा से वनवास लिया था तथा वनों में बसने वाले केवट, गुह, निषाद, भील, शबर, वानर, ऋक्ष, भल्लूक आदि वनवासी बन्धुओं पर अपना अमर प्रेम लुटाकर भारत की सांस्कृतिक एकता का चमत्कार कर दिखाया था। भगवान कृष्ण की लीलाभूमि वृंदावन एक वन ही था। पाण्डवों ने अपने वनवास की तपस्या द्वारा ही धर्म विजय सम्पादित की थी। हनुमान, सुग्रीव, अंगद, एकलव्य आदि वीरों का यश भारतीय इतिहास में गूँज रहा है। राणाप्रताप के साथ भीलों ने, शिवाजी के साथ मावलों ने, गाँधी जी के साथ टाना भगतों ने, अकबर के विरुद्ध रानी दुर्गावती ने, विदेशी ब्रिटिश शासन एवं विदेशी पादरियों के विरुद्ध बिरसा भगवान ने जो महान् बलिदान दिये उन्हें भारतीय इतिहास सदा श्रद्धाप्रसून चढ़ाता रहेगा।

मानवता का सर्वसंहार

संसार के प्रत्येक देश में वहाँ के वनों में बसने वाले कुछ भोले-भाले, सात्त्विक प्रकृति के, नागरिक सभ्यता में अविकसित किन्तु नागरिक जीवन के छल-छिद्रों से भी मुक्त, सहज विश्वासी, वीर एवं संतोषी वनवासी रहते आये हैं। प्रकृति के प्रांगण के इन वन्य पुष्पों के प्रति विदेशी ईसाई पादरियों ने कैसा व्यवहार किया इसे पश्चिम के एक विश्वविख्यात ईसाई लेखक के शब्दों में उद्धृत करना ही उचित होगा। सन् 1963 में जब मेरा शरीर पश्चिम देशों में भारतीय संस्कृति पर व्याख्यानमालाओं के लिए अमरीका में था तब हार्वर्ड विश्वविद्यालय के विद्वान निदेशक डॉ. पितिरिम ए. सोरोकिन ने मुझे अपनी एक बहुमूल्य पुस्तक भेंट की, जिसका एक सस्ता संस्करण अब भारतीय विद्या भवन बम्बई ने भी प्रकाशित कर दिया है, उसके पृष्ठ 47 पर वे लिखते हैं—

पाश्चात्य ईसाइयत के अक्षम्य अपराध

प्रख्यात अमरीकन समाज-शास्त्री का मत

'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्ध-पिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार-परायण तथा सर्वाधिक सत्ता-मदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में, पाश्चात्य ईसाइयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किया है, इनकी सेनाओं ने, जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर-ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा-खसोटा—पूर्णतया अशिक्षित आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर-ईसाई राष्ट्रों तक के प्रति उनका यही अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, आदिम अफ्रीकावासी, आदिम आस्ट्रेलियावासी तथा आदिम एशियाई जनसमूह—सभी इस विचित्र प्रकार के 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए हैं, जिसके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवनमूल्यों का विनाश, सामाजिक संस्थाओं का विनाश तथा 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए व्यक्तियों की जीवन पद्धति का विनाश तथा दूसरी ओर शराबखोरी, यौन रोगों, व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, इत्यादि-इत्यादि।'

—डॉ. पितिरिम ए. सोरोकिन,

Dr. Pitirim A. Sorokin

डाइरेक्टर हार्वर्ड रिसर्च सेंटर इन क्रिएटिव अल्ट्रइज्म, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, केम्ब्रिज, मेसाचुसेटस् अमरीका (रीकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी, पृ. 47)

Reconstruction of Humanity

प्रकाशक : भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

नागालैण्ड से केरल तक ईसाईस्तान

अब पादरी लोग नागालैण्ड से केरल तक ईसाईस्तान बनाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। उनकी योजना है कि आगामी 10 वर्षों में जब वे सभी पूर्वी एवं दक्षिणी राज्यों में 30 प्रतिशत हो जावेंगे तो वे ईसाईस्तान के लिए व्यापक संघर्ष छेड़ देंगे। उनका तर्क यह है कि जिस देश में 24 प्रतिशत मुसलमान खंजर की नोक पर इस्लामिक देश बना सकते हैं तो हम क्यों ईसाईस्तान नहीं बना सकते!

(क) नागालैण्ड में पादरी माइकेल स्काट द्वारा नागा वनवासियों में जो भारत द्रोह के बीज बोए गये उसका परिणाम सारा देश आज तक भुगत रहा है। पादरियों ने देख लिया है कि वे 30 प्रतिशत (ईसाई) हो जाने पर भी राज करने योग्य स्थिति में आ जाते हैं, क्योंकि 30 प्रतिशत संगठित एवं सुशिक्षित लोग शेष 70 प्रतिशत लोगों को अपनी इच्छानुसार चला सकते हैं।

(ख) मिजोरम में भी ईसाई लगभग 30 प्रतिशत हो चुके हैं।

(ग) 26 जनवरी 1968 के दिन गोहाटी में ईसाइयों, पाकिस्तानी मुस्लिमों एवं चीनपरस्त कम्युनिस्टों ने मिलकर जो भारत एवं भारतीयता का अपमान किया तथा भारतीय धन-जन की होली खेली वह भावी संभावनाओं का भयंकर संकेत है।

(घ) छोटानागपुर में झारखण्ड आन्दोलन ईसाई पादरियों का ही कुकृत्य है।

(ङ) मध्यप्रदेश में ईसाई संकट का कच्चा चिट्ठा नियोगी कमीशन रिपोर्ट से मिलता है।

(च) मध्यप्रदेश के इन्दौर नगर से ईसाइयों के सत् प्रचार प्रेस से बहुत से ईसाई साहित्य के साथ एक 'ख्रीस्तायन' नामक पुस्तक प्रकाशित की गई है जिसमें संस्कृत के श्लोकों में ईसा की स्तुति की गई है तथा भारतीयों को भ्रमित करने हेतु ईसा को भारतीय भगवे वेश में दिखाया गया है तथा उनके सामने अनेक ऋषि-मुनि एवं भारतीय शिखा त्रिपुंडधारी भक्तों को नमन करते हुए दिखाया गया है।

(छ) जबलपुर में स्टेशन रोड पर एक ईसाई रेडियो स्टेशन स्थापित किया गया है जहाँ सभी भारतीय भाषाओं में ईसाई कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं और उनके रिकार्ड अदीस अबाबा (इथोपिया) से प्रसारित किए जाते हैं।

(ज) उत्कल प्रदेश के वनवासी भी बहुत बुरी तरह ईसाइयों के चंगुल में फंसे हुए हैं।

(झ) आन्ध्र में हैदराबाद मुस्लिम राज्य समाप्त होने के बाद से ईसाई प्रभाव बढ़ रहा है।

(ञ) मद्रास के क्रिस्तानों ने विवेकानंद शिला स्मारक संगमरमर के परल को लगभग 12 वर्ष पूर्व तोड़ दिया था।

(ट) कर्नाटक में ईसाई प्रभाव हिन्दू बल से टकराने लगा है।

(ठ) केरल में लगभग 30 प्रतिशत लोग ईसाई हो चुके हैं। वहाँ वे क्रिस्टोफर सेना तैयार कर रहे हैं।

जून 1950 में केरल के धर्मान्ध ईसाइयों ने भगवान अयप्पा के प्रसिद्ध तीर्थ, तिरुवांकुर में, जंगल से ढकी पहाड़ी पर स्थित सबरी मलाई के मन्दिर को जला दिया तथा देव प्रतिमाओं को तोड़ दिया गया था। केरल की राजधानी त्रिवेन्द्रम में कुछ वर्ष पूर्व वेटिकन के पोप गये थे तथा उसे आदर्श क्रिश्चियन नगर कहा।

वनवासी क्षेत्र में ईसाई प्रकोप

(क) आर्थिक प्रलोभन

क्लिफफोर्ड मैंशर्दत ने अपनी पुस्तक Christianity in a changing India के पृ. 28 पर स्वीकार किया है, 'हमने लोगों को हमारा धर्म स्वीकार करने के लिए प्रलोभन दिए हैं।'

नियोगी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि 'ग्रामीण क्षेत्रों में मिशन अस्पताल खोलने का एकमात्र उद्देश्य है भारत के 6 लाख ग्रामों को धर्मान्तरित करके ईसाई बना लेना।' सालवेशन आर्मी ब्रिटेन द्वारा 1968 के एक वर्ष में ही जो 79 लाख पौंड व्यय हुए उसमें से 22 लाख पौण्ड केवल भारत में ही व्यय हुए।

(ख) यौन प्रलोभन

श्री पर्सी शास्त्री नामक एक भारतीय ईसाई ने कैथोलिक पत्रिका 'लाइट आफ लाइफ' में लिखा है, 'अधिक से अधिक क्रिस्तान लड़कियाँ हिन्दू लड़कों से विवाह कर रही हैं....इस पवित्र आशा से कि उन्हें ईसाई बनाया जाय।'

(ग) छात्रवृत्तियों पर मिशन का डाका

मिशन वाले संगठित एवं जागरूक होने के कारण वनवासी छात्रों को मिलने वाली सरकारी छात्रवृत्तियों को भी हड़प जाते हैं। ईसाई बनने के पश्चात् वनवासी प्रकृतिपूजक वनवासी ही नहीं रहता, यह बात अभी तक प्रशासन को समझ में नहीं आई थी। आशा है नई सरकार अपनी नीति सुधारेगी।

(घ) संकट के समय धर्म शोषण

सूखा, अकाल, बाढ़ एवं उपद्रव के समय मिशन वाले केयर, कोरगास, आक्सफोम, यूनीसेफ, क्रिश्चियन चैरिटी, सिस्टरज आफ मरसी जैसे संस्थानों द्वारा दो अन्न के टुकड़ों पर वनवासियों का ईमान लूटने का भयंकर अभियान चलाते हैं।

(ङ) निकोबार द्वीप में मिशन वालों ने पूरी जनसंख्या को ईसाई बना लिया है। कुछ वर्ष पूर्व वहाँ ब्रिटेन की रायल एयर फोर्स का विमान भी उतरा था।



भारत का मूल पुत्रवत समाज हिन्दू समाज ही है। अतः भारत में हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है। धर्मप्राण भारत में धर्मान्तरण का अर्थ राष्ट्रान्तरण हो जाता है।

—वीर सावरकर



हिन्दू एवं ईसाई का तुलनात्मक अध्ययन

जगदीश	जॉन
(1) क्या तुम भारतीय हो?	(1) हां, मैं भारतीय हूं।
(2) क्या प्रत्येक भारतीय को भारतीय संस्कृति का ज्ञान और गौरव होना चाहिये?	(2) हां, होना चाहिये।
(3) क्या तुम्हें भारतीय संस्कृति का ज्ञान तथा गौरव है?	(3) न ज्ञान है? न गौरव है।
(4) क्या बिना ज्ञान के गौरव हो सकता है?	(4) नहीं।
(5) क्या तुमने भारतीय संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया?	(5) मुझे मिशन के स्कूल, कॉलेज में भारतीय संस्कृति का ज्ञान नहीं दिया गया।
(6) क्या राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है?	(6) हां, मैं भी यह मानता हूं कि समान संस्कृति वाले देशवासियों से ही राष्ट्र बनता है।
(7) क्या एक देश में अनेक संस्कृतियां हो सकती हैं? क्या अनेक संस्कृतियों को मान लेने से देश की अखण्डता बचेगी?	(7) नहीं, क्योंकि हिन्दू, मुस्लिम की अलग संस्कृतियों को मान लेने पर जिन्ना ने दो राष्ट्र का सिद्धान्त प्रतिपादित किया तथा उससे देश का विभाजन हो गया।
(8) भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य कौन से हैं?	(8) सम्भवत: रामायण तथा महाभारत।
(9) क्या बाइबिल या कुरान भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य हो सकते हैं?	(9) नहीं, वे भारतीय भी नहीं और महाकाव्य भी नहीं।

जगदीश	जॉन
(10) क्या तुम्हें भारत के राष्ट्रीय महाकाव्यों का ज्ञान और गौरव है?	(10) सच्चे अर्थ में न ज्ञान है और न गौरव।
(11) भारत के राष्ट्रीय महापुरुष National Heroes कौन-कौन हैं?	(11) सम्भवतः राम और कृष्ण।
(12) क्या तुम्हें राम और कृष्ण का ज्ञान और गौरव है?	(12) वास्तव में न ज्ञान है और न गौरव है।
(13) भारत के राष्ट्रीय उत्सव कौन-कौन से है?	(13) सम्भवतः होली और दीपावली।
(14) क्या तुम्हें उसका ज्ञान है और उसको मनाते हो?	(14) वास्तव में न ज्ञान है और न मनाता हूं।
(15) क्या तुम्हें देश की राष्ट्रीय भाषाएं पता है?	(15) सम्भवतः हिन्दी, संस्कृत एवं प्रदेश की भाषाएं।
(16) क्या तुम्हें इनका ज्ञान और गौरव है?	(16) वास्तव में न ज्ञान है और न गौरव।
(17) इस देश का राष्ट्रीय इतिहास अकबर है या राणा प्रताप। औरंगजेब है या शिवाजी। गांधी है या जिन्ना?	(17) इस देश का राष्ट्रीय इतिहास राणा प्रताप, शिवाजी, गांधी हैं।
(18) क्या तुम्हें इनका ज्ञान और गौरव है?	(18) सच्चे अर्थ में न ज्ञान है और न गौरव है।
(19) क्या इस देश की राष्ट्रीय पोशाक धोती-कुरता में तेरी श्रद्धा है?	(19) वास्तव में नहीं है।

ईसाई मिशनरी क्रियात्मक अध्ययन प्रश्नावली

1. इस अंचल में कौन-कौन सी ईसाई मिशनरियाँ कार्य करती हैं?
2. यहाँ हिन्दू आदिवासियों एवं ईसाई आदिवासियों की सम्प्रति आनुपातिक संख्या क्या है?
3. हिन्दू आदिवासियों का धर्मान्तरण किस क्रम से हुआ है? क्या उसका कोई ग्राफिक मानचित्र भी कभी अंकित हुआ?
4. आदिवासियों के ईसाई होने के कौन-कौन से कारण हैं? क्या आदिवासी ईसाई पादरियों के सद्व्यवहार के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं? क्या छल-छद्म, भय-दबाव का सहारा लेकर धर्मान्तरण कराया जाता है?
5. क्या ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों के आर्थिक जीवन में प्रविष्ट हो गई हैं? उनके को-ओपरेटिव बैंकों का संचालन किस प्रकार होता है? क्या उनका पंजीकरण बिहार-उड़ीसा को-ओपरेटिव कानून के अन्दर हुआ है? क्या उनका नियन्त्रण एवं नियमन सरकारी सहकारिता विभागों द्वारा होता है?
6. बिरसा आन्दोलनकारियों की जमीनें क्या ईसाई मिशनरियों ने अनुचित ढंग से हस्तगत कीं?
7. आदिवासियों की गरीबी एवं अशिक्षा उनके धर्मान्तरण में कहाँ तक कारण हैं?
8. पिछले अकाल के समय सहायता कार्यक्रमों के सहारे मिशनरियों ने कहाँ-कहाँ कितने लोगों को ईसाई बनाया? क्या इसका कभी समुचित आकलन हुआ?
9. ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरणकारी क्रियाकलापों में सरकारी नीति किस तरह सहायक है?
10. क्या ताना भगत आन्दोलनकारियों की तथा श्री विश्वनाथ सिंह शाहदेव की सम्पत्ति भी मिशनरियों ने हस्तगत की थी?

11. ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों को (रुपये या अन्न के रूप में) किस तरह ऋण देती हैं? उन्हें किस तरह वसूलती हैं? इस कार्य के सहारे क्या आदिवासियों का धर्मान्तरण भी किया जाता है? क्या ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों का आर्थिक शोषण भी करती हैं?
12. ईसाई मिशनरियों के राजनीतिक क्रियाकलाप के ऊपर कभी किसी साहित्य की रचना हुई? यदि हाँ, तो उन्हें किस प्रकार उपलब्ध किया जा सकता है?
13. विभिन्न ईसाई संस्थानों की स्थापना तथा उनके क्रमिक विस्तार का कोई इतिहास भी उपलब्ध है क्या?
14. ईसाई मिशनरियों के कुछ सघन कार्यक्षेत्र भी हैं क्या? यदि हाँ, तो वे कौन-कौन से हैं? वहाँ उनके कौन-कौन से कार्य चल रहे हैं?
15. हिन्दू आदिवासियों की अपनी कोई संघटित संस्था है क्या? मात्र हिन्दू आदिवासियों के हित में काम करने वाले कुछ प्रभावशाली आदिवासी हैं क्या? यदि हैं तो उनके क्रियाकलापों के विषय में कैसे जानकारी प्राप्त होगी?
16. ईसाई पादरियों में क्या वैदेशिक गुप्तचर भी शामिल हैं? इस विषय में क्या कोई प्रमाण अब तक मिला है?
17. ईसाई मिशनरियाँ आदिवासियों में अराष्ट्रीय भावना किस प्रकार भरती हैं?



महात्मा गाँधी ने भारत में ईसाई मिशनरी क्रिया कलापों के बारे में जो कहा था वह विश्व के कोने-कोने में ईसाई मिशनों की गतिविधियों के बारे में लागू होता है।

मिशनरियों के प्रवेश से उन हिन्दू परिवारों में, जहां मिशनरी पैठे हैं, वेशभूषा, रीति-रिवाज और खान-पान तक में परिवर्तन हो गया है... आज भी हिन्दू धर्म की निंदा जारी है। ईसाई मिशनों की दूकानों में मरडोक की पुस्तकें बिकती हैं। इन पुस्तकों में हिन्दू धर्म की निंदा के, कुछ है ही नहीं। अभी कुछ ही दिन हुए, एक ईसाई मिशनरी एक दुर्भिक्ष-पीड़ित अंचल में जब धन लेकर पहुँचा। वहाँ अकाल पीड़ितों को पैसा बाँटा व उन्हें ईसाई बनाया। फिर उनका मन्दिर हथिया लिया और उसे तुड़वा डाला। यह अत्याचार नहीं तो क्या है?

—महात्मा गाँधी



कपट मुनि की कुटिल चाल

धर्म बनाम राजनीति

धर्म जब व्यवसाय बन जाता है तो उसमें व्यावसायिक स्पर्धा, आर्थिक हृदयहीनता, स्वार्थ-संघर्ष एवं लोभ-लालच के क्षुद्र भाव आ जाते हैं। धर्म जब राजनीति बन जाता है तो उसमें राजनीतिक छल, प्रपंच, भय एवं प्रलोभन द्वारा अन्य मत वालों को डराने या खरीदने की भावना तथा सत्ता-प्राप्ति के लिये कुत्सित षड्यन्त्र भी मिल जाते हैं।

पाश्चात्य ईसाई जाति का दावा है कि वे 20वीं शताब्दी के अन्त तक सारे संसार को प्रभु ईसा मसीह की चरण-शरण में ले आवेंगे। ईसाइयत के इस विश्व-व्यापी राजनीतिक साम्राज्य की प्राप्ति के लिए अन्तिम अध्याय इस शताब्दी के अन्तिम चरण (1975 से 2000 ई. तक) में लिखा जा रहा है।

यूरोप एवं अमरीका में ईसाइयत

आज से 1666 वर्ष पूर्व यूरोप में ईसाइयत का प्रसार हुआ। उससे पहले सारे यूरोप में सूर्य पूजा प्रचलित थी। सन् 313 ई. में रोम का सूर्य-पूजक राजा कांस्टेटाइन यूरोप का प्रथम धर्मान्तरित ईसाई राजा बना। धीरे-धीरे सारे यूरोप को छल-छद्‌म, धोखाधड़ी ईसाई मत के मजहबी न्यायालय क्रूसेड (गैर-ईसाई राष्ट्रों के विरुद्ध जेहाद), सामूहिक अग्नि होम, फाँसी एवं उत्पीड़न द्वारा ईसाई बना लिया गया। आज से 488 वर्ष पूर्व सन् 1493 में जब कोलम्बस के साथ स्पेन के लोग अमरीका की धरती पर उतरे तो वहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियन को छल-छद्म, अत्याचार एवं हत्याकाण्ड द्वारा नष्ट करना एवं ईसाई बनाना प्रारम्भ किया। आज अमरीका के मूल निवासी रेड इण्डियन की जाति नाम प्रायः शेष हो चुकी है तथा बचे-खुचे लोग ईसाई हो चुके हैं। शेष सारा अमरीका यूरोप की ईसाई जातियों की भोगभूमि बना हुआ है। इसी प्रकार लगभग पूरे कनाडा को ईसाई बना दिया गया है। दक्षिण अमरीका की गति भी उत्तरी अमरीका के समान रही है।

आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड

सन् 1699 में जब डेम्पियर ने आस्ट्रेलिया को खोजा तब से वहाँ के

प्रकृति-पूजक वनवासियों का शोषण, उत्पीड़न एवं विनाश कर वहाँ ईसाई मत थोपना प्रारम्भ हुआ। दुर्भाग्य से वहाँ की आदिम वनवासी जातियाँ भी नाम शेष हो चुकी हैं और आस्ट्रेलिया, यूरोप की गोरी ईसाई जातियों की भोग लीला का ऐश्वर्य शिविर बन गया है। संसार में सबसे अधिक सोने की खानें आस्ट्रेलिया में ही थीं। उन्हीं की लूट से ब्रिटिश साम्राज्य सारी दुनिया में फैला। न्यूजीलैण्ड की गति भी आस्ट्रेलिया के समान हुई।

महाकलिंग फिलिपाइन बना

आज से 460 वर्ष पूर्व स्पेन के जिन आक्रान्ताओं ने मेक्सिको एवं अमरीका में छल-बल द्वारा ईसाइयत को थोपा, उन्हीं में से कुछ दक्षिणी अमरीका से प्रशान्त महासागर के मार्ग से दक्षिणी चीन समुद्र में स्थित जापान के नीचे, महाकलिंग द्वीप समूह में आक्रान्ता बन कर पहुँच गये। वहाँ के हिन्दुओं को तलवार की नोक पर ईसाई बनाया तथा वहाँ के मन्दिरों को गिरजाघर के रूप में रूपान्तरित कर दिया। उन्होंने स्पेन के राजा फिलिप के नाम पर उस साढ़े सात हजार द्वीपों के पुंज का नाम फिलिपाइन रख दिया, जो सारे एशिया में एकमात्र घोषित ईसाई राष्ट्र है।

धर्मों की जन्मभूमि एशिया—एशिया का हृदय भारत

एशिया, जो धर्मों की जन्मभूमि है, संसार का सबसे अधिक जनसंख्या वाला महाद्वीप है जिसमें संसार के आधे से अधिक मानव बसते हैं। पाश्चात्य ईसाई जगत् एशिया को आगामी 20 वर्षों के भीतर ईसाई बनाने के लिए कटिबद्ध है। एशिया का हृदय भारत है। अतः एशिया के धर्मान्तरण से पहले भारत का धर्मान्तरण अनिवार्य समझा जा रहा है।

भारत का धर्मगुरु ब्राह्मण माना जाता है। 17 वर्ष पूर्व रोम के पोप के भारत आगमन पर यह विचार हुआ कि केवल हरिजन एवं वनवासी जातियों में से ही ईसाई बनाने से ईसाइयत की जड़ भारत में पक्की नहीं जमेगी। अतः यह निश्चय हुआ कि ब्राह्मण आदि उच्च वर्णों में से ईसाई भक्त एवं पादरी बनाए जाएँ। उसी समय कुछ पादरियों ने संकल्प किया कि वे इस कार्य को करेंगे। उन्हीं लगभग 100 पादरियों में से एक बाबा नरेन्द्रानन्द हैं जिसे रांची पुलिस ने भगवे वेश में छल-प्रपंच द्वारा हिन्दू ब्राह्मण बालकों को धर्म भ्रष्ट करने, धोखा-धड़ी करने तथा राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों के आरोप में दिनांक 24 अक्टूबर, 1981 को गिरफ्तार कर रांची के केन्द्रीय कारागृह में बन्द कर दिया है।

पादरी एण्ड थोटंक्ल ने नरेन्द्रानन्द नाम रखा

पादरी एण्ड थोटंक्ल (उपनाम फादर 'कुंज कुंजू') छद्मनाम स्वामी नरेन्द्रानन्द 66 वर्षीय केरल निवासी 5.7'' ऊंचा, मलयालम, सिंहली, बांग्ला, अंग्रेजी,

साधारण हिन्दी तथा संस्कृत के दो-चार टूटे-फूटे श्लोक जानने वाला, सफेद दाढ़ी एवं कन्धे तक सफेद बाल रखने वाला बूढ़ा व्यक्ति है। पहले वह पादरी का सफेद चोंगा पहनकर रोमन कैथोलिक मिशन रांची के ईसाई धर्म प्रचारक के रूप में काम करता था। पिछले छः-सात वर्षों से वह उसी पादरी के चोंगे को भगवे रंग में रंग कर हिन्दू बस्तियों एवं संस्थाओं में अपने आपको स्वामी नरेन्द्रानन्द कहकर प्रचारार्थ घूमता रहता था। वह छद्मवेशी पादरी अपने कथनानुसार केरल प्रान्त के एल्लेप्पी जिले का रहने वाला है। उसके पिता का नाम जोसफ थोटंक्ल है। अपने जन्म का गाँव पूछने पर उसने पुलिस अधिकारियों को बताया कि उसे याद नहीं। उसका जन्म 15 जुलाई, 1915 को हुआ। उसकी स्कूल शिक्षा 1931 में पूर्ण हुई। स्थान वह नहीं बताता। अमृतोपदेश पुस्तक के अनुसार इसने 20 मई, 1932 ई. में गृह-त्याग किया। एक छात्रवृत्ति प्राप्त कर वह श्रीलंका में शिक्षा पाने गया। अपने कथनानुसार वह 59 वर्ष तक ईसाई धर्म में रहा। सन् 1974 के पश्चात् वह कहता है कि वह हिन्दू बन गया। दर्जनों वर्षों तक वह छोटानागपुर क्षेत्र में ईसाई पादरी के रूप में कार्यरत रहा है। कैथोलिक डायरेक्टरी आफ इण्डिया 1972 के अनुसार वह उस समय रोमन कैथोलिक मिशन द्वारा संचालित होली फैमिली हॉस्पिटल, कोडरमा (हजारीबाग) में कार्यरत था वह किस सम्प्रदाय का या आर्य समाजी, किस पन्थ, अखाड़े, संगठन से सम्बन्धित है? इसके उत्तर में उसका एक ही वाक्य है—मैं नहीं जानता। इष्ट देवता कौन हैं? वह कहता है निराकार। यह पूछने पर कि ईसा आपका व्यक्तिगत मुक्तिदाता है या नहीं? वह कहता है—मुझे बाँधने का प्रयास मत करो।

मैंने एवं विश्व हिन्दू परिषद्, बिहार प्रान्त के संगठन मन्त्री श्रीकृष्णचंद भारद्वाज ने 4 वर्ष पूर्व एक विचारगोष्ठी में उसे कहा कि यदि आप अपने आपको हिन्दू संन्यासी कहते हैं तो हाथ में बाइबिल लेकर कह दें कि ईसा मेरा एकमात्र व्यक्तिगत मुक्तिदाता नहीं रहा। इस पर वह गोष्ठी छोड़कर भाग गया।

कपट मुनि का उलटा यज्ञोपवीत

वह हिन्दुओं को विश्वास में लाने के लिये अपने गले में उलटा पहना हुआ यज्ञोपवीत का धागा दिखाता रहता है। एक बार मैंने एक जनसमूह के सामने ही उसे बताया कि यज्ञोपवीत यज्ञ सूत्र है। इसे पहनकर यज्ञ एवं वेदाध्ययन करना चाहिए। वह तुम नहीं करते हो। यज्ञोपवीत की शौच-अशौच अवस्था में मर्यादा का पालन करना पड़ता है, वह भी तुम नहीं करते। यज्ञोपवीतधारी को ब्रह्म-मुहूर्त में स्नान कर ब्रह्म गायत्री का जाप करना होता है। न तुम कई सप्ताहों तक स्नान ही करते हो न गायत्री साधना। फिर यज्ञोपवीत के कर्तव्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ में पूरे कर संन्यास लेते ही यज्ञोपवीत का विसर्जन कर दिया जाता है। इसके विपरीत तुम

प्रथम तीन आश्रमों में ईसाई बने रहे तथा अब बुढ़ापे में भगवा पहनकर, उलटा जनेऊ-लटका कर कपट मुनि बन गये। निरुत्तर होकर वह खिसक गया।

दिव्यज्योति आश्रम मन्दिर में त्रिकोण शंकु शिवलिंग

पादरी थोटंक्ल सन् 1973 से रांची नगर के राजपथ पर स्थित हैसल बस्ती में शत-प्रतिशत हिन्दू आबादी के क्षेत्र में नवादा की एक हिन्दू महिला से आठ कट्टा जमीन खरीद कर वहाँ दिव्य ज्योति आश्रम नाम से एक हिन्दू मन्दिर बनवाकर रहने लगा। मन्दिर में उसने (ॐ) का बड़ा चिह्न सुन्दर रंगों से चित्रित करवाकर व्यासपीठ के ऊपर सामने की दीवार पर लगवाया और व्यासपीठ के आगे एक शिव की पिंडी स्थापित की। जिसकी जलहरी धरती से डेढ़ फुट ऊंची उठी हुई तथा एक फुट व्यास वाली है। जलहरी के केन्द्र में उसने एक त्रिकोण शंकु स्थापित किया। वह तीनों ओर से समकोण त्रिभुज के आकार का है। जिसके एक ओर 'थे' भी खुदा हुआ है। इसकी व्याख्या पादरी हिन्दुओं और ईसाइयों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से करता। हिन्दुओं का विश्वास सम्पादन करने के लिए वह पादरी कहता है कि यह निराकार ब्रह्म का प्रतीक है और त्रिकोण के 3 कोणों को वह सत्-चित् और आनन्द बताता है। ईसाइयों को तथा आश्रम में रहने वाले बच्चों को वह बताता कि तीन कोने पिता (ईश्वर), पुत्र (ईसामसीह) और पवित्रात्मा हैं।

छात्रावास में निर्धन ब्राह्मण बच्चों के धर्म पर डाका

मन्दिर के प्रांगण में उसने एक ओर बच्चों के लिए छात्रावास बना रखा था जिसमें वह छोटानागपुर, विशेषकर पलामू जिला, कुछ भोजपुर जिला के निर्धन ब्राह्मण बच्चों को लाकर रखता था। वह उन बच्चों एवं उनके अभिभावकों को यह आश्वासन देता कि वह स्वयं हिन्दू संन्यासी है तथा उन ब्राह्मण बच्चों को वेद, उपनिषद्, गीता-रामायण आदि हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन तथा साथ में बी.ए., एम.ए., पीएच.डी. तक की निःशुल्क पढ़ाई कराके उन्हें धर्मगुरु बनाया जायेगा। छात्रावास में लगभग 12 बच्चों के रहने के लिए व्यवस्था है। बच्चे प्रायः 10-12 वर्ष की आयु से कम के लिए जाते ताकि सरलता से उन्हें अपने रंग में रंगा जा सके। दो-एक विद्यार्थी कालेज स्तर के भी थे। उन बच्चों को आश्रम में रहकर गीता-रामायण पढ़ने का न अवसर दिया जाता, न वे छात्रावास में किसी हिन्दू देवी-देवता का चित्र ही टाँग सकते थे। उन्हें मन्दिर में आने वाले किसी बाहर के प्रवचनकर्ता का प्रवचन भी नहीं सुनने दिया जाता था। उन्हें अन्य हिन्दू मन्दिर में जाने या हिन्दू उत्सव में भाग लेने की भी अनुमति नहीं दी जाती थी। बच्चों को केवल ईसाई विद्यालयों, महाविद्यालयों (सेन्ट जान उच्च विद्यालय, सेन्ट जेवियर महाविद्यालय) में ही प्रवेश दिलाकर शिक्षा दिलाई जाती थी। उनके लिए ईसाई

धर्म की शिक्षा की कक्षा अनिवार्य थी। आश्रम में भी छात्रों के लिए प्रातः-सायं प्रार्थना व प्रवचन ईसाई धर्म एवं बाइबिल पर होते थे।

पादरी राबर्ट डि नोबिली के भगवे वेष ने पर्दे में एक लाख हिन्दू ईसाई बनाये थे

एक अन्य बड़े जैसुइट पादरी ने 17वीं शताब्दी के आरम्भ में एक नया ढंग निकाला। वह इटली का रहने वाला था और ऊँचे घराने से सम्बन्धित था। वह कुशाग्र बुद्धि और लगन का आदमी था। वह मथुरा में आया। मथुरा उस समय एक हिन्दू राज्य की राजधानी थी और पुर्तगाल के वायसराय की सीमा से बाहर थी। इस पादरी का नाम राबर्ट डि नोबिली था। उसने देखा कि कोवियर तथा दूसरे कैथोलिक पादरियों की नीति, जिसके द्वारा राज्य की सत्ता के बलबूते छोटी जातियों में से सामूहिक रूप से लोगों को ईसाई बनाया जाता था, एक खतरनाक नीति थी। उसने स्पष्ट देखा कि जब तक ऊँची जातियों में से ईसाई न बनाये जायेंगे तब तक ईसाइयत की जड़ भारत की भूमि में नहीं जम सकेगी। तब उसने तुरंत कोवियर की नीति का परित्याग किया और एक निजी नीति-निर्धारित कर ली।

नोबिली मथुरा में गेरुए वस्त्र धारण किये हुए एक साधु के वेष में, मस्तक पर चन्दन लगाये हुए और शरीर पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए प्रकट हुआ। उसके एक ओर क्रास लटका रहता था। ऐसी वेशभूषा में उसने ब्राह्मणों की बस्ती में रहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उसकी ओर बहुत से लोग आकृष्ट हो गये। वह अपने आपको रोम से आया हुआ ब्राह्मण बताने लगा, उसने लिखित प्रमाण भी पेश किये कि उसके पूर्वज पुरातन आर्यावर्त्त से वहाँ गये थे। इस प्रकार ऊँची जाति के लोगों को उसने आश्वासन दिया कि 'कोई व्यक्ति ईसाई बनने से अपनी जाति, रीति-रिवाज अथवा प्रतिष्ठा का परित्याग नहीं करता। ('क्रिश्चियन एण्ड क्रिश्चियनिटी इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ. 65-70) उसने तामिल, तेलुगु और संस्कृत सीख ली और ब्राह्मणों की वेशभूषा में रहने लगा। उसने संस्कृत में 'क्रिश्चियन सन्ध्यावंदनम्' नामक पुस्तक ब्राह्मणों से ईसाई बने हुए लोगों के लिये लिखी। उसने घोषित किया कि वह पुराने भारतीय ऋषियों के सन्देश को ही लाया है और उसी की शिक्षा दे रहा है। उसने कहा कि मैं केवल हिन्दुओं के लिए लुप्त हुई धार्मिक पुस्तक पंचम वेद अर्थात् 'यीशुर्वेद' का पुनरुद्धार कर रहा हूँ। सन् 1840 तक इस प्रकार धोखाधड़ी का कार्य चलता रहा, जबकि प्राटेस्टेंट पादरियों ने इसका भंडाफोड़ किया (हिस्ट्री आफ मिशन्स, रिच्टर, पृ. 67)। 1607 से लेकर 1611 ईस्वी तक इन पाँच वर्षों में उसने 27 ब्राह्मणों को ईसाई बनाया। रोमन गोत्र का यह ब्राह्मण संन्यासी, फादर डि नोबिली चालीस वर्ष तक इस छद्म वेष में कार्य करता रहा और 1656 ईस्वी में 89 वर्ष की आयु में सर्वग्रासी काल

ने उसको भी ग्रस लिया। यह कहा जाता है कि उसने लगभग 1,00,000 (एक लाख) व्यक्तियों को ईसाई बनाया।

छद्मवेषी-छली को देश क्या दण्ड देगा?

छद्म-वेषी रावण साधु के वेष में सीता का हरण करने के पाप से मारा गया। कपट मृग मारीच एवं कपट मुनि की भी वही गति हुई। पादरी राबर्ट डि नोबिली को सामाजिक तिरस्कार का दण्ड मिला, प्रशासन के दण्ड से वह बचा रहा (क्योंकि भारत पराधीन था)। ईश्वरीय न्याय में वह कठोरतम दण्ड का भागीदार बना होगा। भगवान का कथन है—'मोहि कपट छल-छिद्र न भावा'।

अब देखना है कि स्वाधीन, सर्व प्रभुसत्ता सम्पन्न भारत देश में धर्मप्राण समाज एवं न्यायप्रिय प्रशासन पादरी एण्ड थोटंक्ल (फादर कुंज कुंजु) छद्म नाम नरेन्द्रानन्द तथा उसके कपट जाल में सहयोगी जनों को क्या दण्ड देता है?

हिन्दू विश्व (मासिक पत्रिका)

फाल्गुन-चैत्र 1903-04 पृष्ठ सं. 17 से 20



मैं ईसाई धर्म को एक अभिशाप मानता हूँ, उसमें आंतरिक विकृति की पराकाष्ठा है। वह द्वेषभाव से भरपूर वृत्ति है। इस भयंकर विष का कोई मारण नहीं। ईसाइयत गुलाम, क्षुद्र और चांडाल का पंथ है।

—दार्शनिक नीत्से

× × ×

हिन्दू समाज में से एक मुस्लिम या ईसाई बने, इसका मतलब यह नहीं कि एक हिन्दू कम हुआ बल्कि हिन्दू समाज का एक दुश्मन और बढ़ा।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

मुसलमान व ईसाई दोनों ही सम्प्रदाय अपने सिवा बाकी अन्य रिलिजनों को झूठा और ढोंगी मानते हैं। दोनों रिलिजनों ने यूरोप में दबदबे के लिए कई धर्म-युद्ध (क्रूसेड) लड़े हैं। पर भारत में हिन्दू-विरोध के लिए दोनों एक-दूसरे के हितों का पोषण करते हैं।

—प्रो. ओबराय



धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक की परिचर्चा में कुछ प्रश्नोत्तर

प्रश्न : मनुष्य अपना धर्म क्यों बदलता है?

उत्तर : धर्म का मूल अर्थ है कर्तव्य। शरीर के प्रति, परिवार के प्रति, जाति, समाज और राष्ट्र एवं विश्व के प्रति समस्त कर्तव्यों की विधिवत् परिपूर्ति का नाम धर्म है। कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के लिये बतलाए गये मार्ग को पंथ (Religion) कहते हैं, धर्म नहीं। सारी मानवता का धर्म एक है जो अनादि और शाश्वत है। भिन्न-भिन्न मानव समूहों के पंथ भिन्न-भिन्न हैं जो सादि एवं सान्त (नश्वर) हैं।

धर्म लोभ, पुरस्कार, भय या आतंक की दया पर नहीं होना चाहिये। कर्तव्य (धर्म) कर्तव्य के लिये ही होता है। सौ में से निन्यानवे प्रतिशत लोग आस्था के दुर्बल होने के कारण लोभवश या भयाक्रान्त होने पर धर्म बदलते हैं। मात्र एक प्रतिशत लोग जागृत विवेक के कारण धर्म बदलते हैं। दृढ़ आस्था वाला व्यक्ति निर्धन अथवा निर्बल होने पर भी धर्म नहीं बदलता। गुरु गोविन्दसिंह के नन्हे-नन्हे बच्चों ने दीवारों में चुनते हुए भी कहा—'बाँह जिन्हाँ दी पकड़िए सिर दीजे बाँह न छोड़िये।' बाल हकीकत एवं छात्रावस्था में वीर बिरसा ने भी किसी भय के प्रहार या लोभ के पुरस्कार से धर्म नहीं बदला।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परखिए चारी।

(तुलसी)

प्रश्न : अगर छोटानागपुर में ईसाई धर्म का आगमन न होता तो क्या कभी आदिवासी आज की सभ्यता एवं शिक्षा पा सकते? (विलियम टोप्पो)

उत्तर : पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा तो अंगरेजी राज के साथ आ गयी थी। इसके लिये ईसाई बनना कहाँ अनिवार्य था। वनवासी समाज में क्या श्री कार्तिक उराँव, डॉ. दुर्गा भगत, श्री कड़िया मुण्डा, श्री ललित उराँव, श्री कर्मचन्द

भगत, श्री लारंग साय आदि प्रतिष्ठित समाज नेता बिना ईसाई बने अशिक्षित एवं असभ्य रह गये? राजा राममोहन राय पश्चिमी शिक्षा के सबसे बड़े पक्षपाती थे किन्तु ईसाई पादरियों को खुली चुनौती देते थे। श्री टोप्पो और श्री खड़िया भी बिना ईसाई बने आधुनिक शिक्षा एवं सभ्यता पा सकते थे।

प्रश्न : 'यह ईसाई धर्म का ही करिश्मा है कि उसने पतित समाज से इन्हें छीनकर इनको (वनवासियों को) उबारा। इन्हें अपने हक को पहचानने का बखूबी पाठ सिखाया और गुलामी से छुटकारा दिलाया।'

उत्तर : पाश्चात्य ईसाई पादरियों ने कौन से पतित समाज से छीनकर श्री टोप्पो को उबारा? क्या श्री टोप्पो के पूर्वजों का समाज पतित एवं गुलाम समाज था? क्या श्री टोप्पो पतित एवं गुलाम पूर्वजों की सन्तान हैं। इसके विपरीत संसार का कोई ऐसा देश नहीं जहाँ पादरी ने पाँव रखे हों और वह देश स्वाधीन बच गया हो, जहाँ पादरी के घुसने के बाद भी वनवासी समाज की संस्कृति नष्ट न हुई हो। 1438 ई. में ईसाई धर्म न्यायालय ने नीदरलैण्ड के 3 लाख लोगों को कैथोलिक पंथ से तनिक भिन्न आस्था के कारण जीवित जलाने का मृत्युदण्ड दे दिया। इनीक्विजिशन एवं खूनी परिषद् द्वारा यूरोप के प्रत्येक देश में भीषण रक्तपात द्वारा सूर्यपूजकों को नष्ट कर ईसाई मत थोपा गया। आज अमरीका के मूल निवासी (रेड इण्डियन ईका, पीरू, मय आदि) कहाँ खो गये। उन्हें सताकर, भगाकर, जलाकर यूरोप की गोरी जातियों के लुटेरों ने वहाँ अपना राज्य जमा रखा है। कनाडा एवं आस्ट्रेलिया के आदिवासी कहाँ गये? वहाँ भी यूरोप की गोरी जातियों का आधिपत्य हो गया है। अमरीका एवं अफ्रीका के नीग्रो आदिवासी जब समान अधिकार की माँग करते हैं तो उन्हें गोली से उड़ाया जाता है। भारत में भी बिरसा भगवान के साथियों को पादरियों ने कितना सताया!

'उन मुण्डा लोगों ने जर्मन लूथरन मिशन के निम्न अत्याचारों के विरुद्ध ज्ञापन दिया—यथा, मुण्डा लोगों को गिरफ्तार करना तथा घसीटना, उन्हें नंगा कर देना, उनके पास से धन छीनना, उनमें से कुछ से रिश्वत लेकर उन्हें अवैध गिरफ्तारी से छुड़वा देना, उनके घरों से सम्पत्ति लूट लेना, उनसे जमीन छीन लेना तथा उन वृक्षों को कटवा देना जिनकी वे पूजा करते थे।'

—लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बिरसा भगवान (पृ. 41)

क्या यह आदिवासियों को गुलामी से छुटकारा दिलाना है या उन्हें पश्चिम की गोरी जातियों का पतित गुलाम बनाना? श्री टोप्पो विश्व इतिहास एवं भारतीय इतिहास के दर्पण में अपना चेहरा देखें।

प्रश्न : (बिशन ने) हर ख्रीस्तीय आदिवासी को मनुष्य बनाया।

उत्तर : भगवान ने हर आदिवासी को एक स्वतन्त्र मनुष्य के रूप में पैदा किया, किन्तु पाश्चात्य ईसाइयत ने उन्हें गुलाम पशु-तुल्य बना दिया। इस विषय में प्रख्यात अमरीकन समाजशास्त्री, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के डायरेक्टर डॉ. पितिरिम ए. सोरोकिन का प्रकाशित मत गंभीर ध्यान के योग्य है—

'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्ध-पिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार परायण तथा सर्वाधिक सत्ता मदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में पाश्चात्य ईसाइयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किये हैं। इनकी सेनाओं ने जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर-ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा और खसोटा। पूर्णतया अशिक्षित लोगों (आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर-ईसाई राष्ट्रों तक) के प्रति उनका यही अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, आदिम अफ्रीकावासी, आदिम आस्ट्रेलियावासी तथा आदिम एशियाई जनसमूह—सभी विभिन्न प्रकार के 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए हैं, जिनके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवनमूल्यों का विनाश, सामाजिक संस्थाओं का विनाश तथा 'ईसाई प्रेम' के शिकार हुए व्यक्तियों की पद्धति का विनाश तथा दूसरी ओर स्वयं इनमें शराबखोरी, यौन रोगों, व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, इत्यादि-इत्यादि।'

प्रश्न : क्यों उनमें (प्रो. ओबराय में) डर समा गया है कि अगर आदिवासी और हरिजन अपनी रूढ़िवादिता से उबरकर कोई भी प्रतिगामी धर्म तथा विश्वास को अपनाते हैं (जिस तरह डॉ. अम्बेडकर ने हरिजन समाज को उबारने के लिये बौद्ध धर्म को अपनाया) तो उनकी जो अब तक की दूसरों पर राज करने की मनोवृत्ति है उसका क्या होगा? (विलियम टोप्पो)

उत्तर : इतिहास साक्षी है कि भारत ने अपना अथवा भारतीय हिन्दू समाज ने आज तक संसार के किसी देश अथवा समाज को कभी भी गुलाम नहीं बनाया है। इसके विपरीत पाश्चात्य पादरियों ने किसी अन्य समाज अथवा राष्ट्र को आजाद नहीं रहने दिया। अतः धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक से उदार एवं लोकतन्त्रनिष्ठ हिन्दू समाज को कोई भय नहीं है। स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन या धर्मदीक्षा लेने एवं अपने-अपने इष्ट देवता की उपासना की स्वाधीनता भारत ने सदा प्रदान की है। भय तो विदेशी पादरियों को ही है जिनकी गुलामों की मंडी नष्ट हो जाने की सम्भावना है।

यदि डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में कुछ हरिजनों ने स्वेच्छा से (बिना विदेशी प्रलोभन अथवा देश-घातकी राजनीतिक षड्यन्त्र के) बौद्ध धर्म को अपनाया तो किसी को चिन्ता नहीं हुई किन्तु ईसाई धर्मांतरण द्वारा सारे संसार को यूरोप एवं अमरीका की गोरी जातियों का क्रीत-दास बनाने का भयंकर षड्यन्त्र चल रहा है जिसके अन्तर्गत यूरोप, अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आधा अफ्रीका अपने मूल स्वरूप को खोकर ईसाइयत की भेड़ों में शामिल हो चुका है। अब भारत ही उनके शिकार का लक्ष्य है।

प्रश्न : विदेशी पादरियों को फूटी आँखों.....नहीं देखना चाहते? (निगा खड़िया)

उत्तर : मुझे यूरोप एवं अमरीका के अनेक देशों के प्रवास का सुयोग मिला है। अनेक विदेशी पादरी मेरे परम मित्र हैं जिनके साथ मेरा अभी तक प्रेम पत्राचार चलता है। मैं स्वयं पश्चिम के अनेक गिरजाघरों में व्याख्यान देकर आया हूँ। ब्राक पोर्ट (न्यूयार्क) के प्रथम बेप्टिस्ट मिशन के प्रमुख पादरी श्री डाइकलर मेरे पत्रों में प्रेषित विचारों को अपने रविवार की गिरजाघर सभा में पढ़कर सुनाते हैं। किन्तु मैं विदेशी पादरियों का तभी तक सम्मान करता हूँ जब तक वे अपने-अपने देश में सेवा अथवा धर्म प्रचार करते रहते हैं, ज्योंही वे भारत में आकर निर्धनता का शोषण करते हैं, पैसे के बल पर अथवा सत्ता के बल पर यहाँ के भोले-भाले लोगों का धर्मान्तरण कर भारत के विरुद्ध विद्रोह भड़काने लगते हैं, तब वे फूटी आँख से देखने लायक भी नहीं बचते।

प्रश्न : स्वतन्त्रता संग्राम में भाग नहीं लेने का इल्जाम लगाना ओबराय जी की नासमझी का चिह्न है। कांग्रेस की स्थापना एक अंगरेज ईसाई ने की थी। इसका प्रथम अध्यक्ष एक बंगाली ईसाई था। (निगा खड़िया)

उत्तर : वास्तव में यह आरोप सामान्य रूप से विदेशी पादरियों पर और विशेष रूप से पादरी बुल्के पर था। न कि सभी भारतीय ईसाइयों पर और न ही सभी विदेशी ईसाइयों पर। भारत की स्वाधीनता की दृष्टि से ईसाइयों को निम्नलिखित कोटियों में बाँटा जा सकता है—

(क) सामान्य भारतीय ईसाई नागरिक जिनकी मातृभूमि-पितृभूमि भारत है किन्तु धर्मान्तरण के पश्चात् पुण्यभूमि येरुशलम को मानने लगे हैं। उनमें से कुछ देशभक्त हैं और कुछ देश के प्रति उदासीन।

(ख) ऐंग्लो इण्डियन या ऐंग्लो यूरोपियन ईसाई, जिनकी पितृभूमि विदेश में है, माता भारत की होने से मातृभूमि भारत है और पुण्यभूमि विदेश में होने के कारण उनकी निष्ठा प्रायः भारत बाह्य होती है, वे भारतीय स्वाधीनता के विरुद्ध ब्रिटिश, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच

साम्राज्यवाद का समर्थन करते रहे हैं और भारतीयों पर भीषण जुल्म भी ढाते रहे हैं।

(ग) उदार विदेशी ईसाई जो विदेश में रहते हुए भी भारतभक्त हुए और भारत की स्वाधीनता के अनुकूल विचार प्रकट करते रहे जैसे— मैक्समूलर, जैकोबी, कान्ट, श्लीगल, थोरो, इमर्सन, कार्लायल, रोम्यॉ रोलाँ इत्यादि।

(घ) भारतभक्त विदेशी ईसाई जिनकी मातृभूमि-पितृभूमि विदेश में थी किन्तु उन्होंने स्वेच्छा से भारत की पुण्यभूमि का वरण किया, चाहे भारत की नागरिकता नहीं ली जैसे एटम बम के आविष्कारक, गीताभक्त राबर्ट ओपनहीमर, आल्डुडास हक्सले तथा कृष्ण भावनामृत संघ (हरे कृष्ण आन्दोलन) के विदेशी भक्त।

(ङ) विदेशवंशी भारतीय जन्मतः विदेशी ईसाई जिनकी मातृभूमि एवं पितृभूमि विदेश में थी किन्तु वे भारत-भक्ति, भारतीय नागरिकता एवं भारतीय स्वाधीनता के प्रबल समर्थन के कारण पूर्णतया भारतीय बन गये। जैसे श्रीमती एनीबेसेंट ने भारत एवं हिन्दुत्व को समानार्थक माना तथा भारत को अपनी आध्यात्मिक जन्मभूमि कहा। श्रीमती मीरा रिचर्ड (अरविन्द आश्रम की श्री माँ) ने भारत के जीवनतत्त्व की प्रतिष्ठा की, कुमारी मारग्रेट नोबेल (भगिनी निवेदिता) स्वामी विवेकानन्द की धर्म शिष्या बनकर भारत में आई तथा भारत के स्वाधीनता संग्राम में वे श्री अरविन्द तथा कन्हाईलाल दत्त जैसे उग्र क्रांतिकारियों के साथ तेजस्वी सहयोग करती रहीं; प्रो. रोनाल्ड निक्सन, जो योगी कृष्ण प्रेमी बनकर अल्मोड़ा में अलौकिक साधना करते रहे।

(च) भारतवंशी प्रवासी भारतीय जो विदेश में जाने पर किन्हीं परिस्थितियों के कुचक्र से धर्मान्तरण द्वारा ईसाई बना दिये गये हैं।

(छ) साम्राज्यवादी विदेशी ईसाई जो भारत में विदेशी साम्राज्य के अंतर्गत शासन करने के लिये आये तथा भारतीयों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह से रोकने के लिये भारतीय समाज नीति अथवा राजनीति में रुचि लेते रहे। जैसे लार्ड ह्यूम एवं लार्ड मैकालिफ। श्री ह्यूम इण्डियन सिविल सर्विस के अंतर्गत भारत में ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ बनाने के लिये ही आए थे। अवकाश प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने सन् 1885 में अंग्रेजों के संकेत पर ही इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना एक सेफ्टी वाल्व (Safety Valve) के रूप में की, ताकि

भारत के पढ़े-लिखे लोग अपनी नागरिक सुविधाओं के लिये बैठकें करके प्रस्ताव पारित कर ब्रिटिश शासन के पास भेजते रहें और इस प्रकार उनके मन के भावों की भाप निकलती रहे और सन् 1857 जैसा भीषण विस्फोट न हो सके। लार्ड ह्यूम न विदेशी पादरी था और न भारत की स्वाधीनता हेतु उसने कोई त्याग-बलिदान किया।

(ज) विदेशी ईसाई पादरी जो भारत को ईसाई बनाने के उद्देश्य से आये किन्तु भारत के निकट सम्पर्क में आने पर वे स्वयं भारत-भक्ति में रंग गये। जैसे दीनबन्धु एण्ड्रूज, स्वामी सत्यानन्द स्टोकस्त (जो कुल्लु में आश्रम बनाकर वैदिक धर्म-साधना करते रहे), ब्रिटिश पादरी एटकिन्स जिन्होंने पादरी का संकुचित धन्धा छोड़कर सारा जीवन तुलसी रामायण का अंग्रेजी पद्य में दोहा-चौपाई-छन्द में अनुवाद करने में समर्पित कर दिया। भारत निश्चय ही ऐसे विदेशी भारत-भक्तों का ऋणी है।

(झ) विदेशी पादरी जिनकी मातृभूमि, पितृभूमि, पुण्यभूमि सभी कुछ भारत के बाहर है तथा जो शिक्षा, चिकित्सा या सहायता के जाल द्वारा भारत को यूरोप एवं अमरीका की गोरी जातियों का गुलाम बनाये रखने के लिये क्रियाशील रहते हैं, ऐसे लोगों द्वारा भारत के स्वाधीनता संग्राम में सहयोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता, उलटे वे विदेशी शक्तियों के गुप्तचर एवं दलाल बनकर धोखे से पीठ में छुरा भोंकने का दुष्ट प्रयास करते रहते हैं। जैसा पादरी माइकल स्कॉट की करतूतों से नागालैण्ड में हुआ और अब मिजोरम एवं मेघालय में सामूहिक हत्याओं का नाटक जारी है।

मेरा कथन अभी तक अकाट्य है कि भारत के स्वाधीनता संग्राम में किसी विदेशी पादरी का अथवा पादरी बुल्के का कोई योगदान नहीं रहा। यदि कोई भारतीय ईसाई कांग्रेस में अथवा स्वाधीनता संग्राम में भाग ले तो उसमें महत्त्व उसके भारतीय रक्त का है। इससे विदेशी पादरी का भारत के स्वाधीनता संग्राम में योगदान कदापि सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न : हिन्दुओं से तंग आकर ही पाकिस्तान की रचना हुई और नागालैण्ड विद्रोही बना? (निगा खड़िया)

उत्तर : हिन्दू से अधिक उदार समाज सारे संसार में दूसरा नहीं है। अतः पाकिस्तान के निर्माण के लिये हिन्दू समाज पर अत्याचार का आरोप लगाना अपने आप को इतिहास एवं न्यायबुद्धि के प्रति अंधा सिद्ध करना है। मुसलमानों ने अहिंसक भारत पर अकारण आक्रमण कर इसके धन, जन, तीर्थ, संस्कृति,

ग्रन्थों, पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों आदि का भयंकरतम नाश किया और भारत के शीश पर एक हजार वर्षों तक इस्लाम की तलवार नाचती रही। फिर भी पाकिस्तान के रूप में एक-चौथाई देश के कट जाने के उपरान्त भी भारत ने अभी तक करोड़ों मुसलमानों को हृदय से लगाकर रखा है तथा दो मुस्लिमों को राष्ट्रपति, एक को सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, दर्जनों को राज्यपाल, केन्द्रीय मन्त्री एवं राजदूत एवं सेना अधिकारियों का सम्मान दिया है। वास्तव में हिन्दू ने अपनी सद्गुण विकृति के कारण अपनी उदारता को अतिसीमा पर ले जाने के कारण बहुत हानि उठाई है।

फिर भी जो 'पाकिस्तान' के निर्माण के लिये भारत के पुत्रवत् समाज (हिन्दू समाज) को ही दोषी मानता है, वह भारत एवं भारतीयता का घोर तिरस्कार करने वाला देशद्रोही है।

आचार्य चतुरसेन के शब्दों में—प्रथम अरब आक्रान्ता मुहम्मद बिन कासिम सिन्ध से 40 तांबे की देगें लूटकर ले गया जिनमें 17200 (सत्रह हजार दो सौ) मन सोना था। वह छः हजार छः सौ ठोस सोने की मूर्तियाँ भी ले गया जिनमें सबसे बड़ी का वजन तीस मन था। महमूद गजनवी नगरकोट मन्दिर से 700 मन अशर्फी, 700 मन सोने-चाँदी के बर्तन, 740 मन सोना, 2000 मन चाँदी और 20 मन हीरा-मोती लूटकर ले गया। सोमनाथ मन्दिर की लूट में 51 रत्नजड़ित खम्भे और मूर्ति के ऊपर 40 मन ठोस सोने की जंजीर से लटकता घंटा भी उसके हाथ लगा। सैकड़ों ऊँटों पर लूट का सामान लादकर वापस गजनी की ओर लौटते समय वह मार्ग भटक कर सिन्ध के मरुस्थल में अन्न-जल के बिना तड़पने लगा। मार्ग के हिन्दुओं ने उन आक्रान्ताओं की भी सेवा समेत अन्न-जल देकर अतिथि-सत्कार का विचित्र धर्म निभाया। हिन्दू ने विष-धर साँपों को दूध पिलाया है। सोमनाथ में पुनः हिन्दू राज आने पर भी हिन्दू राजा ने सोमनाथ मन्दिर के सामने विशाल मस्जिद बनाने की अनुमति दे दी और एक नवीन मस्जिद राज्य की ओर से बनवाकर उसकी वार्षिक व्यय व्यवस्था राज्य की ओर से कर दी। मुस्लिम आक्रान्ताओं ने कृष्ण जन्मभूमि मथुरा, राम जन्मभूमि अयोध्या एवं काशी विश्वनाथ के मन्दिरों को ध्वस्त किया, पवित्र धाम रामेश्वरम् की मूर्तियों को आगरा और दिल्ली ले जाकर उन्हें उलटा करके अपने महलों की सीढ़ियों में चुनवा दिया। हिन्दुओं की भावनाओं को कुचलने के लिये पवित्र मन्दिरों की मूर्तियों का मल-मूत्रोत्सर्ग करने के स्थान पर फर्श बनाने के लिये उपयोग किया गया। सहस्रों हिन्दू स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर मध्य एशिया के काबुल-कंधार आदि स्थानों में ले

जाकर बेचा गया। हिन्दू की अतिशय आत्मघाती उदारता का प्रमाण यह है कि उसने काशी विश्वनाथ आदि स्थानों पर बनी हुई मस्जिदों को निरस्त कर प्राचीन मन्दिरों की पुनर्प्रतिष्ठा तक नहीं की। जिस मुस्लिम समाज की आक्रामक वृत्ति ने खून की नदियाँ बहाकर, अबोध बच्चों को भालों पर उछालकर, स्त्रियों के नंगे जुलूस निकालकर, देश भर में आग एवं हत्या से आतंक मचाकर हमारी सदावत्सला भारतमाता के टुकड़े कर पाकिस्तान बना दिया, उसके निर्माण के लिये हिन्दू समाज को वही दोष दे सकता है जो स्वयं भारत को पुनः काटकर ईसाईस्तान बनाने का दुष्ट षड्यन्त्र रच रहा हो।

नागालैण्ड की रचना भी अंगरेज शासकों एवं ईसाई पादरियों की दुरभिसन्धि के कारण हुई। उसमें हिन्दुओं से तंग आने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? पूरे ब्रिटिश शासन में और बाद में नेहरू शासन और इन्दिरा के शासनकाल में भी किसी हिन्दू प्रचारक को नागालैण्ड में पाँव रखने तक की अनुमति नहीं थी, और न आज तक कोई हिन्दू प्रचारक वहाँ है। वहाँ भारत से विद्रोह की सारी आग भड़काने का पूरा उत्तरदायित्व विदेशी पादरियों का ही है। लगभग डेढ़ मास पूर्व नागालैण्ड में दो हजार गैर-ईसाई नागाओं की (जिनके गले में क्रॉस नहीं था) एक पादरी की उपस्थिति में हत्या कर दी गयी। नागालैण्ड सरकार ने झूठा समाचार प्रसारित किया कि विद्रोही नागाओं ने 2000 नागरिकों को मार डाला। मेघालय के एक समाचार पत्र एवं कलकत्ता के एक समाचार पत्र ने सही तथ्य छापा कि जो नागा ईसाई बनने से इनकार करते रहे हैं उन्हें ही मारा गया।

अब मिजोरम में भी गैर-मिजो के नाम पर गैर-ईसाइयों (हिन्दुओं) की हत्याओं का क्रम जारी है। पादरियों को अपने पापों को दूसरों पर थोपने में कुछ लज्जा अनुभव होनी चाहिये।

प्रश्न : फादर बुल्के ने हिन्दी के लिये बहुत कुछ किया है....राम-कथा लिखकर फादर बुल्के ने भारतीय संस्कृति तथा भाषा की बड़ी सेवा की? (सत्यानन्द देवदास, पटना)

मदर टेरेसा और फादर बुल्के को कई बार राष्ट्रीय और प्रान्तीय पुरस्कार मिल चुका है। ये पुरस्कार उनकी निःस्वार्थ सेवा के लिये दिये गये हैं न कि उनके धर्मान्तरण कार्य के लिये। (निगा खड़िया)

उत्तर : किसी व्यक्ति के जीवन के कई पक्ष हो सकते हैं। साहित्य सेवा और समाज सेवा, धर्मनिष्ठा और देशनिष्ठा में अन्तर हो सकता है। अतः एक

क्षेत्र में किये गये पापों को ढकने के लिये दूसरे क्षेत्र का सुनहला पर्दा डालना न्यायोचित नहीं होगा। उदाहरणार्थ यदि कोई रावण के सीताहरण के पाप पर पर्दा डालने के लिये यह विसंगत तर्क दे कि वह चार वेद का ज्ञाता था तो बड़ा हास्यास्पद प्रतीत होगा। पादरी बुल्के की भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में सेवाओं का स्वतन्त्र मूल्यांकन होना चाहिये, धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक के प्रसंग में उसकी चर्चा विषयांतर मात्र है। राम-कथा पर शोध के निष्कर्ष यदि राम और कृष्ण की संस्कृति का मूलोच्छेदन करने वाले हों तो इसे भारतीय संस्कृति की सेवा कैसे माना जा सकता है? आजकल की शिक्षा में यह बिल्कुल सामान्य सम्भावना है कि सत्य के दर्शन पर मोटा शोध प्रबंध लिखनेवाला स्वयं पहले दर्जे का झूठा व्यक्ति हो। श्री बुल्के ने रामकथा पर लेखनी तो उठायी है किन्तु श्रद्धा नहीं दर्शायी। वे पादरी एटकिन्स की तरह रामचरितमानस के प्रति समर्पित होकर पादरी के संकुचित धंधे से उपराम नहीं हुए। पुरस्कार और पदक कोई तर्क नहीं है जिससे किसी विषय को सिद्ध अथवा असिद्ध किया जा सके। तर्कशास्त्र में इसे तर्क-छल कहा जाता है। जैसे इन्दिरा गाँधी की भारतरत्न की सर्वोच्च उपाधि भी उसे आपात् काल के अत्याचारों से मुक्त सिद्ध नहीं कर सकती।

प्रश्न : फादर डेमियन ने मोलोकाय के कोढ़ियों के लिये अपने को समर्पित कर दिया तथा अपने को कोढ़ी बना दिया, मदर टेरेसा ने कलकत्ते के जराजीर्ण रोगियों एवं अनाथों को गले लगाया, फादर माक्सीमिलियन कोल्बे ने नाजी नजरबंदी शिविर के एक कैदी की जान बचाने के लिये अपने को होम कर दिया। इन ईसाई संतों का त्याग और प्रेम दूसरों को ईसा की ओर आकर्षित करता है। क्या वह प्रलोभन है या उत्तम मानव प्रेम? (सत्यानन्द देवदास)

उत्तर : निःस्वार्थ सेवा को सदा नमस्कार है और स्वार्थ-पूर्ति हेतु सेवा को बार-बार धिक्कार। फादर डेमियन ने प्रशान्त महासागर में स्थित हवाई द्वीप-समूह के मोलोकाय द्वीप के कोढ़ियों की सेवा अवश्य की। जितनी मात्रा में वह निष्काम थी उतनी मात्रा में मानवता उनकी ऋणी अवश्य रहेगी। किन्तु भारत के धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक के विरोध में उनके एवं फादर माक्सीमिलियन के उदाहरणों की प्रसंगानुकूलता कुछ भी नहीं, क्योंकि भारत में ईसाई पादरी के क्रियाकलाप का उद्देश्य भिन्न होता है और उनके अपने पश्चिमी देश में भिन्न। अपने घर में सदस्यों को शिक्षा, भोजन, स्वास्थ्य की सुविधायें देना कर्तव्य होता है, दूसरों को निःस्वार्थ भावना से सुविधाएं देना सेवा कहलाता है तथा निर्धन एवं अभावग्रस्त लोगों को किसी राजनीतिक-कूटनीतिक उद्देश्य अथवा उनकी परम्परागत निष्ठा लूटने

के लिये सुविधाएं देना शोषण कहलाता है। यदि किसी भूखी शरणार्थी लड़की को भोजन का लोभ देकर उसका शीलहरण कर लिया जाय तो वह सेवा के स्थान पर व्यभिचार अथवा शोषण बन जायेगा।

फादर डेमियन जब हवाई द्वीपसमूह में सेवा करने गये तब वहाँ एक स्थानीय वनवासी जाति की महारानी का राज्य था। सन् 1881 में वहाँ की महारानी मोलोकाय में पादरी डेमियन से मिली तथा उसे सेवा के बदले स्वर्णपदक भी दिया किन्तु पादरी डेमियन के द्वारा वहाँ सेवा के माध्यम से जो धर्मान्तरण का कुचक्र चलाया गया उसके फलस्वरूप 1893 में वहाँ की रानी को अपदस्थ कर ईसाइयों का शासन स्थापित हो गया तथा 1899 में उसे अमरीका ने पूर्ण रूप से हड़प लिया। 1899 में वहाँ गोरे ईसाइयों का राज्य स्थापित हो जाने के बाद पादरी डेमियन स्वयं कुष्ठ रोग से मर गया।

उसकी तुलना में वाराणसी के प्रसिद्ध औघड़ सन्त भगवान राम द्वारा जो कुष्ठ आश्रम चल रहा है वहाँ की निःस्वार्थ सेवा एवं स्वामी जी के तंत्र-चमत्कार से अनेकों रोगी कुष्ठमुक्त होकर स्वस्थ नागरिक बन चुके हैं।

मदर टेरेसा की सेवा भी धर्मान्तरण के लिये ही है। उनके अपने ही वचनों से उनकी पोल खुल चुकी है।



जब भारत के संविधान रचना की चर्चा चली थी, उस समय ईसाइयों को मत-प्रचार का अधिकार देना चाहिए या नहीं, यह विषय सामने आया था। तब अपवाद रहित सभी सदस्यों का मत था कि, 'दुनिया के किसी भी देश के संविधान में इस प्रकार का प्रावधान नहीं है और आगे चलकर इससे खतरा खड़ा हो सकता है।' परन्तु एक प्रमुख कांग्रेसी सदस्य ने 'बेचारे इतनी छोटी संख्या में रहने वाले लोगों की प्रार्थना मान ली जाए', ऐसा कहा। तब लोगों ने उसको चुपचाप स्वीकार कर लिया। अब देखें ये छोटे-से बेचारे क्या गुल खिला रहे हैं।

—हो. वे. शेषाद्रि

× × ×

'राजनीति तो अन्ततोगत्वा राष्ट्र की सेवा की हेतु है। यदि हम राष्ट्र के मूल स्वरूप, इतिहास, संस्कृति और परम्पराओं को त्याग देते हैं, तो उस राजनीति का क्या लाभ?' **—पंडित दीनदयाल उपाध्याय**



धर्म-स्वातंत्र्य, अरुणाचल प्रदेश एवं विदेशी पादरी

संसद सदस्य श्री ओमप्रकाश त्यागी द्वारा लोकसभा में प्रस्तुत धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक इतना निष्पक्ष एवं निर्दोष है कि किसी भी विवेकशील लोकतन्त्र प्रेमी नागरिक को स्वप्न में भी ऐसे विधेयक का विरोध नहीं करना चाहिए। किन्तु यह महान् आश्चर्य का विषय है कि देश के करोड़ों नागरिकों के हार्दिक समर्थन एवं राष्ट्र के प्रधानमन्त्री के उदार स्पष्टीकरण के उपरान्त भी केवल विदेशी पादरी ही इस विधेयक के विरुद्ध अनर्गल बातें बोल रहे हैं।

रांची एक्सप्रेस के दिनांक 14 जून के अंक में 'ईसाई धर्मनेताओं के विचार' शीर्षक समाचार में रांची के पादरी फादर बुल्के ने लगभग वही आरोप दुहराये हैं जो मदर टेरेसा ने प्रधानमन्त्री पर अपने पत्र दिनांक 26 मार्च, 1979 में लगाए थे और जिनका निष्पक्ष उत्तर प्रधानमन्त्री ने स्पष्ट शब्दों में दे दिया था।

प्रधानमन्त्री ने मदर टेरेसा को लिखा था, 'आपके सेवा कार्यों के लिए हम कृतज्ञ हो सकते हैं, किन्तु आपको सेवा के बहाने से किसी का धर्म लूटने का अधिकार नहीं दे सकते।'

श्री बुल्के ने भी कहा है, 'मैं 44 वर्षों से इस देश की सेवा कर रहा हूँ। अपनी मातृभूमि बेल्जियम से मेरा कोई सरोकार नहीं है। मैंने भारत की नागरिकता ग्रहण कर ली है....अन्य धर्मावलम्बियों को भी सेवाकार्य में हमारे साथ पवित्र प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए।'

मदर टेरेसा और पादरी बुल्के दोनों विदेशी मिशन द्वारा सेवा का बड़ा ढिंढ़ोरा पीटते हैं, किन्तु उनके वचन में अहंकार की गन्ध और धर्मान्तरण के उद्देश्य छिपे हुए हैं। क्या उनकी सेवा शुद्ध, निष्काम सेवा है अथवा धर्मान्तरण के लिए मात्र चारा? सेवा सदा शुद्ध एवं निष्काम होनी चाहिए जिसमें न फल की इच्छा, न कर्म से आसक्ति और न कर्तापन का अहंकार होना चाहिए। अन्यथा सेवा मात्र शिकार फंसाने के लिए चारा, गुलाम बनाने हेतु प्रलोभन या धर्मान्तरण के लिए सौदेबाजी मात्र बनकर रह जाती है।

क्लिफ्फोर्ड मैंशर्दत (Clifford Manshardt) ने अपनी पुस्तक Christianity in a changing India के पृष्ठ 28 पर स्वयं स्वीकार किया है, 'We have offered inducement to men to accept our religion.'

अर्थात् 'हमने लोगों को हमारा धर्म स्वीकार करने के लिए प्रलोभन दिए हैं।'

किसी देश की सच्ची सेवा उसकी संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन ही है क्योंकि संस्कृति ही राष्ट्र की आत्मा है। जब श्री बुल्के कहते हैं कि वह गत 44 वर्षों से भारत की सेवा कर रहे हैं तो प्रश्न उठता है क्या वह भारत देश की सेवा कर रहे हैं या भारतीय संस्कृति की अथवा दोनों की? भारत के स्वाधीनता संग्राम में किसी विदेशी पादरी का अथवा पादरी बुल्के का कोई योगदान नहीं रहा। केवल दीनबन्धु एण्ड्रूज जब स्वाधीनता संग्राम में योगदान देने लगे तब उन्होंने पादरी का संकुचित धंधा त्याग दिया।

भारतीयता को बेचने के लिए भारतीय नागरिकता ले लेना भारत की सेवा न होकर कुछ और ही हो जाता है। इसकी तुलना में मैक्समूलर, जैकोबी, श्लीगल, रोम्याँ रोलाँ एवं इमर्सन जैसे पश्चिमी विद्वान, जिन्होंने अपने-अपने देश की नागरिकता भी नहीं छोड़ी, भारत के विषय में बड़े उत्तम ग्रंथ लिखते रहे और स्वयं ईसाई रहते हुए भी किसी भारतीय को ईसाई बनाने की चेष्टा नहीं की, वे भारत की अधिक बड़ी सेवा कर गए।

मदर टेरेसा, बम्बई के आर्कबिशप पिमेंटा और पादरी बुल्के बार-बार मिथ्या प्रचार कर रहे हैं कि अरुणाचल प्रदेश में ईसाइयों को सताया जा रहा है तथा चर्च जलाए जा रहे हैं।

मैं स्वयं गत 3 मास में दो बार अरुणाचल प्रदेश की यात्रा करके आया हूँ तथा स्वयं इस तथ्य का साक्षी हूँ कि वहाँ चर्च गिराने अथवा जलाने का समाचार बिल्कुल झूठा है। अरुणाचल में 20 प्रमुख जनजातियाँ रहती हैं। तिब्बत एवं भूटान के प्रभाव से पश्चिमी अरुणाचल की गोम्पा, खम्पा आदि जातियाँ बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। मध्यवर्ती अरुणाचल की निमी और मिस्मी जातियाँ सूर्य और चन्द्रमा की उपासक हैं। पश्चिमी अरुणाचल की अका और नोक जातियाँ वैष्णव हैं।

नागालैण्ड के नागाओं को भारत के विरुद्ध विद्रोह के लिए भड़काने वाले पादरी माइकेल स्कॉट को जब भारत से निष्कासित कर दिया गया था तब कुछ समय के लिए वह इंग्लैण्ड में जाकर वहाँ से विद्रोही नागाओं का मार्गदर्शन करते रहे। बाद में वह वहाँ से भारत-बर्मा सीमा पर भारत की अन्तिम चौकी पाँचू (अरुणाचल प्रदेश) से दो मील हट कर बर्मा सीमा में डेरा जमा कर बैठ गये हैं। वहीं से वह नागालैण्ड के षड्यन्त्रों का मार्गदर्शन करते रहते हैं और अरुणाचल प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्रों में अपने छल-बल, प्रलोभन एवं दलालों द्वारा धर्मान्तरण करते रहते हैं। तिराप जिले

के चांग लाँग क्षेत्र में लगभग 300 नव-धर्मान्तरित लोग ईसाई पादरियों की चाल से तंग आकर स्वेच्छापूर्वक अपने परम्परागत आदिधर्म में लौट आए। उन्होंने अपने हाथों से जो पत्थरों को जोड़कर गिरजाघर बनाया था उसे ही उन्होंने बदलकर दोनी पोलो (सूर्य-चन्द्रमा) का मन्दिर बना दिया। इसमें न प्रशासन का कोई दोष है न उन वनवासियों का, न वहाँ के स्थानीय धर्म संरक्षण अधिनियम का। दोषों का दोष तो विदेशी पादरियों का है जो धोखे और प्रलोभन से निर्धनों का ईमान लूटते हैं और कुछ मछलियों के जाल से निकल भागने पर हाय-तौबा मचाते हैं।

श्री बुल्के कहते हैं, 'आदिवासियों को लीजिये, इनमें कितने अन्धविश्वास थे, हमने इन्हें इनसे मुक्त किया। हम इन्हें मनुष्य के रूप में देखते हैं। इनसे कोई भेद-भाव नहीं बरतते। हम इन्हें उत्तम आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आधार देते हैं। फिर मेरे लिए यह दुःख की बात है कि आज लोग हम पर तरह-तरह के आक्षेप लगाते हैं।'

यदि पादरी महोदय की नीयत साफ है तो उन्हें न धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक से भय होना चाहिए और न लोगों के आक्षेपों का दुःख।



मुहम्मद अली जिन्ना से एक बार किसी ने पूछा, पाकिस्तान का पहला बीज कब बोया गया? तो जिन्ना ने उत्तर दिया, 'जब हिन्दुस्तान के पहले हिन्दू को मुसलमान बनाया गया।'

—हो. वे. शेषाद्रि

× × ×

हमीद दलवाई ने अपनी पुस्तक Muslim politics in secular India में लिखा है—मुसलमान, जो उन पर अत्याचार हो रहा है ऐसा नारा लगाते हैं उनमें से बहुतों से मिला कि आप पर कौन-सा अत्याचार होता है, चूंकि हमीद दलवाई मुसलमान थे अतः स्पष्ट रूप से बताया कि हिन्दुओं का बहुसंख्यक होना ही मुसलमानों पर, इस्लाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है जिसके कारण देश का इतना बड़ा हिस्सा मुस्लिम राष्ट्र नहीं बन सका। जब तक हिन्दू समाज बहुसंख्यक रहेगा तब तक हम इस देश को मुस्लिम राष्ट्र नहीं बना सकते। यही हम पर, इस्लाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है।



मदर टेरेसा के स्वागत में विवेक से काम लें

मदर टेरेसा के स्वागत में विवेक से काम लें। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि मदर टेरेसा एक ईसाई भिक्षुणी हैं जो विदेश से भारत में आकर कलकत्ता में एक अनाथ आश्रम एवं वनिताश्रम चला कर सेवा के इस जनहितकारी प्रकल्प द्वारा मानव की करुणा को जगाने वाले हृदयस्पर्शी माध्यम द्वारा ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के काम में लगी हुई हैं।

विगत वर्ष (1979 में) संसद सदस्य श्री ओमप्रकाश त्यागी ने संसद में धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक प्रस्तुत किया था, जिसके अनुसार छल, छद्म, भय अथवा प्रलोभन द्वारा किसी का धर्म छीनने को अपराध घोषित करने का प्रावधान था। तब मदर टेरेसा ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई को जो पत्र लिखा था वह उनके सेवा कार्यों के ऊपर का लुभावना पर्दा उठा कर उनकी वास्तविक भावना को नंगा कर देने वाला है। उन्होंने लिखा, 'मैं निश्चित रूप से ईसा के नाम पर ही सेवा कर रही हूँ। लोगों को ईसा का प्रेम सन्देश देने आई हूँ। लोगों को ईसाई बनाने पर यदि प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो हम इसे कभी सहन नहीं कर सकेंगे। हम विद्रोह करेंगे।' उन्होंने श्री मोरारजी देसाई पर व्यक्तिगत आक्षेप करते हुए लिखा कि, 'तुम बहुत बूढ़े हो गये हो। कुछ वर्षों के बाद तुम्हें मर कर खुदा के पास इस चीज का जवाब देना पड़ेगा कि तुमने ईसाइयत के प्रसार पर प्रतिबन्ध क्यों लगाया।' उन्होंने मोरारजी देसाई को नरक जाने का शाप भी दिया। श्री मोरारजी देसाई ने बड़े संयम एवं सज्जनता से उत्तर दिया कि 'मैं आपकी सेवा भावना की प्रशंसा कर सकता हूँ किन्तु सेवा के बहाने किसी का धर्म लूटने का अधिकार नहीं दे सकता।'

कलकत्ता में मदर टेरेसा के आश्रम में पूरा ईसाई पन्थ का वातावरण है। ईसा के चित्र टँगे हैं। बाइबिल पढ़ाई जाती है। ईसाई प्रार्थनाएँ होती हैं और अभागे हिन्दू बच्चे-बच्चियों को, जिनके माता-पिता तथा धन-सम्पत्ति पहले ही लुटे हुए हैं, उनसे भोजन अथवा सेवा के नाम पर उनका प्राणप्यारा धर्म भी लूट लिया जाता है। यदि यही सेवा की परिभाषा है तो ठगी और धर्म का व्यभिचार किसे कहा जायगा?

अभी दो सप्ताह पूर्व रांची में ही रोमन कैथोलिक मिशन के बूढ़े पादरी एण्ड्रू थोटंक्ल को पुलिस ने उनकी ऐसी ही ठग-विद्या के कारण जेल में ठूँस दिया है। वह

भी सन् 1974 से पादरी के चोगे को ही भगवे रंग में रंग कर हिन्दू संन्यासी का छद्म नाम स्वामी नरेन्द्रानन्द रख कर शत-प्रतिशत हिन्दू बस्ती हेसल में रह कर पलामू, भोजपुर एवं छोटानागपुर के गरीब ब्राह्मण बच्चों को अपने मन्दिरनुमा दिव्य ज्योति आश्रम में रख कर उन्हें निःशुल्क शिक्षा एवं भोजन-वस्त्र की सेवा देकर उनका प्राणप्यारा धर्म लूटने का धन्धा चला रहे थे। मदर टेरेसा का कार्य एवं सभी ईसाई पादरियों का कार्य एक ही उद्देश्य से चल रहा है। वे 20 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारे विश्व को प्रभु ईसा के चरणों में लाने का स्वप्न देख रहे हैं। एशिया का हृदय भारत है और भारत का सबसे दुर्बल क्षेत्र—वनवासी, हरिजन, विधवा, अनाथ वर्ग है। वे योजनापूर्वक नागालैण्ड से लेकर केरल तक, कम से कम 30 प्रतिशत जनता को ईसाई बनाकर ईसाईस्तान बनाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। उनका तर्क है कि जिस भारत में 23 प्रतिशत मुसलमान खंजर की नोक पर, भारत को काटकर पाकिस्तान ले सकते हैं, वहाँ हम 30 प्रतिशत ईसाई, जिनके पीछे संसार के 76 ईसाई राष्ट्र खड़े हैं, पोप का आशीर्वाद, इंग्लैण्ड की कूटनीति, अमरीका का धन एवं बेल्जियम के पादरियों की सेना साथ है, वे ईसाईस्तान क्यों नहीं ले सकते? अतः ईसाइयों की सारी सेवा भारतमाता की हत्या के लिए षड्यन्त्र मात्र ही है।

भारतमाता के उन सभी सच्चे सपूतों को, जिन्हें भारत एवं भारतीयता से तनिक भी प्रेम है और जो भारतमाता की विडम्बना, विखण्डना या हत्या कभी नहीं चाहते, उन्हें विदेशी पादरियों के सेवा वाले कृत्रिम मुखौटों से भ्रमित न होते हुए, विवेक से काम लेना चाहिए तथा धिक्कार योग्य व्यक्तियों का सत्कार कर अपनी जड़ता, मूढ़ता एवं राष्ट्र के प्रति अपराधपूर्ण उपेक्षा का भोंडा प्रदर्शन नहीं करना चाहिये।



धर्म जीवन का वह अमर प्रकाश है जो लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता के लिए कल्याणकारी मार्गदर्शक ज्योति स्तम्भ है। अतः किसी सरल व्यक्ति को फुसलाकर धर्मच्युत करना सारी मानवता को कर्तव्य भ्रष्ट करने के समान महापाप है।

—प्रो. ओबराय

× × ×

स्वतंत्रता का मूल्य शून्य है, यदि राष्ट्रीय जीवन का हर क्षेत्र आध्यात्मिकता के स्पंदन और हिन्दुत्व के आदर्शों से विहीन है।

—डॉ. केशवराव बलीराम हेडगेवार



श्री मारखम एवं भारतीय संस्कृति

दैनिक प्रदीप दिनांक 21 जुलाई '66 में एवं कुछ अन्य समाचार पत्रों में रांची विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री ए.एम. मारखम के भारतीय कला संबंधी विचार प्रकाशित हुए। यूनियन क्लब हॉल, रांची में आयोजित कला प्रदर्शनी का उद्‌घाटन करते हुए उन्होंने कहा कि भारतीय कला विश्व कला की जननी है। यदि ये विचार वास्तव में श्री मारखम की आन्तरिक निष्ठा को प्रकट करते हैं तो अभिनन्दनीय हैं। किन्तु श्री मारखम की कथनी और करनी में आकाश-पाताल का अन्तर है।

1. उक्त भाषण में उन्होंने कहा कि विश्व भारतीय संस्कृति का ऋणी है। यदि सचमुच उनकी ऐसी निष्ठा है तो वे स्वयं भारत में पिछले 30 वर्षों से रहते हुए, भारत का अन्न-जल खाते, पीते हुए, भारतीय संस्कृति के भक्त क्यों नहीं बने? भारत के सांस्कृतिक महापुरुष हैं—राम और कृष्ण, भीम और अर्जुन, व्यास और वाल्मीकि। क्या श्री मारखम इन भारतीय सांस्कृतिक महापुरुषों को अपना आदर्श मानते हैं? स्पष्ट है कि श्री मारखम स्वयं आयरलैंड से आने वाले एक विदेशी पादरी हैं जो विगत 30 वर्षों से लगातार ब्रिटिश साम्राज्य के हस्तक बनकर हजारों-लाखों भारतीयों का ईमान लूटते रहे। भारत के बेटों को राम और कृष्ण के आदर्शों से उखाड़कर ईसा और मूसा का आदर्श सिखाते रहे। निश्चय ही ईसा-मूसा, लूकस या लूथर भारत के सांस्कृतिक महापुरुष कभी नहीं हो सकते।

2. भारतीय संस्कृति के भक्त को भारतीय महाकाव्य (National Epics) में एक जीवंत निष्ठा होनी चाहिए। मनु से महात्मा गाँधी तक, रामचन्द्र से रमण महर्षि तक एवं जेमिनी से जवाहरलाल तक सभी विचारकों का एक मत है कि भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण और महाभारत ही हो सकते हैं। क्या भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाले श्री मारखम ने भारत के इन राष्ट्रीय महाकाव्यों से जीवन की प्रेरणा ग्रहण की? वास्तव में श्री मारखम स्वयं भारतीयों की रामायण-महाभारत से निष्ठा उखाड़ने का कार्य जीवन भर करते रहे। निस्संदेह बाइबिल और कुरान भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य नहीं हो सकते।

3. इसी प्रकार श्री मारखम भारत के कौन से राष्ट्रीय महापर्व मनाते हैं? भारतीय दर्शन में उन्हें कितनी निष्ठा है? भारतीय वेश-भूषा के प्रति उन्होंने क्या आत्मीयता दिखाई है? भारतीय पद्धति से अभिवादन उन्होंने कब प्रचारित किया है? भारतीय संस्कृति के आदर्शों की रक्षा के लिए उन्होंने जीवन भर कब त्याग-तपस्या की है? इन सब सीधे प्रश्नों के उत्तर में श्री मारखम भारतीय संस्कृति के द्वेषी एवं संहारक ही प्रमाणित होंगे।

4. भारतीय संस्कृति का पूज्यतम मानचिह्न है—गाय। गोखले, गाँधी, तिलक, मालवीय, राजेन्द्र बाबू और विनोबा सभी ने गोरक्षा को स्वराज्य का प्रथम उद्देश्य घोषित किया था। श्री मारखम जी अपने भूतपूर्व कॉलेज (St. Colombus College, Hazaribagh) में सरस्वती पूजा पर प्रतिबंध लगा सकते हैं, सरस्वती पूजा की मांग करने वाले विद्यार्थियों को वस्तुतः पांव के नीचे कुचल कर निकाल सकते हैं और सरस्वती पूजा वाले दिन कॉलेज के मुसलमान विद्यार्थियों को गो-हत्या करने की खुली छुट्टी की बात कह सकते हैं। वे किस मुख से भारतीय संस्कृति की चर्चा करने का भी अधिकार रखते हैं?

5. उन्होंने कहा कि विश्व भारतीय संस्कृति का ऋणी है। क्या वे स्वयं भारतीय संस्कृति के ऋणी हैं? क्या विश्व में वे, उनका परिवार, उनका मिशन और उनका देश सम्मिलित नहीं है? क्या भारत के प्रति श्रद्धापूर्वक कृतज्ञ रहने के स्थान पर कृतघ्न बनकर ही ऋण चुकाया जा सकता है?

6. उन्होंने उक्त भाषण में कहा कि भारतीय ऋषियों ने अपनी योग साधना से भगवान की प्राप्ति की एवं अहिंसा, सेवा, दया तथा नैतिक आचरण का पाठ पढ़ाया। यदि यह बात सत्य है कि भारतीय ऋषियों ने योग साधना से भगवान की प्राप्ति की तो श्री मारखम भारतीय ऋषियों की संतानों को ऋषियों के बताये हुए पवित्र साधना के मार्ग से क्यों भ्रष्ट करते रहे हैं? यदि भारतीय ऋषियों के मार्ग से भगवान की प्राप्ति होती है तो भारतीय सन्तानों को किसी अन्य मार्ग की जरूरत क्यों है? एक ओर श्री मारखम यह कह रहे हैं कि भारतीय ऋषियों ने भगवान की प्राप्ति की थी, दूसरी ओर वे यह भी घोषित कर रहे हैं कि बिना ईसा की शरण में गये भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इन दोनों परस्पर विरोधी कथनों से प्रकट है कि श्री मारखम बौद्धिक ईमानदारी से काम नहीं ले रहे हैं और उनकी कथनी और करनी में बहुत बड़ा विरोध है।

7. भारतीय कला का बखान करते हुए उन्होंने कहा कि विश्व के अनेक नगरों में जो पुराने मंदिर, मस्जिद और गिरजाघर मिले हैं उन पर भारतीय वास्तुकला की अमिट छाप दिखाई पड़ रही है। वास्तव में भारतीय कला के स्वर्णिम काल में भारतीय कलाकारों ने समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया, समस्त उत्तर एवं

मध्य एशिया, मध्य-पूर्व एवं यूरोप, अमरीका तक भारतीय कला के संदेश को विशाल भवनों तथा गगनचुम्बी मंदिरों इत्यादि के माध्यम से विश्व के कोने-कोने में अवश्य पहुँचाया किन्तु आधे भूमण्डल की यात्रा तथा भारतीय कला के श्रद्धापूरित अध्ययन के उपरान्त भी मुझे कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिला, जहाँ भारतीय कलाकारों ने विदेशों में जाकर मस्जिदों तथा गिरजाघरों का निर्माण कर भारतीय वास्तुकला का आदर्श प्रस्तुत किया हो। भारतीय कला भारतीय संस्कृति का मौन-मुखर संदेश देती है। उसमें भारत की आत्मा का संगीत है। राम और कृष्ण, मनु और याज्ञवल्क्य, पराशर और अंगिरा का अमर संदेश है। उसमें श्री मारखम के कल्पनालोक के गिरजाघर नहीं हैं क्योंकि उनकी रचना का मूल भारत के सांस्कृतिक धरातल में अंकुरित-पल्लवित, पुष्पित एवं फलित नहीं हुआ।

श्री मारखम को चाहिए कि भारत एवं भारतीयता पर बोलने से पहले भारतीय संस्कृति का अमृत आकंठ पान करके तन-मन-प्राण से भारतीयता के रंग में रंग जावें। तभी उनके वचन का कुछ प्रभाव होगा।



'जब तब इस्लाम धर्म की लहर भारत में नहीं आई थी, तब तक यहाँ के लोग यह जानते तक न थे कि धार्मिक अत्याचार किसे कहते हैं। जब विधर्मी विदेशियों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार हुआ, तभी उन्होंने इसे प्रथम बार अनुभव किया।...संसार के सामने प्रचारक धर्म के रूप में सर्वप्रथम बौद्धधर्म ही आया और उस युग की सारी सभ्य जातियों में उसका प्रचार किया गया, पर उस धर्म के नाम पर कहीं एक बूंद रक्त नहीं गिराया गया।'

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

जो राष्ट्र अपने इतिहास से तथा भूगोल से मुंह मोड़ता है, उस राष्ट्र का विनाश अटल है।

—श्री वी.पी. मेनन



ईसाइयों द्वारा दुष्प्रचार

1. विदेशों से भारत आने वाले लोग भारत की कल्पना का जो चित्र मन में लेकर आते हैं, वैसा भारत में प्रत्यक्ष न देखकर, कई बार विपरीत दृश्य देखकर, वे निराश हो जाते हैं।
2. भारत के भीतर हम जो भारत की प्रतिष्ठा बनायेंगे, विदेशों में भी भारत की प्रतिष्ठा उसके अनुसार बनेगी। अतः भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा उसकी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है।
3. प्रत्येक प्रवासी भारतीय, जो विदेशों में रह रहा है, भारतीय संस्कृति का अशासकीय राजदूत है। उसका उच्च नैतिक आचरण भारत का मस्तक ऊंचा करेगा और उसका पवित्र जीवन सारे विश्व को प्रकाश से भर देगा।
4. कुछ देश भारत की आन्तरिक समस्याओं को अपने प्रेस एवं रेडियो पर बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं। ईरान व मध्यपूर्व के देश भारत में साम्प्रदायिक दंगों के मामूली समाचारों को खूब फैलाकर, अतिशयोक्ति की भाषा में प्रसारित करते हैं।
5. प्रत्येक देश की अपनी कुछ समस्याएं होती हैं। प्रत्येक देश की एक अन्तर्राष्ट्रीय मुखाकृति होती है जो अधिकांशतः दूसरों को दिखाने के लिये होती है। उस देश की एक भीतरी मुखाकृति रहती है जो दिखावटी मुखाकृति की अपेक्षा कम आकर्षक होती है। प्रत्येक देश के कुछ दुर्भाग्यपूर्ण एवं अप्रिय पक्ष भी होते हैं। किन्तु उस देश का मूल्यांकन करते समय उन गंदे तथ्यों को ही प्रमुखता से प्रदर्शित करना—सत्य के प्रति, इतिहास के प्रति एवं उस देश के प्रति अन्याय है। भारत के विषय में द्वेष रखने वाली ब्रिटिश महिला केथ्रेराइन मेमो की आलोचनापूर्ण पुस्तक के विषय में गाँधीजी ने लिखा था—उसने भारत की गंदी नालियों के भीतर से झांका था भारत को।
6. अमरीका में न्यूयार्क राज्य के लाक पोर्ट नगर में जिस घर में मुझे अतिथि रूप में ठहरने का अवसर प्राप्त हुआ उस घर के स्वामी रेव उल्लयू ई. डायकलर

वहाँ के प्रथम बैरिस्टर चर्च के मिनिस्टर (पादरी) थे। उनकी पत्नी श्रीमती मारथा डायकलर एक दिन रविवार के दिन चर्च से आते ही बोली, देखिये प्रो. ओबराय, आज हमने सण्डे बाइबिल स्कूल में Aid India Programme (भारत की सहायता का कार्यक्रम) चालू किया है। आज मैंने 1000 भारतीय बच्चों के लिये दूध संग्रह कर लिया है। मैंने पूछा, यह कार्यक्रम क्या है तथा बच्चों के लिये दूध कहाँ है? उसने कहा, हमने अमरीकन चर्चों की ओर से भारत की सहायता के लिये यह कार्यक्रम लिया है। हमने सारे अमरीका में सभी स्कूल-कॉलेजों, चर्चों, क्लबों में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। भारत के विषय में हमारे पास कुछ चित्र हैं। हम इन्हें Sunday Bible स्कूल में बच्चों को दिखाते हैं। अमरीकन बच्चे इन अभागे एवं अभावग्रस्त भारतीय बच्चों के चित्र देखकर उनकी सहायतार्थ सहयोग देते हैं और अमरीकन बच्चों में भारत के प्रति एक नकारात्मक छवि निर्माण होती है।

ये चित्र रेलवे प्लेटफार्म से, झुग्गी-झोंपड़ियों से, गंदी बस्तियों से संगृहीत किये जाते हैं और उन्हें ही बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रसारित किया जाता है जो नितान्त अनुचित है, दुर्भाग्यपूर्ण है, षड्यंत्र से प्रेरित है।



हिन्दुओं ने ईसा के इन चेलों का क्या बिगाड़ा है कि वे प्रत्येक ईसाई बच्चे को हिन्दुओं को 'दुष्ट-पतित' एवं 'पृथ्वी के सबसे भयंकर राक्षस' कहना सिखलाते हैं। यहाँ विद्यालयों में रविवारीय शिक्षा का अनिवार्य अंग बन गया है कि उसमें बच्चों को प्रत्येक गैर-ईसाई से विशेषकर हिन्दुओं से घृणा सिखाई जाती है ताकि वे अपने बाल्यकाल से ही इन ईसाई प्रचारकों को चन्दा देना सीख लें।

—स्वामी विवेकानन्द

सन् 1954 में हमारे देश में जस्टिस नियोगी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि उन्हें अपनी पड़ताल और साक्षियों में एक भी ऐसा धर्मान्तरित ईसाई नहीं मिला जो बिना किसी लालच-लोभ की प्रेरणा, ईसाई बना हो।



धर्मान्तरण, अपहरण एवं चर्बी काण्ड

धर्मान्तरण

आपने अपने प्रताप (इण्डिया) के सम्पादकीय में दिनांक 20-26 अगस्त '83 में एक तथ्यहीन एवं घिनौना आरोप लगाया है। आजकल कुछ राजनीतिक पार्टियाँ अपनी कुछ संस्थाओं द्वारा धर्मान्तरण के खिलाफ नारा लगा-लगा कर अच्छा धन कमा रही हैं और कुछ व्यापारी इनका भरपूर लाभ उठा रहे हैं। ये संस्थाएं दिन-प्रतिदिन फलती-फूलती जा रही हैं। विश्व हिन्दू परिषद् भी एक ऐसी ही संस्था है। वास्तव में विश्व हिन्दू परिषद् के निम्नलिखित संस्थापक मण्डल में न संघ का एकाधिकार था न ही किसी राजनीतिक पार्टी का और न किसी पूँजीपति का।

1. चारों पीठ के शंकराचार्य
2. स्वामी चिन्मयानन्दजी
3. डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
4. मास्टर तारासिंह
5. श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर
6. सन्त तुकड़ो जी महाराज
7. श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार
8. डॉ. सी. पी. रामास्वामी अय्यर
9. पूज्य दलाई लामा
10. जैन मुनि सुशील कुमारजी
11. स्वामी सत्यमित्रानन्दजी

दुर्भाग्य से आप धर्मान्तरण की घटनाओं को न जाँचते हैं तथा न उसकी गंभीरता को समझते हैं। धर्मान्तरण के कारण ही भारतमाता का दारुण विभाजन हुआ। धर्मान्तरण के कारण ही नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, गोआ, पांडिचेरी ईसाई बहुल क्षेत्र बन गये हैं जहाँ हिन्दू का सम्मानपूर्वक जीना अत्यन्त कठिन बन गया है। धर्मान्तरण द्वारा ही बंगाल के चार जिले तथा बिहार के तीन जिले, असम के तीन जिले, उत्तर प्रदेश के तीन जिले तथा केरल के तीन जिले मुस्लिम बहुल बन रहे हैं। देश के 24 अन्य जिलों में हिन्दू अल्प संख्या के कगार पर हैं। इतिहास की स्पष्ट चेतावनी है कि जहाँ हिन्दू घटा वहाँ हिन्दुस्तान मिटा; उस चेतावनी के प्रति आप जैसे प्रतिबद्ध पत्रकार आँख मूँद कर भोले बनने का नाटक कर रहे हैं तथा विश्व हिन्दू परिषद् राष्ट्रहित में देश को इस संकट के प्रति जागरूक कर रही है।

धर्मान्तरण के नारे पर धन कमाने वाले को धिक्कार!

क्या आपने सिमडेगा में अभी हाल ही में धर्मान्तरण की आँधी का आँखों देखा हाल जानने की कोई चेष्टा की? मैंने स्वयं उस रूखे क्षेत्र में घूम-घूमकर तथ्य एकत्र किए हैं तथा देश के प्रति कर्तव्यभावना से जनता को सूचना दी। यदि धर्मान्तरण का नारा लगाकर विश्व हिन्दू परिषद् ने या मैंने किसी से धन माँगा या धन कमाया हो तो कोई माई का लाल अपने कलेजे पर हाथ रखकर तथ्यों सहित सामने आवे।

विश्व हिन्दू परिषद् न व्यापारी के चंगुल में न मठाधीश के

विश्व हिन्दू परिषद् किसी व्यापारी के चंगुल में न पहले कभी थी न आज है और न आगे रहना चाहती है। व्यापारी भी हिन्दू समाज के अंग के नाते नम्रतापूर्वक यदि कुछ सेवा देना चाहें तो सेवा के द्वार सभी के लिए खुले हैं। किन्तु कोई यह न समझे कि संस्था उसके चंगुल में है या उसकी क्रीतदास बनकर कार्य करेगी। विश्व हिन्दू परिषद् के अधिकांश कार्यकर्ता मध्यम एवं निम्न मध्य वर्ग के हैं। वे अपने सीमित साधनों से संस्था का सदस्यता शुल्क देते हैं। विश्व हिन्दू परिषद् के रांची जिला अध्यक्ष के नाते मैं दावे से कह सकता हूँ कि हमारे जिले के कोष एवं प्रदेश कोष में अर्थ साधन का नितान्त अभाव है। 4-5 मास से पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं को मासिक निर्वाह राशि भी नहीं मिल सकी है। कौन पापी व्यापारियों से पैसा ठगकर फल-फूल रहा है यदि आपके पास सत्य का बल हो, आप जनता के हित में यह स्पष्ट घोषणा करें।

मठाधीशों का धन?

मठाधीशों का धन सार्वजनिक हित में लगे यह हमारा, विश्व हिन्दू परिषद् का निश्चित मत है। हम मठाधीशों के बड़े-बड़े सम्मेलनों में यह स्पष्ट घोषणा करते हैं कि यदि हिन्दू समाज ही अल्पमत हो गया तो मठाधीशों को कौन टिकने देगा? भगवान राम ने एक कुत्ते को भी न्याय दिया। इस कथा का मर्म सब मठाधीशों को समझाया जाता है कि जो जनता के दान पर केवल अपना ऐश्वर्य साधन करते हैं वे अगले जन्म में कुत्ते की योनि प्राप्त करते हैं। ढोंग सदा बुरा है चाहे धर्म का आडम्बर कर समाज को ठगा जाय, चाहे समाज हित का झूठा ढोंग कर किसी चरित्रवान व्यक्ति या पवित्र संस्था पर झूठा आरोप लगाया जाय। विश्व हिन्दू परिषद् विश्व भर के हिन्दुओं का हित साधन करती है, किसी पूंजीपति या मठाधीश का हितरक्षण बिल्कुल नहीं करती।

कोई हिन्दू अछूत नहीं

आपने लिखा है—'रांची में एक विद्वान हैं जो अपने आपको हिन्दू धर्म का रक्षक मानते हैं लेकिन ये ही जनाब जब आपात्काल में जेल में बंद थे तो साथी

कैदियों की तरह शौचालय की सफाई करने को तैयार नहीं हुए थे, क्योंकि वे इस काम को अछूतों का काम समझते थे। क्या उनसे हिन्दुओं का उद्धार संभव है? मेरे विचार से नहीं।' न जाने आपका संकेत किस व्यक्ति की ओर है। मैं विद्वान तो नहीं हूँ मैं अपने को हिन्दू धर्म का रक्षक न मानकर एक तुच्छ सेवक मानता हूँ। आपात्काल में जेल में शौचालय साफ करने की घटना तो मुझे पूरी स्मरण नहीं है, किन्तु कुछ बड़े झगड़ालु परस्पर ईर्ष्यालु, मछली के टुकड़ों पर मार-पीट करने वाले घटिया राजनीतिक लोगों ने एकादशी के दिन शौचालय साफ करने का ढोंग रचा। मेरे उपवास एवं अन्य वार्ड में सत्संग के कारण उस ढोंग में भाग लेना संभव ही नहीं था। मैं तो विगत 40-42 वर्षों से हरिजनों के संग रहने, उठने-बैठने, सत्संग करने एवं प्रसाद पाने का अभ्यासी हूँ। रांची में रविदास जयन्ती समारोह में विगत 18-20 वर्षों से लगातार मेरा शरीर सेवा एवं सहयोग में सदा अग्रसर रहता रहा है। हरिजन मुहल्ला, डोरण्डा में, हरिजन टोली बी. आई. टी. में सबसे अधिक लोकप्रिय सेवक मेरा शरीर ही है। संस्कृति विहार में विगत कई वर्षों से एक हरिजन आदेशपाल के हाथ का बना भोजन-पानी मैं सहर्ष ग्रहण करता हूँ तथा संस्था में आने वाले संतों-महात्माओं-अतिथियों को भी भेंट करता हूँ। मैं कभी भी हिन्दू हिन्दू में भेद नहीं मानता। वैज्ञानिक छुआछूत को डॉक्टर भी मानते हैं किन्तु रूढ़िगत-छुआछूत एक सामाजिक अपराध है।

हिन्दू बालिका का अपहरण

अपनी पत्रिका के पृष्ठ 9 पर आपने लिखा कि 'रांची के कुछ व्यापारी, जो तथाकथित साम्प्रदायिक संगठनों से जुड़े हुए हैं और उनका लगाव चर्बी काण्ड के अभियुक्तों से रहा है, ने एक घिनौनी चाल चली। साम्प्रदायिक संगठनों के नेताओं ने एक आई. ए. एस. अफसर की एक लड़की का मामला उठाने का प्रयास किया जो अपने मन से प्रेमी के साथ रहना चाहती है। वास्तव में किसी पत्रकार की चाल इससे अधिक घृणित या कुत्सित नहीं हो सकती कि वह बिना किसी तथ्य या प्रमाण के अपने मन के आरोप, अपशब्द किसी व्यक्ति या संगठन पर बरसाना प्रारम्भ कर दे। मैं दृढ़तापूर्वक पूछता हूँ—

1. वह कौन-सा आई. ए. एस. अफसर है?
2. उसकी पुत्री का नाम, अवस्था और पता क्या है?
3. उसके प्रेमी का क्या नाम, अवस्था और पता है?
4. पुलिस की प्राथमिकी और न्यायालय का केस क्या कहता है?
5. उसके इश्क का आपके पास क्या प्रमाण है अथवा जानकारी है?

ऐसे लेखन से लगता है कि पत्रकार की मिलीभगत से ही अवयस्क हिन्दू बालिका का मुस्लिम गुंडों द्वारा अपहरण हुआ होगा। गुंडे तो स्वयं को अपराधी

मानकर भागे हुए हैं किन्तु उसके पत्रकार वकील बड़ी निर्लज्जता से उसकी बेकार वकालत कर रहे हैं। प्रशासन को ऐसे पत्रकार को भी हिरासत में लेना चाहिए। साम्प्रदायिक कौन और राष्ट्रीय कौन—इस विषय में भी पत्रकार महोदय भ्रमित हैं।

साम्प्रदायिक कौन?

जो इस देश का मूल पुत्रवत् समाज है उसे साम्प्रदायिक कहने वाले और देश के विभाजन का षड्यन्त्र रचने वाले सम्प्रदायों को राष्ट्रीय मानने वाले पत्रकारों से भारतमाता की रही-सही प्रतिष्ठा भी नष्ट हो जायेगी। यदि इन्हें हिन्दू साम्प्रदायिक प्रतीत होता है तो वे पाकिस्तान, बांग्लादेश, आजाद काश्मीर या अफगानिस्तान में जाकर प्रताप (इण्डिया) का प्रकाशन करें। संभवतः हिन्दुस्तान में हिन्दू भावना से चिढ़ने वालों का उचित स्थान अहिन्दू-देशों में ही है।

चर्बी काण्ड?

चर्बी काँड को लेकर सदस्यों में विचार-स्वातंत्र्य हो सकता है जो स्वस्थ लोकतन्त्र का लक्षण है। किन्तु विश्व हिन्दू परिषद् के सदस्यों में इस काण्ड को लेकर कोई फूट नहीं तथा कोई भी खुलकर एक-दूसरे की आलोचना नहीं कर रहे। यह भ्रामक एवं निराधार प्रचार किसी कुत्सित दुराग्रह का ही लक्षण है।

कौन बदनाम?

आपने लिखा है कि विश्व हिन्दू परिषद् का कार्यालय गुप्तरूप से अपर बाजार में है, एक बदनाम संस्था है। आपके इस घृणित आरोप का क्या आधार है? किस संस्था के बम्बई कार्यालय में करोड़ों रुपये के वित्तीय घोटाले का पर्दाफाश हो चुका है। सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं की, किसी समाचार पत्र ने कुछ छापा नहीं और आप संस्था के चरित्रहनन की कुचेष्टा कर रहे हैं। आप जैसे पत्रकार को बड़ा संभल कर लेखनी चलानी चाहिए।



और सब धर्म आने-जाने वाले हैं, हिन्दू धर्म ही शाश्वत धर्म है।

—रामकृष्ण परमहंस

× × ×

हिन्दू धर्म भारत माता के प्रति शत प्रतिशत भक्ति का धर्म है। धर्म अथवा राजनीति के माध्यम से राष्ट्र वाह्य श्रद्धाएं राष्ट्र के प्रति द्रोह का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं। **—प्रो. ओबराय**



विदेशी पादरी निष्कासन महाअभियान

(भारत भर की सभी देशभक्त संस्थाओं का ऐतिहासिक राष्ट्रीय आन्दोलन)

अध्यक्ष : पूज्य स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती
(कमड़े आश्रम, ग्राम कमड़े, रांची)

संपर्क कार्यालय : संस्कृति विहार
(Academy of Indian Culture)
महावीर चौक, अपर बाजार (रांची)

'प्रत्येक देश का स्वाभिमान ही उसका जीवन होता है। विदेशी पादरियों द्वारा भारत की हजारों पुत्रियों को पापाचार, व्यभिचार एवं दासवृत्ति में विदेशों में बेचने की घटना भारत के आत्म-सम्मान के लिए एक भयंकरतम आघात है तथा भारत में धर्म के नाम पर विदेशी राजनीतिक षड्यन्त्र रचने वाले विदेशी पादरियों का यह कृत्य मानवता के इतिहास का क्रूरतम महापाप है। जिस देश में एक सीता के अपहरण से रावण की सोने की लंका को राक्षस-कुल सहित धूलि-धूसरित कर दिया गया, जहाँ एक द्रौपदी के तिरस्कार की घटना से विश्व का महानतम महासमर कुरुक्षेत्र रचा गया, आज उसी देश की हजारों पुत्रियों का इटली, जर्मनी, फ्रांस, हंगरी, इंग्लैण्ड, अमरीका आदि विदेशों में बेचा जाना, उन्हें वमन को चाटने के लिए बाध्य करना, उन्हें शारीरिक संत्रास देना, उन्हें आठ हजार असामान्य रूप से काम के भूखे युवकों के पागलखाने में धकेल देना, उन्हें रक्त का वमन होना, उन्हें वेश्या-वृत्ति के लिए बाध्य करना, इन भयंकर मानसिक आघातों से उनका विक्षिप्त होकर गूंगा हो जाना, इत्यादि ऐसे घोर राक्षसी कृत्य हैं जिनको कोई भी स्वाभिमान-प्रिय भारतीय सहन नहीं कर सकता।

हम प्रशासन से प्रबल मांग करते हैं कि इस गर्हित पाप के लिए उत्तरदायी सभी पादरियों को घोरतम दण्ड दिया जाय तथा देश में फैले हुए सभी विदेशी पादरियों के प्रवेश पत्र (वीजा) तुरंत निरस्त कर दिये जायँ ताकि कोई भी विदेशी पुनः भारत की ललनाओं का इस प्रकार तिरस्कार न कर सके तथा देश की प्रतिष्ठा का हनन न कर सके।

क्योंकि इस काण्ड के लिए वेटिकन (रोम) के पोप भी उत्तरदायी हैं, अतः हम यह भी मांग करते हैं कि पोप के साथ दौत्य सम्बन्ध तोड़ दिये जायँ तथा इनके नई दिल्ली स्थित राजदूत को तुरंत भारत से निकाल दिया जाय।

जिस प्रकार देश की स्वाधीनता के लिए सन् 1942 में महात्मा गाँधी ने विदेशी शासकों को ललकारते हुए 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का आह्वान किया, उसी प्रकार आज उस आन्दोलन के 28 वर्ष पश्चात्, गाँधी शताब्दी वर्ष में देश के आत्म-सम्मान की रक्षा एवं गाँधीजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि समर्पित करने हेतु इस 'विदेशी पादरी भारत छोड़ो आन्दोलन' को देशव्यापी स्तर पर चलाया गया है। यह देश भर के सभी धर्म-सम्प्रदायों, सभी जाति-उपजाति, दलों एवं संस्थाओं के करोड़ों स्वाभिमान-प्रिय देशवासियों की ललकार है, जिसे छोटानागपुर के प्रख्यात सिद्ध-योगी पूज्य श्री स्वामी पूर्णानन्दजी सरस्वती (महात्मा कमड़े बाबा) का अमोघ आशीर्वाद प्राप्त हुआ है।

यदि प्रशासन देश के आहत स्वाभिमान की इस हुँकार को अनसुनी कर विदेशी पादरियों को अविलम्ब भारत से निष्कासित करने के लिए कुछ ठोस सक्रिय पग नहीं उठाता तथा विदेशी पादरी युग की मांग एवं काल की मर्म-गति को पहचान कर स्वयं ही अपने-अपने स्वदेश को सकुशल लौट जाने की बुद्धिमत्ता नहीं दिखाते, तो भारतीय जन-गण के जिस जनाक्रोश रूपी ज्वार के सामने ब्रिटिश साम्राज्य तक डूब गया, उसके सम्मुख विदेशी पादरी अथवा उनके संरक्षक कभी भी नहीं टिक सकेंगे। यह भारतीय राष्ट्र का अटल संकल्प है।



यूरोपीय लोगों ने कब किसी देश का भला किया है? अपने से अवनत जाति को उठाने की उनमें शक्ति कहाँ है? जहाँ कहीं उन्होंने दुर्बल जाति को पाया नेस्तनाबूद कर दिया और उनकी निवास भूमि में वे खुद बस गए। वहाँ की मूल जातियाँ एकदम मटियामेट हो गयी। अमरीका का क्या इतिहास है? आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, प्रशान्त महासागर के द्वीपसमूह और अफ्रीका का क्या इतिहास है?

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

'जिस प्रकार प्रथम सहस्राब्दि में ईसाई मत की स्थापना यूरोप की धरती पर की गई थी, और दूसरी सहस्राब्दि में अमरीका और अफ्रीका की धरती पर, उसी प्रकार हम प्रार्थना करते हैं कि तीसरी सहस्राब्दि में इस विशाल एवं महत्त्वपूर्ण महाद्वीप में हम बड़े विस्तृत स्तर पर लोगों को अपने मत में परिवर्तित कर लेंगे।

—पोप जान पाल द्वितीय (सन् 1999 में भारत आगमन पर)



क्रिसमस तथा ईसाई मत?

यूरोप भी जो बन रहा है, आजकल मार्मिक-मना,
यह तो कहे उसके खुदा का पुत्र कब धार्मिक बना?
था हिन्दुओं का शिष्य ईसा, यह पता भी है चला,
ईसाइयों का धर्म भी है, बौद्ध साँचे में ढला।।

—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती पृ. 30)

'A number of Buddhist legends make their appearance in the Apocryphal gospels and are so obviously Indian in character that it can hardly be maintained that they were invented in Palestine or Egypt and spread thence Eastwards.'

—Sir Charles Eliot (Hinduism and Buddhism; P. 441)

'The Roman Church which declares itself to be the 'True Church' with the assumed authority from Christ Himself, is found to be following many of the cults and doctrines of Buddhism which prevailed many years prior to the birth of Christ.'

—The Catholic Tract Service, Hampankatta, Mangalore-1 (S. India)

'Two centuries before the Christian Era Buddhism closed in on Palestine.............Buddhism and Christianity in later years happen to be confused with each other. Manichaeism is a syncretism of Buddhist, Zoroastrian and Christian Views. Mohammed mixes up the legends of Christ and Buddha.'

—Dr. S. Radhakrishnan
(Eastern Religions & Western Thought, P. 158)

'The national Churches of Christianity constitute an open revolt against the gospel of Jesus.'

—Dr. S. Radhakrishnan (East & West in Religion, P. 67)

'I am beginning to understand from history that Christianity is not an independent Semistic growth but an outgrowth of Hindu religious thought and life.'

—**Dr. S. Radhakrishnan** (East & West, P. 79)

'There seems to be no doubt that the Church did borrow from Mithraism (मित्र पूजाः Sun worship) in fixing of Christmas day on December, 25th, the birthday of the Sun (मकर संक्रांति पर्व)

—**Edwyn Bevan**

(Christianity in the Light of Modern Knowledge, P. 103)

'Observe well this place that I show to you. You are now in the island of Crete. This is the land in which Christianity began. ...... I am one of the Therapeutae who used to live here........"Essene", the name of a sect of which Jesus, the Christ is said to have been a member.....The word Therapeutae unmistakably means Sons of the Theras (स्थविर पुत्रः)

(Life of Swami Vivekananda, P. 448)

'Much in Christianity is the mere application of new names and meanings to old pagan beliefs and customs.'

—**Swami Vivekananda,** (Complete Works, Vol. VIII, P. 25)

'तीसरी शती में मिस्र ने प्रथम बार 6 जनवरी को ईसा का जन्म दिन मनाया। रोम में ईसाइयत चौथी शती में पहुँची। उसके पूर्व वहाँ मित्र पूजा (सूर्य पूजा) प्रचलित थी। रोम के आदित्यालय से ऐतालय (Italia) शब्द बने। वहाँ प्रचलित मकर संक्रांति (25 दिसम्बर) के महापर्व को ही चौथी शती से क्रिसमस के पर्व के रूप में मनाया जाने लगा।'

—**प्रो. हरवंशलाल ओबराय** (आकाशवाणी वार्ता : 22.07.69)

'ईसा दो बार भारत आया, एक बार यौवन में शिक्षा प्राप्ति हेतु, दूसरी बार क्रूस से उतरने के बाद (जीवित किन्तु जख्मी)।'

—**आचार्य नरदेव शास्त्री** (कुलपति, गुरुकुल, ज्वालापुर)

'बाइबिल के अनेक उपदेश श्रीमद्भगवद्गीता से ही उधार लिए गये हैं।'

—**लोकमान्य तिलक** (गीतारहस्य)

धर्मान्तरण द्वारा धर्म पर डाका एवं राजनीति पर लगाम

1. धर्मान्तरण द्वारा 1666 वर्ष पूर्व सूर्यपूजक यूरोप को ईसाई बना दिया गया। रोम का सूर्यपूजक राजा काँस्टेंटाइन यूरोप का प्रथम धर्मान्तरित ईसाई राजा बना।
2. धर्मान्तरण द्वारा 486 वर्ष पूर्व शिव पूजक मैक्सिको एवं अमरीका के रेड इण्डियन्स को ईसाई बना दिया गया। पूरे कनाडा देश को भी ईसाई बना दिया गया।
3. धर्मान्तरण द्वारा आस्ट्रेलिया के प्रकृति पूजक वनवासियों को ईसाई बना दिया गया तथा वहाँ यूरोप की गोरी जातियों का शासन हो गया।
4. धर्मान्तरण द्वारा 458 वर्ष पूर्व दक्षिणी चीन समुद्र में स्थित महाकलिंग द्वीप-समूह को ईसाई बना कर स्पेन के राजा फिलिप के नाम पर फिलिपाइन नाम दे दिया गया।
5. धर्मान्तरण द्वारा भारत के नागा प्रदेश को नागालैण्ड नामक 'न्यू इंग्लैण्ड' बना दिया गया।
6. धर्मान्तरण द्वारा मिजोरम और मेघालय में भी ईसाई राज्य स्थापित हो गए।
7. धर्मान्तरण द्वारा शेष भारत को भी ईसाईस्तान में परिवर्तित करने का षड्यन्त्र चल रहा है। धर्मान्तरण से राष्ट्रान्तरण हो जाने का भय है।

   'यदि भारत को बचाना है, तो पादरी को भगाना है।'

27 मई 1979 में प्रकाशित

संस्कृति विहार, अपर बाजार, रांची

जगद्गुरु भारत पाश्चात्य देशों में प्रचारक भेजे

'....अरे वह नास्तिक कैसे!!' ज्यों ही वे विशाल भवन से निकले, एक व्यक्ति ने अचम्भे से कहा, 'और हम लोग उनके देश में प्रचारक भेजते हैं। इससे अधिक उपयुक्त तो यही होगा कि वे ही हमारे देश में प्रचारक भेजें।

—डॉ. एनी बीसेण्ट

(शिकागो धर्म-सम्मेलन में, स्वामी विवेकानन्द की झांकी, 1893)

भारत में पादरी भेजना मूर्खतापूर्ण

'वे (स्वामी विवेकानन्द) निस्सन्देह शिकागो धर्म सम्मेलन में महानतम विभूति हैं। उन्हें सुनने के पश्चात् हम अनुभव करते हैं कि इस ज्ञानवान राष्ट्र में ईसाई पादरी (मिशनरी) भेजना कितना मूर्खतापूर्ण है।'

—दि न्यूयार्क हेरल्ड

ईसाई पादरियों को स्पष्ट चेतावनी

'आप (पादरी) लोगों को शिक्षित और प्रशिक्षित करते हैं, उन्हें वस्त्र-विभूषित करते हैं तथा उन्हें वेतन देते हैं—यह सब किसलिए? क्या मेरे देश में आकर मेरे पूर्वजों को, मेरे धर्म को तथा मेरे देश की प्रत्येक वस्तु को गाली एवं अभिशाप देने के लिए? वे मन्दिर के निकट से गुजरते हुए कहते हैं, 'अरे मूर्ति पूजको! तुम सभी नरक में जाओगे।' परन्तु हिन्दू विनम्र होता है, वह हँसता है और यह कहता हुआ चला जाता है, 'मूर्खों को बकने दो।'

....और जब कभी तुम्हारे पादरी हम लोगों की आलोचना करते हैं उन्हें यह याद रखना चाहिए, यदि समस्त भारत खड़ा हो जाय और हिन्द महासागर के तल का सारा कूड़ा-कचरा लेकर पश्चिमी देशों के मुख पर फेंक दे, तो भी जो अत्याचार तुम हम लोगों के प्रति करते हो, उसकी तुलना में यह कार्य अणुमात्र भी न होगा।'

—स्वामी विवेकानन्द

(डिट्रायट में ईसाई पादरियों के प्रति)

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 317-318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कलकत्ता)

स्वार्थ एवं तलवार द्वारा धर्मान्तरण

'तुम्हारी सारी थोथी डींग एवं दर्प-वाचालता के उपरान्त भी तुम्हारी ईसाइयत बिना तलवार के कहाँ सफल हुई है? सारे संसार में मुझे एक भी स्थान तो दिखाओ, केवल 'एक', मैं कहता हूँ ईसाई धर्म के समस्त इतिहास में केवल एक उदाहरण दिखाओ; मैं दो नहीं चाहता। मैं जानता हूँ तुम्हारे पूर्वज किस प्रकार धर्मान्तरित हुए। उन्हें या तो धर्मान्तरित होना पड़ता अथवा मृत्यु के घाट उतरना पड़ता। यही अन्तिम निर्णय था। प्रत्येक वस्तु, स्वार्थ जिसका आधार है, प्रतिस्पर्धा ही जिसका दायाँ हाथ है और विलास ही जिसका लक्ष्य है, उसका विनाश आज या कल अवश्यंभावी ही है।'

—स्वामी विवेकानन्द

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कलकत्ता)



निष्काम कर्म गीता का ज्ञान
लोभ से धर्म पादरी की शान

× × ×

पश्चिमी देशों की सेनाओं के चार अंग है—थल सेना, जल सेना, वायु सेना और चर्च।

—श्री जे.सी. कुमारप्पा प्रख्यात गाँधीवादी ईसाई विचारक

× × ×

उपरोक्त सेना के प्रथम तीन अंग ही स्पष्ट दिखाई देते हैं किन्तु चर्च अपने स्वरूप के कारण उजागर नहीं होता। इस दृष्टि से तानाशाह स्टालिन ने चर्च को 'अदृश्य सेना' की संज्ञा दी थी। उसका अनुभव था कि 'चर्च' का सहयोग या विरोध भी विशिष्ट स्थितियों में अपना अर्थ रखता है।

× × ×

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानांच विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

(पंचतंत्र 3.192)

जहाँ अयोग्य का सम्मान हो, योग्य का तिरस्कार हो वहाँ तीन बातें—अकाल, मौत और भय है। (आज यही राष्ट्र में हो रहा है।)



डॉ. राधाकृष्णन उवाच

ईसाई कुप्रचार द्वारा भारतीय श्रद्धाओं पर भीषण आघात

'ईसाई धर्म प्रचारकों ने मुझे श्रद्धाहीन बनाकर जिज्ञासा की उस प्राथमिक अवस्था में डाल लिया जहाँ से सभी दर्शनों का जन्म होता है।.... वे रह-रह कर ईसाई विचार और जीवन पद्धति की भी दुहाई देते थे। किन्तु वास्तव में वे सत्य के प्रेमी या अन्वेषक नहीं थे। भारतीय विचारधारा की कड़ी आलोचनाएँ करके उन्होंने मेरी श्रद्धा को विचलित कर दिया और परम्परा के उन स्तम्भों को हिला डाला जिनका मैं सहारा लिए हुए था।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन
क्रिश्चियन कालेज मद्रास में विद्यार्थी जीवन के अनुभव
—फ्रैग्मेंट्स आव ए कन्फेशन

हिन्दुत्व का स्वाभिमान

'मैं भी हिन्दुत्व का अभिमानी था और मेरा यह अभिमान स्वामी विवेकानन्द के कर्तृत्व और उद्‌गारों से और भी प्रदीप्त हो उठा था। मिशनरी स्कूलों और कालेजों में हिन्दुत्व के प्रति जो बर्ताव किया जाता था उससे मेरा यह अभिमान तिलमिला उठा। मेरे लिए यह मान लेना अत्यन्त कठिन कार्य था कि हिन्दू ऋषि और उपदेष्टा, जिन्होंने हमारे युग के लिए भारत की इस प्राचीन संस्कृति के साथ जीवित सम्पर्क को सुरक्षित बना रखा है, जो कि हमारे अधिकांश ज्ञान एवं हमारी समस्त साधना का मूल स्रोत है, स्वयं वे (ऋषि) भी सच्चे धार्मिक व्यक्ति नहीं थे।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (माई सर्च फार ट्रुथ, पृष्ठ 5)

ईसाई आलोचक

'ईसाई आलोचकों की चुनौती से ही विचलित होकर मैं हिन्दुत्व का विधिवत् अध्ययन करके यह पता लगाने को प्रस्तुत हुआ हूँ कि हमारे धर्म का कितना अंश मृत और कितना आज भी जीवित है।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (माई सर्च फार ट्रुथ, पृ. 9)

वर्तमान ईसाइयत ईसा के विरुद्ध खुला विद्रोह

'ईसाइयत के राजनीतिक चर्च ईसा के सन्देश के विरुद्ध एक खुला विद्रोह हैं। ईसा की शिक्षा, जैसा पाश्चात्य देश मानते हैं, वह भी जनता द्वारा आत्मसात् नहीं की गई है।

चाहे चर्च के अधिकारी अपने धुंधले प्रकाश वाले गिरजाघरों की रंगीन शीशे वाली खिड़कियों में ईसा को सजावट की वस्तु के रूप में प्रयोग करने के लिए राजी हैं किन्तु यदि चर्च के चेलों में से कोई ईसा की शिक्षा को गम्भीरतापूर्वक मानने लग जाय तथा क्रिया में उतारने लगे तो वे घबरा उठते हैं।

इमर्सन (अमरीका के दार्शनिक) ने कहा था कि प्रत्येक Stoic (उदासीन) उदासीन ही है, किन्तु ईसाई मत में ईसाई खोजना दुष्कर है। नीत्से (जर्मनी के दार्शनिक) ने कहा कि संसार भर में केवल एक ही ईसाई था जो कि क्रूस (सूली) पर ही मर गया।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलिजन, पृ. 67-68

बल प्रयोग द्वारा धर्म प्रचार

यदि हम लोग यह समझते हैं कि दूसरों को क्षति पहुंचाकर भी बल प्रयोग द्वारा हमें अपने-अपने धर्म का प्रचार करने का इसलिए अधिकार है कि हमारा धर्म अन्य धर्मों से ऊँचा है, तो हम नैतिक आत्म विरोध के दोषी हैं क्योंकि अन्याय, अत्याचार और दासता तो अध्यात्मिक बुद्धिमत्ता और उच्चता के ठीक निषेध हैं। **—डॉ. राधाकृष्णन्**

× × ×

'मैं भारत में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण—सभी जगह घूमा, लेकिन पूरे भारत में मुझे एक भी भिखारी या चोर दिखाई नहीं दिया। भारत की समृद्धि व उच्च नैतिक मूल्यों को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी भारत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, जब तक कि हम भारत की रीढ़ की हड्डी अध्यात्मिक व सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर यह स्थापित न कर लें कि विदेशी व अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था भारत की शिक्षा-व्यवस्था से अधिक महान् है।

—लार्ड मैकाले

(2 जनवरी 1835 में ब्रिटिश संसद में वक्तव्य)

ईसाइयत का कर्तृत्व

निष्काम कर्म गीता का ज्ञान।
लोभ से धर्म पादरी की शान।
यदि निर्धन सेवा प्यारी हो
तो नीग्रो से नफरत क्यों है?
नीग्रो को गोली से मारें
भारत में सेवा पाखंड
मार्टिन लूथर किंग की हत्या
हिंसा घृणा की ज्वाल प्रचण्ड।।
ईसा प्रेम से नीग्रो वंचित,
भारत का जन बना शिकार।
अपने घर में घृणा जहर है,
यहाँ प्रेम का ढोंग प्रसार।।

धर्म का मूल्य तो है बलिदान
भात की प्लेट! घोर अपमान!!
श्रद्धा क्या है करो विचार,
मनः पटल पर शुद्ध संस्कार
या भात प्लेट पै फँसे शिकार?
निंदक पादरी को धिक्कार।।

यदि भूखा इनसान बिकेगा,
रोटी पर ईमान बिकेगा,
नैतिकता चीत्कार करेगी,
मनुष्यता हाहाकार करेगी।।

ईश्वर एक, और धर्म सत्य सब
क्योंकर सहन हो धर्मान्तरण तब?

बुद्धि हो तो विचार जरा हो
पेट भरा और हृदय मरा हो,
टुकड़ों पर ईमान छला हो,
भ्रष्ट क्यों प्रभु के धाम चला हो?
धर्मप्राण भारत भूमि में
धर्म हमें प्राणों से प्यारा
जो लालच से धर्म को छीने
वह पापी जन-मन-हत्यारा।।
यूरोप अमरीका कैनेडा आस्ट्रेलिया
सबको धर्मान्तरण के भूत ने खा लिया।
अफ्रीका एशिया में षड्यन्त्र जारी है,
बलि पशु बनने को भारत की बारी है।
भारत यदि अपने पौरुष में जागेगा
ईसाइयत का भूत एशिया से भागेगा।।
ईश्वर ईसा का बाप है
धर्म को ठगना पाप है।
धर्म स्वातन्त्र्य विधेयक प्यारा
सब को न्याय का मिले सहारा।
जो अन्याय से धर्म को लूटे
दण्डनीय हो वह हत्यारा।।
रिश्वत देकर लोभ की पूर्ति घोर भ्रष्टाचार है।
लालच देकर धर्म लूटना नीच व्यभिचार है।।
स्वेच्छा से जो धर्म को बदले
उस पर नहीं कहीं प्रतिबंध है।
छल, बल, आतंक, भय से धर्मान्तरण
पादरी होंगे जेल में बन्द।।
सूर्यपूजक यूरोप धर्मान्तरण से ईसाई बना।
शिवपूजक अमरीका धर्मान्तरण से ईसाई बना।

प्रकृतिपूजक आस्ट्रेलिया धर्मान्तरण से ईसाई बना।
महाकलिंग द्वीपसमूह ईसाइयत से फिलिपाइन बना।
भारत का नागा प्रदेश धर्मान्तरण से ईसाई बना।
मिजोरम-मेघालय ईसाई राज्य बन गये।
शेष भारत में चालू है ईसाईस्तान का षड्यन्त्र।
यदि भारत को बचाना है,
तो पादरी को भगाना है।।



भारत में ईसाइयों द्वारा धर्मान्तरण, ईसाई पंथ के प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने की एक-समान वैश्विक नीति का अंग है। इसका मूल प्रयोजन है कि इसके माध्यम से पश्चिम का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया जा सके। यह किसी आध्यात्मिक लक्ष्य से प्रेरित नहीं है। प्रत्यक्षतया उनका उद्देश्य यह है कि ईसाई बहुल क्षेत्र स्थापित किये जाएं, ताकि गैर-ईसाई समुदायों की एकता को भंग किया जा सके। इस दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य से जनजातियों के एक बड़े वर्ग का सामूहिक धर्मान्तरण राज्य की सुरक्षा के लिये एक भारी संकट का सूचक है।

—डॉ. बी.एम. नियोगी

विधि की विडम्बना

विधि की विडम्बना देखो। यूरोपवासियों के देवता ईसा मसीह ने सिखाया—'किसी से वैर मत करो, जो तुम्हें गाली दे उसे भी आशीर्वाद दो, यदि कोई तुम्हारे बाएं गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम उसकी ओर दाहिना गाल भी कर दो, सब काम-काजों को त्याग कर परलोक की तैयारी करो, क्योंकि संसार का अंत निकट है? इसके विपरीत हमारे कृष्ण गीता में कहते हैं, 'सदैव महान् उत्साह से कर्म करो, अपने शत्रुओं का विनाश कर संसार का भोग करो।' किन्तु अन्त में जो कृष्ण या ईसा मसीह चाहते थे, उसका बिल्कुल उलटा हो गया।

—स्वामी विवेकानन्द



प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री गाँधीजी का अरमान पूरा करें

विश्ववंद्य महात्मा गाँधी ने कहा था—

Object of Christian Missions

'The object of Christian Missionary effort in India is to uproot Hinduism from the very foundation and replace it by another faith....If I had the power to legislate, I should certainly stop all proselytising. I strongly resent these overtures to ignorant men.'

—Mahatma Gandhi

ईसाई मिशन का उद्देश्य

'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़ कर उसके स्थान पर एक दूसरा मत थोपना।

....यदि मेरे पास विधान बनाने की शक्ति होती तो मैं निश्चय ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति (ईसाई पादरियों के) इस प्रकार के (धर्मान्तरण के नीच) प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

—महात्मा गाँधी

महामान्य प्रधानमन्त्री महोदय,

आज आप गाँधीजी जैसे राष्ट्रभक्तों के तप-त्याग से प्राप्त स्वराज्य में राष्ट्र के योग्यतम कर्णधार तथा व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के सर्वोच्च नेता हैं। आप गाँधीजी के सुयोग्य शिष्य हैं। सौभाग्य से आज आपके पास विधान रचने की शक्ति भी है। क्या आप गाँधीजी के अरमानों को पूरा करेंगे ताकि देश के भीतर नागालैण्ड जैसे 'न्यू इंग्लैण्ड' तथा झारखण्ड में ईसाईस्तान के षड्यन्त्र रचने वाले भारत की छाती में छुरा न घोंप सकें? राष्ट्र का इतिहास आपके कर्तृत्व को इसी कसौटी पर परखना चाहेगा।

—राष्ट्र सेवा में सदा सर्वदा आपका ही,

संस्कृति विहार (Academy of Indian Culture), रांची

प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी गाँधीजी का अरमान पूरा करें

विश्ववंद्य महात्मा गाँधी ने कहा था—

Object of Christian Missions

'The object of Christian Missionary effort in India is to uproot Hinduism from the very foundation and replace it by another faith....If I had the power to legislate, I should certainly stop all proselytising. I strongly resent these overtures to ignorant men.'

—Mahatma Gandhi

ईसाई मिशन का उद्देश्य

'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़ कर उसके स्थान पर एक दूसरा मत थोपना।

....यदि मेरे पास विधान बनाने की शक्ति होती तो मैं निश्चय ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति (ईसाई पादरियों के) इस प्रकार के (धर्मान्तरण के नीच) प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

—महात्मा गाँधी

महामान्या प्रधानमन्त्री महोदया,

आज आप गाँधीजी जैसे असंख्य देश-भक्तों के तप-त्याग से प्राप्त स्वराज्य में राष्ट्र की वरिष्ठतम संचालिका हैं। आप स्वतंत्र भारत में न्यायपालिका एवं कार्यपालिका दोनों में अपना अन्यतम स्थान रखती हैं। आप गाँधीजी की राजनीतिक शिष्या एवं उत्तराधिकारिणी हैं। सौभाग्य से आपके पास विधान बनाने की शक्ति भी है तथा विधान के अनुसार कार्यपालन करवाने की शक्ति भी। क्या गाँधी शताब्दी वर्ष में आप गाँधीजी के अरमानों को पूरा करेंगी ताकि देश के भीतर नागालैण्ड जैसे 'न्यू इंग्लैण्ड' मिजोलैण्ड जैसे 'विद्रोही क्षेत्र' एवं झारखण्ड में 'ईसाईखण्ड' के षड्यन्त्र रचने वाले भारतमाता की छाती में छुरा न घोंप सकें?

राष्ट्र का भावी इतिहास आपके कर्तृत्व को इसी कसौटी पर परखना चाहेगा।

गाँधी शताब्दी पर मंगलकामनाएँ!

—राष्ट्र सेवा में सदा सर्वदा आपका ही,

संस्कृति विहार (Academy of Indian Culture), अपर बाजार, रांची

प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई गाँधीजी का अरमान पूरा करें

विश्ववंद्य महात्मा गाँधी ने कहा था—

Object of Christian Missions

'The object of Christian Missionary effort in India is to uproot Hinduism from the very foundation and replace it by another faith....If I had the power to legislate, I should certainly stop all proselytising. I strongly resent these overtures to ignorant men.'

—Mahatma Gandhi

ईसाई मिशन का उद्देश्य

'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़ कर उसके स्थान पर एक दूसरा मत थोपना।

....यदि मेरे पास विधान बनाने की शक्ति होती तो मैं निश्चय ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति (ईसाई पादरियों के) इस प्रकार के (धर्मान्तरण के नीच) प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

—महात्मा गाँधी

महामान्य प्रधानमन्त्री महोदय,

आप आज गाँधीजी जैसे राष्ट्र भक्तों के तप-त्याग से प्राप्त स्वराज्य में राष्ट्र के योग्यतम कर्णधार तथा व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के सर्वोच्च नेता हैं। आप गाँधीजी के सुयोग्य शिष्य हैं। सौभाग्य से आज आपके पास विधान रचने की शक्ति भी है तथा विधान के अनुसार कार्यपालन करवाने की शक्ति भी। क्या आप गाँधीजी के अरमानों को पूरा करेंगे ताकि देश के भीतर नागालैण्ड जैसे 'न्यू इंग्लैण्ड' मिजोरम एवं मेघालय जैसे विद्रोही ईसाईखण्ड तथा झारखण्ड में ईसाईस्तान के षड्यन्त्र रचने वाले भारतमाता की पीठ में छुरा न घोंप सकें?

राष्ट्र का भावी इतिहास आपके कर्तृत्व को इसी कसौटी पर परखना चाहेगा।

—राष्ट्र सेवा में सदा सर्वदा आपका ही,

संस्कृति विहार (Academy of Indian Culture), अपर बाजार, रांची

---

* अवैध धर्मान्तरण पर प्रतिबंध हेतु धर्म स्वातंत्र्य अधिनियम लागू हो।

मुस्लिम समस्या व निदान

मुस्लिम बन्धु भारत में नहीं रहना चाहते थे इसलिए भारत माँ का विभाजन किया गया, जनसंख्या के आधार पर। 23 प्रतिशत मुसलमान को 27 प्रतिशत भारत का हिस्सा काटकर दे दिया गया है। उनके रहने-खाने के लिए जब अलग हिस्सा दे ही दिया गया तब मुस्लिम बन्धुओं का यहां रहने का कोई आधार ही नहीं बचता है। न नैतिक आधार ही, न राजनीतिक। उन्हें रहने और अन्न उपजाने के लिए संख्या से अधिक हिस्सा दे दिया गया।

देश विभाजन, शरीर को काटकर जहर को अलग करने के लिए किया गया ऑपरेशन था। पर ऑपरेशन की मुश्किलातें भी झेलीं और जहर भी अन्दर बचा रह गया। यह कैसा ऑपरेशन?

मुस्लिम बंधुओं को अलग स्थान मिल जाने पर भी भारत में रह गए तो Visa (प्रवेश-पत्र) के आधार पर रहे। अधिकांश देशों में प्रथम में One week का visa फिर उनका व्यवहार अच्छा हो और पुलिस रिपोर्ट अनुकूल देखी जाती है तब एक महीने का, फिर 3 महीने का, फिर एक वर्ष का, फिर 7 वर्ष का, फिर Permanent Residence visa मिलता है। पर उसे नागरिकता नहीं मिलती है। अतः उसे कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होता। अतः राजनीति में वे कुछ भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। उनका व्यवहार अनुकूल नहीं रहा तो सरकार उन्हें देश छोड़ने का आदेश दे सकती है। कुछ देशों में तो एक साल visa में रहने के पश्चात् कम से कम सात दिन के लिए अपने देश में आना पड़ता है। फिर ही उस देश में visa के लिए दुबारा आवेदन कर सकते हैं। इस तरह उस देश से अपने देश में आने में हजारों रुपयों का खर्चा और समय की बरबादी होती है।

पहले अमरीका और इंग्लैण्ड में स्थायी पांच साल रह सकने के पश्चात् वहां की नागरिकता मिल जाती थी। पर अब वह नागरिकता देना वहां की सरकार ने बंद कर दिया है।

अमरीका और कनाडा में खाली भूमि पर खेती करने के लिए अन्य देशों से लोगों को आमंत्रित किया गया था। उस समय वहां जो हिन्दू जाकर बस गए उन्हें वहां की नागरिकता प्राप्त हो गई।

फिर जिन देशों में हिन्दुओं को कैदी या दास बनाकर खेती करवाने के लिए या मजदूरी करवाने के लिए ले जाया गया। उनकी कई पीढ़ियां हो गईं। उनको नागरिकता मिल गई हैं। वे देश हैं—फिजी (पूर्व), मॉरिशस (अफ्रीका), गिआना (द. अमरीका), सूरीनाम (द. अमरीका)। यहां शुरू में ये लोग अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए अपने साथ रामायण, गीता आदि धार्मिक ग्रंथ ले गए थे। मॉरिशस तो अब हिन्दू राज्य है। वहां 50 प्रतिशत से अधिक हिन्दू हैं। वहां की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है।

दूसरी तरफ हिन्दू की जनसंख्या का निरन्तर ह्रास हो रहा है और मुसलमानों की जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही है। U.N.O. के अनुसार 21वीं शताब्दी के पूरा होने तक हिन्दू अल्पसंख्यक हो जाएगा।

हिन्दू का दो या तीन बच्चे के बाद Red Cross यानी परिवार नियोजन। फिर हिन्दू एक ही शादी कर सकता है। पर मुसलमान को चार शादी की छूट है। परिवार नियोजन उनके लिए नहीं है। परिणाम, उनके चार बीवी से 16 बच्चे। फिर 16 से 256 बच्चे। इस तरह ज्यामितीय क्रम से मुसलमानों की संख्या बढ़ती जाती है। पर हिन्दू का तो 2 या 3 बच्चों पर परिवार नियोजन!

$2 \times 2 = 4$

$3 \times 3 = 9$ होगा वहां मुसलमानों की संख्या 256 पहुंच जाती है।

मुसलमान जोड़ और गुणा के द्वारा अपनी जनसंख्या बढ़ा रहे हैं। मुसलमान हिन्दू समाज का बेटा अपने में मिला लेता है। यानी अपने में जोड़ लेता है। हिन्दू समाज की बेटी चुरा लेता है तो उससे गुणन होने लगता है। इस प्रकार उनके जोड़ और गुणा के द्वारा उनकी जनसंख्या बढ़ रही है।

हिन्दू समाज Minus (-) और Division (÷) के द्वारा अपनी जनसंख्या निरन्तर घटा रहा है। कोई हिन्दू ईसाई या मुसलमान के साथ खा लेता है तो हिन्दू उसे जाति बहिष्कृत कर देता है। यानी Minus कर देता है। फिर अपने में जाति की जाति उनकी उपजाति फिर उनकी उपजाति.... इसी क्रम से अपने को विभाजित व असंगठित कर दुर्बल बना रहा है। अतः हिन्दू की दुर्बलता के दो प्रमुख चिह्न Minus और Division भी है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं—हिन्दू समाज से बाहर जाने के अनेक दरवाजे हैं और आने का एक भी दरवाजा नहीं। इस प्रकार निरन्तर संख्या में ह्रास और विभाजन। और फिर विभाजन का शिकार।

उर्दू राष्ट्रभाषा क्यों नहीं?

आज कई शताब्दियों के पश्चात् हमारी राष्ट्रभाषा बन्धनमुक्त हुई है। आज भारत के स्वातंत्र्य की सौभाग्यसन्धि पर जहाँ राष्ट्र के बाकी अंगों में नवजीवन स्फुरित हो उठा है वहाँ राष्ट्रभाषा के सुवर्ण सिंहासन से हमारी देववन्दिता दिव्य जीवनी भारती, भारतीय संस्कृति की किरीट कौस्तुभि, साहित्यसुधा की कला कुमोदिनी, दिव्य, भव्य, मधुर हिन्दी भाषा प्रत्येक भारतीय के लिये एक नूतन संदेश लाई है।

मातृभाषा, मातृ-भू से है जिन्हें नाता। धन्य है वह गण्य है वे मान्य है मुक्ति। आज भारत की भावी उन्नति का आधार मातृभाषा तथा मातृ-भू ही हो सकती है। राष्ट्र निर्माण के लिये निम्नलिखित अंगों की आवश्यकता है।

स्वदेश, संस्कृति, भाषा, स्फूर्ति केन्द्र एक हो,
स्वजाति के बने सभी फिर मत चाहे अनेक हो।

अन्यत्र कहा है—

These things can form a nation
Country culture civilisation
Common language, common race
Common source of inspiration.

हमारा गौरवशाली देश एक है। हमारी भव्य एवं उदात्त संस्कृति एक है। हमारे पवित्र स्फूर्ति केन्द्र एक हैं, हमारी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाएं एक हैं, हमारी वैभवशाली जाति एक है, हमारी दिव्य मातृभाषा एक है। अतः हम एक शास्त्रसिद्ध सुसंस्कृत राष्ट्र हैं।

कुछ एक स्वार्थी लोगों ने आज राष्ट्रभाषा का अपमान करने हेतु उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने का हीन विचार प्रकट किया है। पाकिस्तान का निर्माण जैसे राष्ट्रमाता के लिये घोर निरादर का हेतु सिद्ध हो चुका, वैसे ही उर्दू का प्रचार भी राष्ट्रभाषा भारती के लिये घोर निरादर का कारण बनेगा। राष्ट्रभाषा के लिये निम्नलिखित गुणों की आवश्यकता है—

(1) वह भाषा उस देश की परम्परागत संस्कृति की परिचायक हो।

(2) उस भाषा को उस देश का प्रत्येक नागरिक सुगमता से लिख-पढ़, बोल तथा समझ सके।

(3) वह भाषा व्याकरण की कसौटी पर खरी उतरे।

(4) उस भाषा के पठन-पाठन में स्वदेशाभिमान तथा सांस्कृतिक गौरव जागृत हो।

(5) उसका साहित्य विकासोन्मुख तथा सर्वांगपूर्ण हो।

(6) उसके कोष में वृद्धि का सामर्थ्य हो?

(7) वह भाषा प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक हो एवं अन्तरराष्ट्रीय भाषाओं में विशेष स्थान रखती हो। आइये, परीक्षा स्थल में उतरिये—

उर्दू को राष्ट्रभाषा स्वीकारने में हम तनिक भी न घबराते यदि कही उपर्युक्त सप्त विशेषताओं में से एक भी विशेषता उसमें होती और यदि उनमें से एक भी न होने पर भी कोई उर्दू की रट लगाता है तो वह केवल अल्पबुद्धि का प्रमाण देता है। बड़े खेद का अवसर है कि कई बड़े उत्तरदायी व्यक्ति भी उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने के इस प्रयास में अपने तथ्यहीन तर्कों के बदौलत अपने राष्ट्रीय दायित्व को तिलांजलि दे रहे हैं।

यदि तनिक विचारें कि उर्दू का भारतवर्ष की संस्कृति तथा राष्ट्रीय परम्पराओं से कितना सम्बन्ध है? उत्तरदाता के मुख को लगाम लग जायेगी। भारतीय संस्कृति भगवान् राम-कृष्ण की संस्कृति है, वह भीम तथा अर्जुन की संस्कृति है, वह हर्ष और अशोक की संस्कृति है, वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य की संस्कृति है, वह राणा प्रताप और शिवाजी की संस्कृति है, वह गुरु गोविन्दसिंह और बंदा वैरागी की संस्कृति है, वह विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ की संस्कृति है, वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पं. मदनमोहन मालवीय की संस्कृति है, वह लोकमान्य तिलक-गाँधी की संस्कृति है। वह सच्चे भारतीयत्व की परिचायक है।

उर्दू बोलते मुख से मानो औरंगजेब अथवा पुर्खरू सैयर की आत्मा बोल रही है। ऐसा भास होता है। उर्दू को राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बैठाने का निष्फल प्रयास करने वाले भारतीय संस्कृति से प्रेम नहीं रखते, उन्हें राम-कृष्ण का वंशज कहलाने में गौरव बोध नहीं, वे गौरी तथा तैमूर को भारत का महानायक मानते हैं। मुझे समझ में नहीं आता कि राष्ट्रमाता की वात्सल्यपूर्ण शीतल गोद को त्याग कर वे उर्दू की गोद में बैठकर कौन-सा सुख अनुभव करते हैं।

उर्दू भाषा का भारतीय संस्कृति से कितना विच्छेद है इसके अनेकानेक प्रमाण हैं। हम प्रायः उर्दू में एक मुहावरा प्रयुक्त करते हैं, 'रुस्तमे-हिन्द, हम यह शब्द

बोलते हुए एकदम रुस्तम के प्रति आदर भावना मन में लाते हैं। यदि वह इतना ही वीर था तो अपने लड़के से क्यों हार गया? रुस्तमे-हिन्द के स्थान पर भारत भीम का प्रयोग पर्यायवाची होते हुए भी उर्दू अपना इस्लामी रंग दिखाये बिना नहीं रहती। उर्दू वालों का रुस्तम से प्यार स्वाभाविक है। ऐसे लाखों रुस्तमों को हमारा एक भीम जंघा पकड़कर चीर डालता है अथवा बगली में जकड़कर मसल डालने में सर्वथा समर्थ है। ऐसे ही एक उर्दू के पक्षधर ने रामायण का हिन्दुस्तानी में (जो उर्दू का ही प्रच्छन्न रूप है) अनुवाद किया। उसमें नवाब राम तथा बेगम सीता के प्रयोगों ने उर्दू का सांस्कृतिक रूप प्रकट कर दिया है। आगे चलकर महर्षि वसिष्ठ को मौलवी वसिष्ठ। महाराजा दशरथ का वर्णन इतना निकृष्ट है कि कोई भी भारतीय पढ़कर जले बिना न रहे। शाह दशरथ की टांगें कब्र में थी इसलिये उसने नवाबजादे राम को तख्त देकर खुद जंगलों में रोजे रखकर खुदा की इबादत करने का मनसूबा बाँधा, आदि।

भारतीय के लिये ऐसी भाषा को पढ़ना अथवा सुनना कितना लज्जास्पद है। जहाँ कब्र शब्द भी अभारतीय है, कब्र में टांगें होना भारतीय संस्कृति के सर्वथा विपरीत है। फिर राष्ट्रनिर्माता तथा भारतीय संस्कृति के मर्यादा स्तम्भ श्रीराम के पिता के विषय में ये शब्द प्रयुक्त करना कितना अनुचित है। हमारे पड़ोस में एक सिक्ख परिवार रहता था। घर की स्त्री का एक 6-7 वर्ष का बालक मदरसे में पढ़ता था। एक दिन मैंने उस बच्चे को अपने पिता को अब्बाजान बुलाते सुना। मैंने हँसकर टाल दिया, फिर माता एक दिन सबक पढ़ा रही थी। उस पुस्तक का पहला पाठ था—माँ बच्चे को गोद में लिये हुए बैठी है और बाप सामने बैठे हुक्का पी रहा है....आदि। उसकी माँ भी गाँव के स्कूल में पढ़ी थी जहाँ एक मौलवी लड़के-लड़कियों को इकट्ठा पढ़ाता था। उसने भी यही कुछ पढ़ा था। उसे कलमा-नमाज आदि जबानी याद थे। उस पर ऐसे संस्कार पड़े हुए थे कि अपने बच्चे को 'बाप हुक्का पी रहा है' यह पढ़ाती हुई तनिक भी नहीं लजाती थी। यह है उर्दू का सांस्कृतिक प्रमाण। उर्दू को राष्ट्रभाषा मानने पर भारत भारत नहीं रह सकता, यह मेरा अटल विश्वास है। क्योंकि परिवारों में इसका प्रभाव देखने को मिल रहा है तथा राष्ट्र में इसका प्रभाव उतने गुणा बढ़कर रहेगा यह सर्वदा सत्य है।

उर्दू भारतीयता के सर्वथा विपरीत है। आज तक हमारे नारी समाज में प्राचीन परम्पराओं के प्रभावस्वरूप कुछ पातिव्रत्य धर्म बच पाया है। चाहे संसार तथाकथित भौतिक प्रगति की ओर जा रहा है तथा स्त्री को लोक-लाज आदि छोड़ लेडी बनाकर होटलों की हवा खिलाना एक फैशन है फिर भी भारतीय संस्कृति हमें सीता-सावित्री का उज्ज्वल आलोक मार्ग दिखा रही है। किन्तु उर्दू की दशा खून के आँसू बहाने वाली है। उर्दू का अधिकांश साहित्य अश्लील नृत्य, मदिरा-कोठों

पर होने वाली महफिलों में सिमटा हुआ है। क्या ऐसा साहित्य, ऐसी भाषा राष्ट्र को अपना उचित सम्मान दिला पाने में सक्षम हो सकती है? क्या ऐसी भाषा को अपने देश की राष्ट्रभाषा बनाना हमारे लिए गौरव की बात हो सकती है?

आप स्वयं ही बतलाएं। ऐसी भाषा को एक स्वतन्त्र देश की राष्ट्रभाषा बनाना हमारे लिए कितने गौरव की बात होगी।

अब उर्दू की सुगमता को ही लीजिये। एक दिन हमारे मास्टर साहेब ने शब्द बोला—तवारीख। एक छात्र ने कहा कि ठीक उच्चारण तारीख है। इस पर मास्टर साहेब चकरा से गये। आधा घंटा सोच-विचार होता रहा किन्तु निश्चित हल नहीं हुआ, सोचा कि चलो किसी मौलवी से पूछेंगे। बात मामूली है। किन्तु आज जिस भाषा के मामूली उच्चारण के लिये मौलवी को प्रमाण माना जाता है कल उसी भाषा में क्लिष्ट तथा श्लिष्ट शब्दों के लिये, व्याख्या के लिये यदि अरब और ईरान के साहित्यकारों की आवश्यकता पड़े तो यह कोई अचम्भे की बात नहीं है। जन्म के पश्चात् एक दिन का बच्चा भी यदि अपने मुख से कुछ सर्वप्रथम उच्चारण करता है तो ॐ। इसलिए ईश्वर ने भी कहा है 'अक्षराणाम् अकारोऽस्मि' अक्षरों में मैं 'अ' स्वर हूँ। बच्चा रोते अथवा बोलते हुए नागरी के सारे स्वरों का अभ्यास अपने जीवन के पहले दिन ही कर लेता है। अ आ इ ई उ ऊ इत्यादि। क्या संसारभर का कोई बच्चा जन्म लेने के समय अपने मुख से अलफ, बे, पे; इत्यादि बोलता है? कदापि नहीं। भाषा के प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक नहीं होने का यह भारी प्रमाण है। उर्दू भाषा के उच्चारण एवं लेखन में कोई साम्य नहीं है। अलिफ को जिस प्रकार लिखा जाता है वह कदापि वैज्ञानिक नहीं है। पढ़ने वाला बच्चा भी चकित हो जाता है लेकिन उसे करना वही पड़ता है जो उसके मौलवी या शिक्षक उसे बताते हैं। दुनिया में ऐसी कोई भी भाषा नहीं है जो दाएं से बाएं की ओर लिखी जाती है। क्या अपनी भाषा को एक विशिष्ट रूप देने की विकृत और अवैज्ञानिक सोच नहीं है? संसार की सर्वभाषाओं से विचित्र, उलटी ओर से लिखी जाने वाली, उच्चारण-लेखन तथा सबमें अधूरी, अवैज्ञानिक तथा अप्राकृतिक, कोष में कंगाल तथा साहित्य में भिखारी, भारतीयत्व की आमूल वैरिणी उर्दू भाषा विश्ववंद्य भारतीमाता का स्थान ले सकेगी, यह विचार भी अति हास्यास्पद है।

भारत के एक महापुरुष को अमरीका में English में चिट्ठी लिखते हुए देखकर एक Lady ने कहा Have you got no language of your own? इस पर उसका सिर लज्जा के मारे गड़ गया।

आज स्वतन्त्र भारत में उर्दू को अपनाकर संसार में किसको मुँह दिखा सकेंगे? क्या भारत में मुस्लिम आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम के आने के

पूर्व भारतवर्ष नाम का कोई देश नहीं था? अथवा यहाँ कोई राष्ट्रभाषा ही नहीं थी? जब हजरत साहब का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय भारत ने अपने दिव्य सन्देश से संसार को आलोकित कर दिया था। सकल विश्व में भारत की जय-जयकार हो उठी थी। क्या आज घर में विमाता के घुस आने पर माता को दुत्कार देंगे? क्या आज उर्दू के प्रवेश पर हमारी गौरवदायिनी, ज्ञानदायिनी, प्राणदायिनी, प्रेमदायिनी, नस-नस की संजीवनी हिन्दी माता का राष्ट्रभाषा का सिंहासन छिन जायेगा? कदापि नहीं। हे जननी! जब तक हम तेरे कोटि-कोटि सुत जीवित हैं, जब तक हमारी नसों में प्रवाहित होने वाले रुधिर में गीता का ज्ञान तथा सामवेद का गान गूंज रहा है, जब तक रामायण तथा महाभारत की संस्कृति में पला हुआ एक भी बच्चा जीवित है तब तक हे माता! हम तेरे चरणपुजारी स्वदेशानुराग भरे हृदय सुमनों से तेरी अर्चना करते रहेंगे।

यह उर्दू आन्दोलन नहीं, अपितु मुस्लिम आन्दोलन है। उर्दू कोई भाषा थोड़े ही है। जिसकी अपनी लिपि नहीं, व्याकरण नहीं, वह कैसी भाषा? उर्दू की तो आड़ मात्र है उसके पीछे तो अराष्ट्रीय व विघटनात्मक तत्त्वों का षड्यन्त्र है कि किसी भी प्रकार से दूसरे पाकिस्तान की मांग उठायी जाए। यदि इस तथाकथित उर्दू आन्दोलन को सख्ती के साथ नहीं दबाया गया तो देश के सम्मुख भीषण खतरा उत्पन्न हो जाएगा।

—गुरुजी (माधवराव सदाशिव गोलवलकर)

मुसलमानों की भारत-विजय सम्भवतः विश्व की सर्वाधिक रक्त-रंजित घटना है।

विश्वप्रसिद्ध अमरीकन इतिहासकार **विल डूरेन्ट**

प्राचीनतम मुसलमान इतिहासकार फरिस्ता के मतानुसार इस देश में मुसलमानों के प्रथम आगमन के समय यहाँ हिन्दुओं की संख्या 60 करोड़ थी अब हम बीस करोड़ में उतर आये हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

सर यदुनाथ सरकार ने कहा था—

विकार मुस्लिम राजनीति में है, क्योंकि इसके अनुसार मुस्लिम राज्य में एक ही धर्म मानने वाले रह सकते हैं। काफिरों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। केवल नीच टहल करते हुए खिराज गुजार के रूप में मुसलमानों की सेवा के लिए ऐसे काफिरों को जिम्मी कहा जाता है, उन्हें समानता के अधिकार नहीं दिए जाते।

—सर यदुनाथ सरकार

आज भी ऐसे लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं कि वे (हिन्दू व मुसलमान) कभी भी मिल कर एक हो सकेंगे? शताब्दियों तक साथ रहने के बाद भी उस पर पुल न बन सका।

—रमेशचन्द्र मजूमदार

जिस धर्म के अनुयायियों को यह शिक्षा दी जाती है कि लूटमार और मानव हत्या ही उनका प्रधान धार्मिक कर्तव्य है। वह धर्म किसी भी प्रकार मानव-उन्नति तथा संसार की शांति के लिए हितकर नहीं हो सकता है।

—यदुनाथ सरकार-औरंगजेब, पृष्ठ सं. 187

सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक, चिंतक आचार्य धर्मपालजी कहते हैं— 'इस्लाम का घोषित लक्ष्य दारुलहर्ब का विध्वंस और विनाश कर सम्पूर्ण विश्व में दारुल इस्लाम प्रस्थापित करना है।' सम्भवतः इसी कारण महात्मा गाँधी को भी यह कहना पड़ा था कि 'इस्लाम की सदियों से साम्राज्य विस्तार की परम्परा रही है। आचार्य धर्मपाल ने इस विषय में भारतीय मनीषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है—विश्व के ऐसे समूहों, समाजों, आदर्शों आदि के उदय व विस्तार के बारे में भारतीय मनीषा सदैव प्रायः अनजान बनी रही जो दूसरे समाजों का विध्वंस कर या पूर्ण अधीन बनाकर उन्हें अपने अनुरूप रूपांतरित करना अपना परम पुरुषार्थ या कर्तव्य मानते हैं और इसी में जीवन का वैभव देखते हैं।

यदि हो मूर्खता में विश्वास, मिलेगा जनगण को संत्रास।

—डा. राधाकृष्णन्

अगर अमीन खिराज में काफिर (हिन्दू) से चांदी मांगे तो उसे सोना देने को तैयार रहना चाहिए। यदि वह काफिर के मुंह में थूकना चाहे तो उसे अपना मुंह खोल देना चाहिए। काफिरों को लूटने, उन्हें दण्ड देने और मारने की आज्ञा अल्लाह ने मुसलमान शासक को दी है। ऐसा करके वह इस्लाम की सेवा करता है जो अल्लाह का ही कार्य है, अतः इसके लिए मुसलमान को कयामत के दिन कोई सजा नहीं मिलेगी।

—जियाउद्दीन-बरनी-तारीख-ए-फीरोजशाही

1576 ई. में हल्दी घाटी के प्रसिद्ध युद्ध में अकबर कालीन लेखक अब्दुल कादिर बदायूंनी भी युद्ध में आया। उसने आसिफ खां से पूछा—हमारी तरफ भी राजपूत सैनिक और राणा की सेना में भी राजपूत सैनिक हैं। दोनों ओर के राजपूतों की वेशभूषा, चाल-ढाल सब एक से हैं। युद्ध जब घमासान हो रहा होगा तो हम कैसे पहचानेंगे कि कौन-सा राजपूत अकबरी लश्कर का है कौन-सा राणा प्रताप

के लश्कर का? इस पर आसिफ खां ने कहा—'चाहे जिधर का राजपूत मारा जाय, फिक्र न करना क्योंकि मारा तो 'काफिर' ही जायगा।' इस पर बदायूंनी (मन्तखब-उन-तवारीख में) लिखता है आज मुझे मुल्ला शीर की पंक्तियों का अर्थ समझ में आया—

तलवार किसी की हो वार तो इस्लाम का ही होगा।

—डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव-मुगल साम्राज्य

औरंगजेब बलवान और प्रतापी बादशाह था। उसके समय में इस्लाम की सुयश पताका बहुत ऊंचे पर पहुँच गई। कुफ्र और ईमान के संघर्ष में वह हमारे तरकस में (आखिरी) तीर था। जब नास्तिकता का नापाक बीज, जिसका पालन अकबर ने किया था, दारा के हृदय में अंकुरित हुआ, तो धर्म की ज्योति मंद पड़ने लगी। तब खुदा ने धर्म-रक्षा के लिए आलमगीर को खड़ा किया। उसकी तलवार ने पाप और अपवित्रता की फसल में आग लगा दी और धर्म की मशाल फिर प्रज्वलित हो उठी। मिली-जुली संस्कृति दारा के साथ समाप्त हो गई।

—डा. इकबाल

यदुनाथ सरकार और डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव जैसे उच्च कोटि के इतिहासकारों ने लिखा है—'हिन्दू अपने घर (मातृभूमि) में ही पराया हो गया था। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विद्वान् प्रोफेसर डा. हबीब को लिखना पड़ा—'यह इस्लाम का दुर्भाग्य है कि भारत में उसका परिचय ऐसे लोगों के द्वारा हुआ जो क्रूर, हिंसक, रक्तपात-प्रिय और विध्वंसक थे। मुहम्मद बिन कासिम से लेकर मोहम्मद गौरी तक इसी प्रकार के लोग थे। इस्लाम यह आज्ञा नहीं देता कि विभिन्न धर्मावलम्बियों का कत्ल किया जाए और देवालय तोड़े जाए।'

भारत ही नहीं अपितु विश्व के उदारतम महापुरुषों ने इस्लामानुयायियों की इन महाविनाशकारी करतूतों पर हार्दिक दुःख व्यक्त किया है।

मुसलमान मात्र की दृष्टि में अरब और ईरान ही इस्लाम के असली देश थे। भारत के मुसलमान मन से सपना अरब और ईरान का ही देखते थे। हिन्दुस्तान उनके शरीर का घर था, आत्मा का घर अरब और ईरान था।

—रामधारीसिंह दिनकर (संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ सं. 472)

'मेरे मौला बुला ले मदीना मुझे'।

यह मुसलमानों की आन्तरिक कामना है। मुसलमान भारत भूमि को नापाक समझते हैं इसलिए अपने देश का नाम 'पाकिस्तान' रखा। भारत की भूमि उनके

लिए पवित्र नहीं है, उनके उत्सव पालन के योग्य नहीं है। जिस भूमि पर उत्सव पालन करते हैं उसे पहले अरबवासी को बेचते हैं। फिर वह अरबवासी उन्हें दान में देता है तब वह भूमि उनके उत्सव पालन के योग्य, पवित्र होती है उसके पूर्व नहीं।



आम मुसलमान गुंडा है और आम हिन्दू कायर है। और जब तक दुनिया में कायर रहेंगे, तो गुंडे भी रहेंगे। **—महात्मा गाँधी**

× × ×

महमूद गजनवी ने जो हीन, जंगली और असंस्कृत कृत्य किये क्या उनके बारे में यहां के मुस्लिम गर्व का अनुभव करते हैं। ऐसा है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके लिए भी यह हानिकारक है। गजनवी ने जो किया था, बहुत बुरा किया था। इस्लामी राज में जो बुराइयां हुई हैं उन्हें मुसलमानों को समझना और कबूल करना चाहिए। गुनाह कबूल करने से हलका होता है। भारत में बैठकर मुसलमान अगर अपने लड़कों को सिखायें कि गजनवी को आना है तो उसका मतलब यह हुआ कि वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और हिन्दुओं को खा जाओ। इसे कोई बर्दाश्त करने वाला नहीं है।

—महात्मा गांधी

× × ×

पठान एवं मुस्लिम बन्धु! पाणिनि और यास्क का वंशज है, पर चूंकि वह मुसलमान है, इसलिये वह हिन्दू नहीं है। इनके पूर्वजों ने वैदिक साहित्य के अनमोल अंशों का सम्पादन किया था, परन्तु चूंकि वह मुसलमान है इसलिये उसके लिये वह साहित्य कुफ्र है।

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी



श्रीलंका, इस्लाम से पूर्व अरब धर्मान्तरण एवं शुद्धीकरण

न्यू रीपब्लिक (रांची) समाचार-पत्र ने 22 मई, 1982 अंक में मेरे विश्व हिन्दू सम्मेलन कोलम्बो में भाग लेने पर लेख लिखा था। इसी प्रकार इण्डियन एक्सप्रेस और टाइम्स ऑफ इण्डिया में भी कुछ लेख लगभग 3 सप्ताह पहले प्रकाशित हुए थे।

श्रीलंका—मुझे पिछले 3 मास में दो बार श्रीलंका जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मध्य फरवरी से मध्य मार्च तक मैं वहाँ के मुख्य विद्यालय, संग्रहालय और कई सांस्कृतिक संस्थानों में सांस्कृतिक विचार-विमर्श के लिये गया। पुनः मध्य अप्रैल से मई '82 (प्रथम सप्ताह) तक मुझे श्रीलंका शासन ने कुछ शोध-पत्र पढ़ने और हिन्दू संस्कृति विषय पर एक प्रदर्शनी आयोजित करने के लिये निमन्त्रण दिया था। इस सफल अभियान के लिये मैं प्रभु का बहुत आभारी हूँ।

इस्लाम से पूर्व अरब—हिन्दू भारतीय दर्शन का विद्यार्थी होने के नाते यूनेस्को ने मुझे कई देशों, जिनमें मुस्लिम और ईसाई देश भी हैं, की यात्रा एवं भाषण के लिये आमन्त्रित किया था। मेरे कई मुस्लिम एवं ईसाई विद्वानों के साथ बहुत मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं। मैंने इस्ताम्बुल के विश्वविद्यालय और जर्मनी एवं तुर्की के पुस्तकालयों में शोध के आधार पर इस्लाम से पूर्व अरब पर लेख पढ़ा था जो विश्व हिन्दू सम्मेलन में उत्कृष्ट पाया गया। मैं वहाँ के प्रेस, पत्रकार भाइयों, विद्वानों का मेरे बारे में मधुर शब्दों के लिये आभारी हूँ। मैं पाठकों से प्रार्थना करूंगा कि वे एक ग्रन्थ Saiyur-Okul सेअरुल-ओकुल जो Maktabe Sultania Istanbul (turkey) में उपलब्ध है, को ध्यानपूर्वक पढ़ें। यह ग्रन्थ सन् 1742 में तुर्की के शासक नवाब सुलतान सलीम के आदेशानुसार बना था। यह ग्रन्थ सर्वप्रथम बगदाद के राजकवि कालिफ हरून रशीद (8वीं शती) ने 5 स्वर्ण और 16 चमड़े के पतरों पर लिखे ज्ञान के आधार पर संकलित किया था।

यह पाण्डुलिपि और 8वीं सदी के संकलन बगदाद संग्रहालय की राष्ट्रीय धरोहर हैं। यह 1742 ई. का संस्करण हस्तलिखित ग्रन्थ रेशम के पन्नों पर सुनहरी

बार्डर में दिया गया है, मध्यपूर्व के सबसे बड़े पुस्तकालय मक्तबे सुलतानिया (इस्तम्बूल) में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ का पहला प्रकाशन (कागज पर) सन् 1864 में बर्लिन में हुआ था और दूसरा संस्करण 1932 में बेरूत में हुआ। इस ग्रन्थ में इस्लाम से पूर्व अरब के विषय में कई तथ्य पढ़ने को मिलते हैं। पाठक एक अन्य 1000 पृष्ठों का शोधग्रन्थ पढ़ें—Vikrama Smriti Grantha विक्रम स्मृति ग्रंथ Scindia Oriental Institute (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, भारत द्वारा प्रकाशित)। ये पुस्तकें इस्लाम धर्म से पूर्व अरब में हिन्दू धर्म के प्रचार, प्रसार को दर्शाती हैं। कोई भी इतिहास का पाठक अपने पूर्वजों की धार्मिक निष्ठा को नकार नहीं सकता। इतिहास भूतकाल के साथ निरन्तर वार्तालाप है—इसे थोथे जातिवाद से दूषित नहीं किया जाना चाहिये।

Conversion धर्मान्तरण, धर्म परिवर्तन—समाचारपत्र में लिखा है कि मैं धर्मान्तरण का कट्टर विरोधी हूँ किन्तु शुद्धीकरण को समर्थन देता हूँ। इसका श्रीलंका के समाचार से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है। यह तो केवल मेरी कोलम्बो यात्रा द्वारा अर्जित गरिमा को धूमिल करने का प्रयास मात्र है। इसलिये तथ्यों का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

हर व्यक्ति को धार्मिक निष्ठा और पूजा करने की स्वतन्त्रता है। किसी धर्म को मानना या स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन भी संविधान द्वारा रक्षित है। किन्तु किसी प्रकार के लोभ, लाभ, धमकी, धोखे से किसी का धर्म परिवर्तन करना अनुचित व अनैतिक है और उसका जन्मजात धर्म-परिवर्तन अधर्म एवं अपराध के समान है।

(क) यदि परमेश्वर सर्वत्र, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान है, यदि प्रभु न्यायप्रिय है, तो वह हर व्यक्ति को उस देश और धर्म में जन्म देता है जो उसके लिये उपयुक्त है और मोक्ष का द्वार दिखाता है। कोई पादरी या धर्मगुरु क्यों किसी की जन्मजात धार्मिक निष्ठा को बदल कर प्रभु की योजना में व्यवधान डाले? क्या वह परमेश्वर से अधिक बुद्धिमान है?

(ख) यदि सभी धर्म सत्य पर आधारित हैं, सभी धर्म एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं तो फिर धर्मान्तरण की क्या आवश्यकता है? हिन्दू धर्म सभी धर्मों को समान मानता है किन्तु इस्लाम और ईसाई धर्म अन्य धर्मावलम्बियों को नास्तिक मानते हैं। यह मानसिक आग्रह ही भूतकाल के सभी धर्म के नाम पर हुए युद्धों और वर्तमान के जातिवाद के झगड़ों का मूल कारण है।

(ग) धर्मान्तरण का राजनीतिक पक्ष भी है। धर्म प्रचार से विश्व में अपना धार्मिक साम्राज्य बढ़ाने का प्रयास हो रहा है। नव-धर्मान्तरित लोग इन धर्मगुरुओं के हाथ के मोहरे बन जाते हैं। धर्मान्तरण के फलस्वरूप कई लोग अपनी जन्मभूमि छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं। सन् 1947—भारत का

बँटवारा-धर्मान्तरण का कड़वा फल ही है। मीनाक्षीपुरम में सामूहिक धर्मान्तरण भारत की सनातन संस्कृति को बदलकर यहाँ दारूल इस्लाम बनाने का ही प्रयास था।

(घ) धर्मान्तरण का कुप्रभाव भारत के कई क्षेत्रों—नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, छोटानागपुर एवं मध्यप्रदेश के कुछ भागों में दीख रहा है। कोई भी सच्चा भारतीय इन राष्ट्रविरोधी क्रियाओं को अनदेखा नहीं कर सकता। इन क्रिया-कलापों के पीछे कई विदेशी शक्तियाँ हैं।

शुद्धीकरण—धर्मान्तरण किसी व्यक्ति की धर्मनिष्ठा पर डाका डालने जैसा है, शुद्धीकरण जन्मजात धर्मनिष्ठा को पुनः अपनाने की सुखद क्रिया है। धर्मान्तरण और शुद्धीकरण समान नहीं हो सकते हैं। क्या स्वामी और चोर समान हो सकते हैं? यदि हम किसी निर्धन आदिवासी, जिसका किसी लोभ, लाभ, भय या धोखे से धर्म परिवर्तन करा लिया गया है, उसे फिर जन्मजात धर्म आस्था में, उसकी इच्छा से लायें तो यह धर्मान्तरण नहीं कहा जा सकता है। यह एक पवित्र शुद्धीकरण है। भटका देना या किसी को भ्रमित करना तो अधर्म है—पाप है।

5 जून 1982 The New Republic, Ranchi



गाँधीजी का पश्चिमी सभ्यता पर मुख्य आरोप यह है कि वह सुख और समृद्धि के नाम पर व्यक्तियों एवं समाजों में लालच, लिप्सा और अंतहीन भोग-कामना को धधकाती है जिससे विवेक ढक जाता है और शैतानियत जागती है। (पूरा पश्चिम का इतिहास इसका साक्षी है।)

× × ×

संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान ने अगस्त 2000 में 'मिलेनियम रीलिजियस पीस समिट' के समापन सम्मेलन में हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा—हिन्दू धर्म में कई सर्वहितकारी तथा उच्च सिद्धांत हैं। हिन्दुओं ने यह सब कुछ अपने तक सीमित रखा है। उन्होंने हिन्दुओं से शान्ति के नाम पर आह्वान कर निवेदन किया कि 5 अरब गैर-हिन्दुओं को बिना धर्म परिवर्तन के ये गुण सिखायें ताकि उन मूल्यों पर जीकर विश्व शांति स्थापित कर सकें और सर्वहितकारी तथा पराविद्या का ज्ञान भी लोगों को मिल सके।



भारतीय परिप्रेक्ष्य में भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकार और जिम्मेवारियाँ

संयुक्त राष्ट्र संघ एक श्रेष्ठ संकेतक है उन तकलीफमय मानव जातियों के लिए, उनकी आशा और महत्त्वाकांक्षा के लिए, जो विश्वशान्ति और समृद्धि की प्यासी हैं। मनुष्य की तीव्र इच्छा है कि यह विश्व एक परिवारस्वरूप हो। यह महान् शंकराचार्य ने अपने अनुसरणीय दोहे में बहुत सुन्दर रूप से चित्रित किया है।

माता च पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः मानवाः सर्वे, स्वदेशो भुवनत्रयम॥

अर्थात् मेरी माता देवी पार्वती है।
और पिता भगवान् शिव, आदरणीय
तमाम मनुष्य मेरे अपने नाती-रिश्तेदार है,
तमाम ब्रह्माण्ड मेरी अपनी मातृभूमि है।

मानव अधिकार के चार्टर में जिसे वैश्विक शरीर ने अपनाया है वह मानव व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता, सम्मान और पवित्रता का (चार्टर) राजपत्र है।

प्रत्येक अधिकार कुछ कर्तव्यों को मानकर चलता है। पर यह थोड़ी वास्तविक किन्तु अजीब बात है कि मानवाधिकारों के संयुक्त राष्ट्र संघ के राजपत्र में, जो कि 30 लेखों से निर्मित है, उसमें कर्तव्यों के बारे में मात्र थोड़ा 29वें लेख में दिया गया है। भारतीय जीवन पद्धति में कर्तव्यों को अधिकारों से भी पहले जगह दी गई है। वैदिक भजन में यह कहा गया है कि—कृतम मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः—अथर्व 7/52/8। अर्थात् मेरे दाएं हाथ में मेरे कर्तव्यों को मजबूती से पकड़े हूँ और मेरे अधिकार (विजय) स्वतः ही मेरे बाएं हाथ में पहुंच जाते हैं।

शब्द अधिकार जर्मन शब्द Rectus से लिया गया है जिसका अर्थ है कि सीधा या नियमों (दण्ड) के अनुसार। और शब्द 'नियम' के भी दो अर्थ हैं। (अ) एक छड़ (अर्थात् लम्बाई नापने का फुट्टा) जो कि सीधी लाइन को मापता है।

(ब) एक सत्ता का प्रतीक राजदण्ड जो प्रजा को सीधा रखता है नियमों के आधार पर भय पैदा करके। पश्चिम में एक शासक को Ruler कहा गया है क्योंकि उसके हाथ में एक दण्ड होता है। या उसके दाएं हाथ में कानून होता है। दाएं हाथ में ही अधिकार होता है जैसाकि दण्ड या Rectus को पकड़ने में होता है।

भारतवर्ष में दाएं हाथ को 'दक्षिण हस्त' कहा जाता है अर्थात् वह हाथ जो अपने कर्तव्यों को कुशलतापूर्वक करने के उपयोग में आता है और जो दक्ष लोगों को दक्षिणा देता है। इस प्रकार भारत में हमारा दायां हाथ हमारे अधिकारों के दावों को जताने के लिए नहीं है बल्कि वह समाज के श्रेष्ठ व्यक्तियों को दक्षिणा देने के लिए है और हमारे सबसे पवित्र कर्तव्यों को (ऋणचतुष्कः) करने के लिए है। जब हम गायत्री मन्त्र का सूर्य की ओर मुंह करके सुबह जाप करते हैं तब हमारा दक्षिण हस्त दक्षिण दिशा की ओर होता है। यही कारण है कि दक्षिण दिशा को हम 'दक्षिणा दिशा' कहते हैं। आधुनिक भूगोलशास्त्री उत्तर को नक्शे में ऊपर की ओर दर्शाते हैं। भारत में 'उत्तर शब्द' का अर्थ है—बाद में। ठीक वैसे ही 'मरणोत्तर' का अर्थ है मृत्यु के पश्चात्। हमारी प्रतिदिन की प्रार्थना में हम पूर्व दिशा की ओर देखते हैं तब बायां हाथ उत्तर की ओर होता है अर्थात् वाम दिशा। इसलिए भारत में हमेशा दायां हाथ, जो कि कर्तव्य के लिए है, उसी का शान से वर्णन किया गया है। यह वो हाथ है जो दक्षिणा देता है, जो कुशलतापूर्वक कार्य करता है तथा यह दक्षिणा हस्त है। वह सबसे पहले आना चाहिए और बाकी सब चीजों का महत्त्व बाद में है (उत्तरकाले) या वाम में है।

भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा

वेद घोषित करते हैं—

प्रब्रवाम शरदः शतम्

ईश्वर करे हम स्वतंत्रतापूर्वक सौ वर्षों तक बोल सकें (जो कि जीवन की अवधि मानी गई है)। मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा में भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष रूप से कोई अधिकार नहीं बताये गए हैं। परन्तु 19 वें लेख में इन्हें सूचना-माध्यमों से अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। भाषा विचारों की सर्वोत्तम वाहक है। चूंकि विचार सुसज्जित भाषाई रथ में यात्रा करते हैं, तो विचारों की स्वतंत्रता में स्वतः ही भाषाई स्वतंत्रता हो जाती है। 26 नम्बर लेख में शिक्षा का प्रकार चुनने का अधिकार माता-पिता को दिया गया है जो वे अपने बच्चों को देना चाहते हैं। शिक्षा का अधिकार में अपनी चुनी हुई भाषा के माध्यम से स्वतः ही अध्ययन और अध्यापन का अधिकार मिल जाता है। भाषा विचारों को प्रकट करने के लिए इतनी ज्यादा आवश्यक है कि विचारों की स्वतंत्रता भाषाई स्वतंत्रता का पर्याय हो गया है।

शिक्षा का माध्यम

प्रत्येक व्यक्ति का अपनी मातृभाषा से स्वाभाविक लगाव होता है। यही वो भाषा है जिसके माध्यम से एक बच्चा इस विशाल विश्व से सर्वप्रथम परिचित होता है। चूंकि एक ममतामयी माता स्नेहपूर्वक अपने शिशु को अपनी ही मातृभाषा में दुनियावी बुद्धिमत्ता सिखाती है, इसी कारण एक बच्चा अपनी मातृभाषा को इतना प्रिय और पवित्र मानता है जितना कि वह स्वयं अपनी माता को मानता है। इसलिए मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है कि वह अपनी ही मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करे। यहाँ किसी भी प्रकार से तानाशाही नहीं है कि किसी जवान बच्चे को अपने प्राकृतिक विशेषाधिकार, जो कि उसके राष्ट्रीय कानून के तहत है, उसकी अपनी राष्ट्रीय जबान (भाषा) और इडियम (क्षेत्रीय भाषा शैली) में पढ़ाने से वंचित किया जाए।

'अगर एक तानाशाह की शक्तियाँ मेरे पास होतीं तो मैं हमारे लड़के और लड़कियों की विदेशी माध्यम से शिक्षा को रोक देता और तमाम शिक्षकों और प्रोफेसरों को आदेश देता कि वो इसमें परिवर्तन करें।' महात्मा गाँधी ने कहा था 'यह एक बुराई है जिसका एक संक्षिप्त इलाज अवश्य है।'

लगभग 50 साल पूर्व जर्मनी में केसर के शासनकाल में जर्मनी की महारानी ने फ्रांस की सीमा पर अपने एक गाँव का निरीक्षण किया जो कि फ्रांसिसी भाषाई होने के बावजूद जर्मन-शासन के अन्तर्गत आता था। एक छोटी छात्रा को, जो मुश्किल से 4 वर्ष की थी, कहा गया कि वह रानी के सम्मान में एक जर्मन-गीत गाए और उसने इसका सुंदर प्रदर्शन किया। रानी चाहती थी कि उस बच्ची को वह एक सुन्दर पुरस्कार दे। उस लड़की ने आंखों से आंसू टपकाते हुए रानी से प्रार्थना की, 'यदि महारानी मेरे स्वागत गीत की प्रस्तुति से प्रसन्न हैं तो हम चाहते हैं कि हम फ्रांसिसी बच्चों को जर्मन भाषा में अध्ययन के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।' यह आंसू भरी उस फ्रांसीसी छात्रा की प्रार्थना मनुष्य की भाषाई स्वतन्त्रता की तीव्र इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है।

भारत की भाषाई समस्या

एक प्रगतिशील और सृजनात्मक राष्ट्र के लिए एक प्रगतिशील और सृजनात्मक भाषा आवश्यक है। एक राष्ट्र की प्रतिदिन की प्रगति लोगों के प्रतिदिन भाषाई सृजन के रूप में दर्ज होती है। हमारा देश एक मिश्रित चरित्र वाला देश है। इसके अन्दर एक उद्देश्य और भविष्य की कल्पना की एकात्मता है, एक भव्य सांस्कृतिक परम्परा है, जो कि बहुत सी भाषाओं के माध्यम से व्यक्त की गई है। भारतीय संविधान भारत की तेरह भाषाओं को भारतीय भाषा के रूप में मानता है

जो निम्न प्रकार हैं—संस्कृत, तमिल, तेलुगु, उर्दू, कश्मीरी, असमी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, मलयालम, मराठी, उड़िया और पंजाबी।

भारतीय संविधान हिन्दी भाषा को सम्पर्क भाषा के रूप में मान्यता देता है जो कि सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। यह भारत की आधी आबादी द्वारा बोली जाती है। इसमें यह भी प्रावधान है कि संस्कृत हिन्दी भाषा के विकास का प्राथमिक स्रोत है।

संस्कृत भाषाओं की जननी है

विल डूरेन्ट एक प्रसिद्ध अमरीकन दर्शनशास्त्री जो 'The Story of Philosophy' का प्रसिद्ध लेखक है और 'The Story of Civilisation' में वह टिप्पणी करता है कि 'भारत हमारी जाति की मातृभूमि है और संस्कृत यूरोपियन भाषाओं की जननी है।' वास्तव में यदि कोई भाषा है जो पृथ्वी के सबसे विशाल सभ्य भू-भाग को जोड़ती है तो वह संस्कृत है। हम मनुष्य के अधिकारों की बात कर रहे हैं। मनुष्य और मानव शब्द भी संस्कृत शब्दों से लिए गए हैं जो मनु, मानव, मनुष्य आदि-आदि संस्कृत के 'मर्त्य' से आए हैं। हम अवस्तान मर्त हैं, अर्मेनियन 'मर्द' और लैटिन में 'मोरटल' आदि-आदि। इसी प्रकार संस्कृत में 'अमर्त्य' का समानान्तर Immortal और ambrosia है। चेक भाषा में जीवन के लिए शब्द जीवट है (जो संस्कृत के जीवित से है) और मृत्यु के लिए शब्द Mritwi (मृतवी) जो संस्कृत के मृत्यु से बना है। Mortuary (मोर्चरी) और Mortem अंग्रेजी में साफ है कि संस्कृत के मृत्य से लिए गए हैं। तमाम मानव संबंधों के नाम भी संस्कृत से ही लिए गए हैं—

शब्द

संस्कृत—Pitri—Pidar (पर्शियन)-Padri-Padre, Pater, Father-Paternal

संस्कृत—Matri—Mather (पर्शियन)-Mater-Mother, Maternal

संस्कृत—Bhratri—Biradar (पर्शियन)-Father, Fraternal, Brother

संस्कृत—Swasri—Sister, Hamasri-Hamshira (पर्शियन)

संस्कृत—Duhitri—Dukhtar (पर्शियन), Daughter

संस्कृत—Sunu—Son

शब्द 'दिन' संस्कृत के दीव और रात्रि शब्द संस्कृत के नक्त से है। अंकों के तमाम शब्द, मनुष्य शरीर के अंगों के नाम, चीनी-सल्फर, कपास, कपड़ा, हाथीदांत, चन्दन की लकड़ी और तमाम ज्ञान की शाखाओं के नाम अन्ततः संस्कृत और भारतीय भाषाओं से लिए हुए हैं।

क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार—लगभग तमाम भारतीय क्षेत्रीय भाषाएं संस्कृत की पुत्रियों के समान हैं और हिन्दी की बहिनें हैं। सब युगों-युगों से भारत को एकीकृत करने में तथा वैचारिक ऐक्य में एक ही महत्त्वपूर्ण सूत्र है जो कि क्षेत्रीय भाषाओं के सांस्कृतिक बगीचे की उपज है। समान सांस्कृतिक विचार, जो उत्तरी भारत के ऋषियों में थे और दक्षिण भारत के आचार्यों में थे, उन्होंने भारतीय संस्कृति की एकात्मता को पाला-पोसा और बढ़ाया। बिना यह परवाह किये कि क्षेत्र और भाषाओं में भिन्नता है। डा. राधाकृष्णन कहते हैं कि हमें जितनी सम्भव हो सके उतनी क्षेत्रीय भाषाओं को सीखना चाहिए जिनके माध्यम से हम भारत की आत्मा को समझ सकते हैं।

आज अलग तमिलनाडु की मांग है। दुर्भाग्यवश भाषा, जिसे विभिन्न लोगों में समझदारी के पुल का काम करना चाहिए, उसका दुरुपयोग राजनीतिज्ञ, लोगों के हृदय में जहर के बीज बोने में कर रहे हैं। तमिल शब्दकोश पर एक सरसरी निगाह डालने पर हजारों शब्द उत्तरी और दक्षिणी भाषाओं में समान पाए जा सकते हैं।

शब्द संस्कृत

यात्रा	Yatra (S)=Jatirai (Tamil)=Meaning—Travel
कथा	Katha (S)=Katai (Tamil)=Meaning—Story
द्वेष	Dwaisha (S)=Twaisha (Tamil)=Malice
धर्म	Dharman (S)=Taman (Tamil)=Duty
ग्राम	Graman (S)=Giraman (Tamil)=Village
पट्टन	Pattan (S)=Pattanam, Nagar (Tamil)=City
शुद्ध	Shuddha (S)=Shuttaman (Tamil)=Pure
कूट वार्ता	Kuta varta (S)=Katta vartai (Tamil)=Bad News
इदम	Idam (S)=Idu (Tamil)=This
अयम कूट वार्ता	Ayam kuta varta (S)=Adu Katta varda (Tamil)= This is a badnews
इदम पुस्तकम पठ	Idam Pustakam Path=Indu Pustakattaii Popadi (Tamil)=Read this book

इसी प्रकार तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में भी भरपूर संस्कृत के शब्द हैं। यहाँ तक कि छोटानागपुर की आदिवासी भाषाओं में भी बहुत सारे शब्द हैं जो हमारे हृदयों को एक साथ बांधते हैं।

कुरक्सा (Kuruksha)–Vaisya : Vanik (S)=Bania (Hindi)=Baniyas (kurukha or oraon language)=Meaning—A businessman (व्यापारी)

Lohkar (S) : Lohar (Hindi)=Loharas=(Kurkha or oraon Language)=लोहार

Vansh (S)—Bans (Hindi)=Bans=Bamboo

Mundrari—Kutia (S)=Kahan (Hindi)=Kota (Mundari)= Where=कहाँ

Taru (S)=Taru (Hindi)=Daru (Mundari)=Tree पेड़

Kaka (S)=Kauwa (Hindi)=Ka-u (Mundari)=Crow कौआ

Vishakta (S)=Vishaila (Hindi)=Bishyan (Mundari)= Poisonous विषाक्त

Kurmali=Paniyam (S)=Pani (Hindi)=Pani (Kurmali)=Water पानी

Akhshi (S)=Ankh (Hindi)=Anka (kurmali)=Eye आंख

Mund (S)=Mund (Hindi)=Moonda (Kurmali)=Head सिर

इस तरह आधारभूत ढंग से हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में कोई झगड़ा नहीं है। भाषा के रूप में वे एक-दूसरे की पूरक हैं। वे हजारों सालों से सहअस्तित्व में हैं और हमेशा-हमेशा एक-दूसरे के साथ सुरक्षित रह सकती हैं। इस प्रकार भारत के अक्षरकोश में बढ़ोतरी करती हैं।

भाषा की राजनीति—आधुनिक भारत के इतिहास की सबसे बड़ी भूल में से एक भारत सरकार की ये जल्दबाजी थी जिसमें भाषा के आधार पर विभिन्न राज्यों को मान्यता दी गई। वास्तव में भारत के इतिहास में भाषा कभी भी राजनीति या प्रचार का साधन नहीं रही पिछले हजारों वर्षों में। वास्तव में कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने भाषाई भाईचारे का नारा ईजाद किया जिसके आधार पर उन्होंने अपनी कुल्हाड़ी की धार तेज की और राष्ट्रीय एकता की जड़ों को काटा। यह भाषाई दैत्य आक्रामक आंदोलन उत्पन्न कर रहा है जो कि अज्ञानी जनता में और सत्ता के भूखे राजनीतिज्ञों में पाशविक प्रवृत्ति पैदा कर रहा है।

उदाहरणार्थ

1. जंगली तरीके से असमी व बंगाली दंगे, जो सन् 1961 में हुए, वे पूरे भारत के लिए शर्मनाक थे। इसमें कुछ भारत के दुश्मनों ने दंगों की आड़ में भारतवासियों के जीवन व सम्पत्ति को लूटा। यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण मिशन आश्रम पर भी हमला कर उसे लूटा गया।

2. हिन्दी विरोधी दक्षिण भारतीय दंगों में तमाम भारत विरोधी ताकतों ने अंग्रेजी के झण्डे तले एकत्रित होकर अरबों रुपये की राष्ट्रीय सम्पत्ति जलाकर राख कर दी। पाण्डिचेरी के श्री अरविन्द आश्रम, जिसका भाषाई राजनीति से कोई लेना-देना नहीं था, उस पर भी हमला किया गया और वह भी केवल इस कारण क्योंकि वह भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का प्रसिद्ध केन्द्र था और इस कारण भारत विरोधी अंग्रेजियत की आंख का कांटा था। डा. राधाकृष्णन की व्यक्तिगत लाइब्रेरी को भी जला डाला क्योंकि वह विश्व में भारतीय दर्शन की शान और सर्वोच्चता का चिह्न थी। एक पुलिस इन्सपेक्टर, जो उस लाइब्रेरी को बचाना चाहता था, उसे बुरी तरह पीटा गया तथा एक बोझ से लदी बैलगाड़ी को उसके ऊपर चढ़ा दिया गया। उसे एक पेड़ से बांधा गया, जब वह पानी के लिए चिल्लाया तब उसके मुंह में पेट्रोल उड़ेल कर जला डाला गया। हिंसा के ये अमानवीय कृत्य सभ्यता पर धब्बे हैं। भाषाई राजनीति इतने पतन तक ले जा सकती है।
3. मास्टर तारासिंह द्वारा शुरू किया गया पंजाबी सूबा आंदोलन उस अकाली नेता द्वारा अलग सिक्ख राज्य लेने के उद्देश्य से शुरू किया गया।
4. बिहार व बंगाल में भी भाषाई आंदोलन ने मनुष्यता को शर्मसार किया और मानव जीवन व सम्पत्ति का विनाश किया गया।

भाषाई राज्य अन्त में भारत की मातृभूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट सकता है। भारत के कुछ विदेशी शत्रु इस झुकाव का फायदा उठा कर भारत व भारतीयता को कत्ल कर देना चाहते हैं। हमें इन सब कोशिशों के विरुद्ध संगठित होना होगा।

भाषाई फार्मूला—भारत सरकार इस भाषाई समस्या के हल में कमोबेश असफल रही है। तीन भाषाओं का फार्मूला हिन्दी, अंग्रेजी और एक क्षेत्रीय भाषा को पढ़ाने का प्रावधान करता है। इस फार्मूले को उचित तरीके से लागू करने का प्रयास नहीं किया गया। एक नई प्रवृत्ति कि स्नातकोत्तर तक तमाम कक्षाओं में क्षेत्रीय भाषाओं द्वारा पढ़ाया जाए, एक नई समस्या उत्पन्न करेगा।

इससे विभिन्न विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों और शिक्षकों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान का अवसर समाप्त हो जायेगा। हम विभिन्न विश्वविद्यालयों में किये गये शोधकार्यों को आपस में जोड़ नहीं पायेंगे।

भाषाई अल्पसंख्यक अपने भाषाई क्षेत्र में बहुसंख्यक हैं और वही भाषाई समूह अन्य राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक हैं। यह अल्पसंख्यकता और बहुसंख्यकता तमाम राज्यों में एक समान है।

यह अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की समस्या, भाषा और साहित्य के पवित्र मन्दिर में इतनी नहीं है जितनी कि इससे राजनीतिज्ञों को बाहर रखने की है। बहुसंख्यक भाषाई समूहों को राज्य में अल्पसंख्यक भाषाई समूह के बीच सुरक्षा का भाव भरना चाहिए, जिससे कि बहुभाषाई लोगों को वही व्यवहार व सुरक्षा दूसरे राज्यों में प्राप्त हो सके। अगर हम भारतीय संस्कृति को अपने समान प्राचीन शान समझते हैं तो कोई भी भाषा दूसरी भाषा की विरोधी नहीं हो सकती। हम भारत माता की पूजा विभिन्न भारतीय भाषाओं और संस्कृति में से चुने हुए फूलों से कर सकते हैं।



मुरपद कोडी मुहमु डैयाल
उचिर भोईरपुरम् ओंद्रुडैयाल
इनल् चरपुमोजी पदिनेट्टु डैयाल
एनिल् चिंदनै ओंद्रुडैयाल

अर्थ—तीस कोटि मुख वाली है मेरी माँ एक है उसकी काया और आत्मा। भाषाएं वह अठारह बोलती है किन्तु एक ही है उसका चिंतन।

(उस समय भारत की जनसंख्या 30 कोटि थी)

तमिल के महान् कवि—सुब्रमण्यम् भारती

× × ×

शिशु माँ की गोद में माता की लोरी के साथ जो भाषा सीखता है वह सब मातृभाषा है, इस प्रकार 18 हमारी मातृ भाषाएं हैं, हिन्दी संस्कृत भाषा की एकनिष्ठ पुत्री होने तथा आधे से अधिक भारत में बोली जाने से सम्पर्क की भाषा है अतः राष्ट्रभाषा है।

—श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर (गुरुजी)

× × ×

'भारत एक राष्ट्र है, जिसकी एक ही संस्कृति है। संस्कृति ही भारत की आत्मा है। केवल हमारी ही संस्कृति भारत की रक्षा और विकास कर सकती है।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय



निवर्तमान प्रधानमंत्री चरणसिंह को राष्ट्र के प्रधानमंत्री बना देने के संदर्भ में राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी से अपील

संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने अपने एक वक्तव्य में भारत के राष्ट्रपति महामहिम श्री नीलम संजीव रेड्डी से यह मांग की है कि निवर्तमान प्रधानमन्त्री श्री चरणसिंह द्वारा गलत तथ्यों के आधार पर भारत के प्रधानमंत्रित्व का दायित्व ग्रहण कर लेना न्याय संगत नहीं हैं। अतः इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। 25 दिन पूर्व जब राष्ट्रपति ने श्री मोरारजी देसाई एवं श्री चरणसिंह को अपने-अपने समर्थकों की सूचियाँ प्रस्तुत करने का आदेश दिया तो श्री चरणसिंह ने जो सूची प्रस्तुत की वह निराधार थी। राष्ट्रपति महोदय ने बिना वास्तविक जाँच-पड़ताल किए श्री चरणसिंह की बात का विश्वास कर उन्हें प्रधानमन्त्री का सर्वोच्च पद इसी शर्त पर दे दिया कि वे अगस्त के तृतीय सप्ताह तक लोकसभा में अपने दावे को सत्य प्रमाणित करें। यह वैसा ही है जैसे किसी व्यक्ति की बात का विश्वास कर उसे बिना योग्यता के प्रमाण-पत्र देखे किसी ऊँचे पद के लिए इस शर्त पर चुन लिया जाय कि वह अपने वास्तविक प्रमाण-पत्र दो-चार दिन बाद निश्चित-रूपेण प्रस्तुत कर देगा। यदि कोई व्यक्ति योग्यता के झूठे दावे के आधार पर किसी महाविद्यालय का प्राचार्य या विश्वविद्यालय का कुलपति अथवा किसी सैनिक विभाग का महाप्रबन्धक बन जाय और प्रमाण प्रस्तुत करने के दिन परीक्षण की घड़ी में भाग जाय तो क्या उस व्यक्ति को क्षमादान किया जाना चाहिये?

यदि इस प्रकार गलत तरीके से कोई देश के सर्वोच्च पद पर बैठने का षड्यन्त्र रचे तो झूठ का पर्दाफाश होने पर क्या उसे 65 करोड़ नागरिकों का लोकतन्त्र क्षमा कर देगा? क्या इस महान् राष्ट्र के राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति की सम्मति मानकर लोकसभा को भंग करने का कृत्य कर सकते हैं? आज सारा राष्ट्र राष्ट्रपतिजी से चिल्ला-चिल्ला कर ये प्रश्न पूछ रहा है।

राजनीति के तुमुल रणघोष में संस्कृति के सौम्य स्वर

1. Politics Divides; Culture Unites. राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है।

   भिन्न-भिन्न राजनीतिक दल समाज को भिन्न-भिन्न राजनीतिक विचारधाराओं में विभक्त कर देते हैं। कई बार भिन्न-भिन्न दलों में परस्पर कटुता भी उत्पन्न हो जाती है। राजनीति को जीवन का सार—सर्वस्व समझ लेने से पूरे समाज में परस्पर कटुता का विष फैल सकता है। संस्कृति ही जीवन का सार है। वही राष्ट्र की एकता का सुवर्ण-सूत्र है। राजनीति के क्षणिक खेल को प्रामाणिकता से, न्याय से खेलिए, किन्तु राष्ट्र की चिरन्तन सांस्कृतिक जीवनधारा को विकृत मत होने दीजिए। चुनाव खेल के पहले और पीछे मित्र-भाव से परस्पर मिलिए तथा संस्कृति के अमृतजलों द्वारा राष्ट्र के हृदय से कटुता के कालकूट को धो डालिए।

2. Elections are the lungs of Democracy. चुनाव लोकतन्त्र के फेफड़े हैं।

   जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में फेफड़े श्वास लेते हुए हर बार उत्तम वायु को श्वास द्वारा भीतर खींचते हैं तथा गंदी, विकृत वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर फेंकते हैं, उसी प्रकार लोकतन्त्र को जीवित एवं स्वस्थ रखने के लिए चुनाव द्वारा उत्तम समाज-सेवी, संस्कृति-निष्ठ सज्जनों को शासन तन्त्र में लाना तथा गन्दे, गले-सड़े, भ्रष्ट शासकों को हराकर बाहर फेंकना प्रत्येक लोकतन्त्र प्रेमी नागरिक का प्रथम कर्तव्य है।

3. 'जनवाक्यं तु कर्तव्यं जनैरपि जनाधिपैः। (शास्त्र वचन)

   जनता की बात को विशिष्ट जनों एवं शासनाधिकारियों, दोनों को मानना ही पड़ेगा।

4. If the people are Dumb & the Government is Deaf, Democracy goes to dogs. **—C. Rajagopalachari**

यदि जनता गूंगी हो और सरकार बहरी हो, तो लोकतन्त्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। **—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य**

5. Democracy is govt. of the people, by the people, for the people. **—Abraham Lincon**

जनता का, जनता द्वारा, जनता के हित के लिए शासन ही लोकतन्त्र है।'

—अब्राहम लिंकन

6. In India Democracy today is,
Govt. of the Corrupt people,
By the Inefficient people,
For the Unfortunate people.
—Late Sri Nath Pai

आज भारत में लोकतन्त्र,
भ्रष्टाचारी लोगों का,
अकुशल लोगों द्वारा,
अभागे लोगों पर, शासन है।
—स्व. श्रीनाथ पाई

7. The function of opposition is to propose, expose, oppose and depose the govt. **—Dr. S. Radhakrishnan**

विरोधी दल का कार्य है—सरकार को प्रस्तावित करना, सरकार को नग्न करना, सरकार का विरोध करना तथा उसे पदच्युत करना।

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

8. To sell one's vote is to sell one's Conscience.

मत (वोट) बेचना अन्तरात्मा बेचने के तुल्य है।

मनुष्य का जीवन स्वयं के लिए नहीं राष्ट्र के लिए होना चाहिए। राष्ट्रीयता के बाद में प्रजातंत्र आता है। राष्ट्रीयता के बाद ही हर कोई तंत्र आता है। यदि राष्ट्रीयता दुर्बल पड़ी तो प्रजातंत्र चल नहीं सकता। राष्ट्रभक्ति अर्थात् समाज की भक्ति, यही वास्तव में भगवान की भक्ति है।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय

× × ×

'यदि इस देश से हिन्दू समाज और हिन्दू संस्कृति को समाप्त करने के उपरांत हमें स्वतंत्रता प्राप्त होती है, तो इसे हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता नहीं कहा जायगा और ऐसी स्वतंत्रता का मूल्य शून्य होगा।

—डा. केशवराव बलीराम हेडगेवार

वनस्पति या विनाशपति?

वनस्पति घी अथवा जमे हुए वनस्पति तेल का चलन देश में लगभग 45 वर्ष पुराना है। लीवर ब्रदर्स लंदन की कंपनी ने जब खजूर छाप डालडा का उत्पादन एवं प्रचार भारत में प्रारम्भ किया, तो आम जनता इसे विदेशी कंपनी का चर्बी मिश्रित तेल मानकर विरोध करती थी। हिन्दू गो-मांस से परहेज करता है और मुसलमान सूअर के मांस से। किन्तु अधिकांश पश्चिमी देशों के ईसाई सर्वभक्षी होने के कारण दोनों से परहेज नहीं करते। डालडा कंपनी के अभिकर्ता प्रचार गाड़ी में घूम-घूम कर डालडा का प्रचार करते। उसमें पूड़ी, सिंघाड़ा आदि बनाकर प्रदर्शन करते तथा जनता को आदत लगाने के लिए उन्हें डालडा की पूड़ी-मिठाई मुफ्त बांटते और डालडा वनस्पति तेल के छोटे-छोटे डिब्बे भी नमूने के रूप में बिना मूल्य के वितरण करते। लीवर कम्पनी द्वारा निर्मित लक्स, सनलाइट, लाइफबॉय, रक्सोना आदि साबुन सारे यूरोप, अमेरिका में और अब एशिया के देशों में भी प्रचलित है, जिनके निर्माण में पशुओं की चर्बी का प्रयोग एक खुला रहस्य है। भारत में जनसाधारण का विश्वास जमाने के लिए लीवर कम्पनी द्वारा सनलाइट साबुन के बाहर के लपेटे हुए कागज के आवरण पर छापा जाता था, 'साबुन में पशु की चर्बी साबित करने वाले को एक सौ रुपया नकद पुरस्कार दिया जाएगा।' आम ग्राहक को रासायनिक जांच कराने के लिए न समय था और न योग्यता। अंग्रेजी कम्पनी थी, राज अंग्रेजों का था। गाँधीजी, मालवीयजी, हनुमान प्रसाद पोद्दार, चारों शंकराचार्यों तथा अनेक विभिन्न नेताओं के विरोध के बावजूद विदेशी कम्पनी का वनस्पति घी और साबुन इस निर्धन देश के जनसाधारण के घर-घर में पहुँच गया।

एक बार प्रचलन हो जाने के बाद लीवर कम्पनी ने साबुन के पैकेट पर चर्बी मुक्त होने का आश्वासन छपवाना बन्द कर दिया। आज भारत सरकार के आंकड़े प्रमाणित करते हैं कि वह साबुन कम्पनियों को विदेशों से लाखों टन पशु चर्बी आयात करने के लाइसेंस देती है। दुर्भाग्य से प्रायः सभी वनस्पति निर्माता कम्पनियों ने वनस्पति घी के साथ साबुन बनाने का धंधा भी चालू कर रखा है। उनमें से कुछ अर्थलोलुप कम्पनियाँ गाय की चर्बी को निकल धातु से हलका पीला

रंग देकर, उसमें घी की सुगंधि मिलाकर उसे वनस्पति घी के नाम पर अथवा उसमें मिश्रण करके बेचने लगी हैं।

पंजाब में बिना लेबल के चर्बी वाले घी पर नम्बर-1 का लेबल लगाकर बेचा गया। मुंबई की लिबर्टी आयल मिल, जो एक मुस्लिम व्यापारी की है और जिसका चन्दा मार्का वनस्पति प्रसिद्ध है, उस पर इसी प्रकार की धोखाधड़ी का आरोप है। अल्लाना आयल मिल मुंबई द्वारा विदेशों में मछली निर्यात की जाती और विदेशों से गाय की चर्बी साबुन बनाने के बहाने से आयात की जाती है और अवैध रूप से उसी में रंग और सुगंध डालकर घी के नाम पर बेचा जाता है। कुछ दिन पूर्व मुंबई में इस कम्पनी के गाय की चर्बी के 6000 बड़े ड्राम पकड़े गये। चंडीगढ़ में पुलिस ने छापा मारकर एक व्यापारी के गोदाम से 600 कनस्तर गाय की चर्बी के पकड़े। भटिंडा (पंजाब) में प्रशासन ने एक व्यापारिक संस्थान पर छापा मारकर 9000 क्विंटल गाय की चर्बी को जब्त किया (स्टेट्समैन, दिल्ली 19.6.83)। 5, जुलाई के वार्ता समाचार के अनुसार भटिंडा में एक साबुन कम्पनी ने 75 टैंकर गाय की चर्बी आयात की और एक अपनी सहयोगी फर्म को वनस्पति घी बनाने के लिए दे दी। छापे में फर्म के कार्यालय से 57000 चर्बी के कनस्तर एवं निकल के 50 ड्राम भी बरामद किये गये (रांची एक्सप्रेस, दिनांक 7.7.83)

लगभग दो मास पूर्व रांची में भी 25-30 ट्रक में बिना लेबल के वनस्पति घी के हजारों कनस्तर आये, जिनमें गाय की चर्बी वाला घी था। उन पर भारत वनस्पति और टेलिफोन मार्का वनस्पति के बनावटी लेबल लगाकर अन्य वनस्पति तेलों की तुलना में सस्ता बेचा गया। संदेह है कि अभी भी कुछ व्यापारियों के पास ऐसा धर्म भ्रष्ट करने वाला घी बिक्री के लिए पड़ा हुआ है, किन्तु इस विषय में विश्व हिन्दू परिषद् एवं अन्य धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं द्वारा देशव्यापी आन्दोलन छेड़ देने के भय से चर्बी वाले घी को कुछ काल के लिए छिपा दिया गया है।

रांची प्रशासन तथा बिहार सरकार को इस विषय में ठोस कदम उठाकर जनता के स्वास्थ्य एवं धर्म की रक्षा करनी चाहिए। अर्थ-लोभ में भोली-भाली जनता को धोखे से गाय की चर्बी खिलाने वाले निर्माताओं, विक्रेताओं एवं अभिकर्ताओं को कठोर दंड देना चाहिए।

कुछ वर्ष पूर्व बी. आई. टी. मेसरा में रसायन विभाग के अध्यक्ष प्रो. दुर्गा प्रबोध सिंह ने मुझे एक घी का नमूना पहचानने के लिए कहा। खुली आंख से घी के समान ही हलका पीला दानेदार और सुगंध युक्त घी प्रतीत होता था। उन्होंने प्रयोगशाला में परीक्षण करके सबको विस्मित कर दिया कि वह सूअर की रंगी हुई चर्बी के सिवाय कुछ नहीं था। इसलिए प्रोफेसर साहब भी अपने घर में शुद्ध मूंगफली तेल का प्रयोग करते थे या घर में दूध से निकाला हुआ मक्खन। मुझे अकोला

(महाराष्ट्र) में श्री ब्रजमोहन बिड़ला द्वारा स्थापित बरार ऑयल इण्डस्ट्रीज देखने का सुयोग मिला। वहाँ बनने वाले वनसदा वनस्पति में कोई पशु चर्बी मिलाने का धंधा तो नहीं मिला, किन्तु मुझे बड़ा विस्मय हुआ कि वहाँ के चीफ इंजीनियर श्री मैनन, जो केरल के निवासी तथा बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के पढ़े हुए विद्वान थे, स्वयं अपने घर में जमा हुआ तेल या वनस्पति प्रयोग न करके शुद्ध मूंगफली तेल ही प्रयोग करते थे। विचार-विमर्श करने पर निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए—

1. यदि एक हाथ की तली में शुद्ध घी रखा जाय और दूसरी में डालडा तो शुद्ध घी पहले पिघलेगा और डालडा बाद में। जो तली का तापमान है, वही जिह्वा का है और वही शरीर के भीतर का। जो वनस्पति घी तली में पिघलने में कठिनाई करता है, वह शरीर के भीतर सूई के छिद्र से भी अधिक बारीक नसों में क्या उत्पात करेगा?
2. सर्दी की ऋतु में जब घी जम जाता है तो वनस्पति को निकालने में स्टील की चम्मच प्रायः टूट जाती है। शरीर की नसों के भीतर जाकर यह कोलेस्ट्रोल नामक लेई जैसा पदार्थ बनकर जम जाता है और रक्त के प्रवाह को रोकता है। इसी से रक्तचाप के रोग, हृदय के रोग, अधरंग, लकवा आदि हो जाते हैं।
3. मूंगफली तेल को हाइड्रोजन गैस द्वारा जमाने की प्रक्रिया में तेल में निकल धातु के कुछ घोल मिलाये जाते हैं, जो जमाने की प्रक्रिया में मध्यवर्ती अभिकर्ता (केटेलिटिक एजेंट) के रूप में काम करते हैं। बाद में निकल के कणों को वनस्पति घी से निकाला जाता है, किन्तु कुछ प्रतिशत कण भरपूर प्रयास करने पर भी वनस्पति घी में छूट जाते हैं जो शरीर के लिए घातक हैं तथा कैंसर का रोग तक पैदा कर सकते हैं।
4. परीक्षण से पता चला है कि जमे हुए तेल के सेवन से जीवों की प्रजनन शक्ति (वीर्य शक्ति) एवं नेत्रों की ज्योति कम होती जाती है।
5. उदर की पाचन शक्ति, कंठ की गायन शक्ति एवं मस्तिष्क की विचार शक्ति पर भी वनस्पति घी का कुप्रभाव पड़ता है।
6. यदि धोखे से उसमें पशु चर्बी मिला दी जाय तो स्वास्थ्य नष्ट होने के साथ धर्म भी भ्रष्ट हो जाता है।

देश के स्वाधीनता आन्दोलन में महात्मा गाँधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि नेता कहते थे कि देश के स्वाधीन होते ही डालडा आदि वनस्पति घी पर प्रतिबन्ध लगा दिया जायेगा। किन्तु दुर्भाग्य से वनस्पति घी की फैक्टरियाँ बढ़ रही हैं तथा वे न केवल देश के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रही हैं, वरन् देश के धर्म को भी लूटने का दुस्साहस कर रही हैं।

कारतूसों में गाय की चर्बी एवं सूअर की चर्बी की घटना से जिस देश में 1857 में एक विराट् क्रान्ति हुई वहाँ लाखों टन गाय की चर्बी धोखे से भारतीय नर-नारी को खिला देने पर कैसी भयंकर क्रान्ति हो सकती है, इसका अनुमान कोई दूरदर्शी प्रशासक सहज ही लगा सकता है। प्रशासन की ढिलाई से जनता का धर्म लुट जाय, तो इससे बड़ा महापाप एवं अन्याय और क्या हो सकता है? जनता की संगठित आवाज ही भ्रष्टाचारियों को नग्न एवं प्रशासन को सजग बना सकती है।

भारत के दो रूप

अमर भारत को सारी दुनिया श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखती है। और एक है रोगी भारत जिसमें आप और हम रहते हैं और कार्यरत हैं। आज का जो भारत है वह भ्रष्टाचार, हिंसा, लूट-खसोट, मुकदमेबाजी, ईर्ष्या-द्वेष की बुराइयों तथा गरीबी, निरक्षरता एवं उत्कट प्रजनन प्रवृत्तियों से भरा भारत है। संसद और विधानसभाओं में खग्न भारत की छवि दिखाई पड़ती है। आधुनिक भारत रोगी भारत है। परन्तु सारा विश्व उस सनातन भारत की ओर बहुत प्रेम एवं श्रद्धा की दृष्टि से निहारता है उसी भारत से आशा करता है, जो वेदान्त जैसे उच्च दर्शन एवं आध्यात्मिकता का भण्डार ही है।

—स्वामी रंगनाथानन्द

× × ×

मेरे लिये ऐसी स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं रह जाता जो हमें भगवद्गीता से वंचित कर देती हो, और हमारे लाखों बंधुओं की उस श्रद्धा भावना को निर्मूल कर दे जो वे अपने मंदिरों के प्रति रखते हैं, और इस तरह हमारे जीवन का आधारस्तम्भ ही ध्वस्त हो जाय।

—कन्हैयालाल एम. मुंशी

वनस्पति घी में गाय की चर्बी की मिलावट के विरोध में रांची में जनसभा

वनस्पति घी में गाय की चर्बी (पशुचर्बी) मिलावट के विरोध में दिनांक 31.7.83 रविवार की संध्या को हुई रांची के नागरिकों की सभा में अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधियों एवं नागरिकों ने अपना आक्रोश प्रकट किया। चर्बी का आयात बन्द करने तथा इस तरह का घृणित कार्य तुरंत बन्द किये जाने की मांग की। इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया।

देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में वनस्पति घी में गाय की चर्बी मिलाने की घटना प्रकट होने से यह तथ्य प्रकाशित हो गया है कि यह घृणित धंधा सरकार के भ्रष्ट अधिकारियों के सहयोग से अनेक अर्थलोलुप बेईमान व्यापारी नियोजित ढंग से बहुत दिनों से चला रहे हैं। इसके द्वारा भारतीय जनता के धन, धर्म और स्वास्थ्य का निरन्तर शोषण हो रहा है। इसे तुरंत बन्द करना भारत सरकार का कर्तव्य है।

अतः रांची की जनता भारत सरकार से मांग करती है कि—

(1) चर्बी का आयात बन्द किया जाय तथा वनस्पति मिलों द्वारा तेलों का जमाया जाना, यानी वनस्पति तेल को वनस्पति घी का रूप देना कानूनन तुरंत बन्द किया जाय।

वनस्पति घी में चर्बी मिलाने वाले कारखानों को तुरंत जब्त किया जाय तथा उनके मालिकों की सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त की जाय और सभी अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाय।

(2) रांची की जनता समस्त भारतीय जनता से अपील करती है कि वह जमाया हुआ तेल वनस्पति डालडा का व्यवहार एकदम बन्द कर दे। इसके स्थान पर अपनी रुचि के अनुसार—तिल, सरसों, मूंगफली, नारियल, सोयाबीन, सूरजमुखी का तेल व्यवहार करें एवं चर्बी मिलावट के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन करे।

(3) रांची के नागरिकों की यह सभा वनस्पति निर्माता संघ से मांग करती है कि वह वनस्पति में चर्बी मिलाने वालों का नाम प्रकाशित करे और उन्हें अपने संघ से निष्कासित कर उन्हें दण्ड दिलाने के लिए उचित कार्यवाही करे। यह सभा उनसे यह भी मांग करती है कि वे वनस्पति तेलों को जमाकर उसे घी का रूप देना बन्द कर दें और अपना उत्पादन रिफाइण्ड तेल के रूप में ही बेचें।

(4) यह सभा रांची की जनता से मांग करती है कि वह वनस्पति घी का व्यवहार एकदम बन्द कर दे और वनस्पति घी में चर्बी मिलाने के विरुद्ध यह जन-आन्दोलन जाग्रत रूप से तब तक चलाया जाय जब तक उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाय। वनस्पति घी में चर्बी मिलाने वालों का व्यापक सामाजिक बहिष्कार किया जाय।



आजादी के पहले भारत में काफी अच्छे लोग विशाल भाव के लोग थे। इन दिनों छोटे आदमी हैं। मैं अक्सर कहता हूँ हम लोग बड़े और महान् देश के छोटे और बौने लोग हैं। हमें इसे सुधारना चाहिए। कभी यह देश महान् था। यहाँ कई विदेशी आये और सुन्दरभाव यहाँ से ले गए।

—स्वामी रंगनाथानन्द

× × ×

'देशभक्ति' शब्द का प्रयोग तो बहुत होता है। पर बहुत कम लोग समझते हैं कि इसका वास्तविक अर्थ क्या है। देशसेवा कहने से भी वे सब बातें नहीं प्रकट होती, जो 'देशभक्ति' शब्द का प्रतिपाद्य है। देश केवल मानचित्र नहीं है। देशसेवा का अर्थ है—देश के कोटि-कोटि लोगों को अज्ञान, कुशिक्षा, दारिद्र्य और परमुखापेक्षिता से बचाना। जिसके मन में यह बड़ा संकल्प आ गया, वह निचली श्रेणी के स्वार्थ का शिकार नहीं हो सकता।

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी



इमाम अब्दुल्ला बुखारी पर धर्म प्रतिष्ठा हनन का फौजदारी मामला

रांची, 7 जुलाई, 1980

संस्कृति विहार रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, रांची के न्यायालय में जामा मस्जिद के इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153 ए, 124 ए, 500, 505 के अन्तर्गत फौजदारी मुकदमा किया है। श्री बुखारी ने पत्रिका 'वीक एण्ड रिव्यू', नई दिल्ली के 7 जून, 1980 अंक में प्रकाशित अपनी भेंटवार्ता में कहा था कि हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है जिससे एक हिन्दू के रूप में प्रो. ओबराय की धर्म भावना को भीषण आघात लगा है।

याचिका में कहा गया है कि हिन्दू धर्म पर ऐसा गन्दा तथा शरारत भरा आक्षेप सेना में गदर करवा सकता है तथा देश भर में आग लगा सकता है। क्योंकि सेना के जवान व अफसर इस दुष्ट आरोप की प्रतिक्रिया से भड़क सकते हैं। याचिका में यह भी कहा गया है कि इसी इमाम ने सितम्बर '79 में रांची में एक संवाददाता सम्मेलन में यह कह कर कि 'गो मांस हमारी कौम के हिस्से की खुराक है।' हमारी धर्म निष्ठा का बड़ी बेरहमी से खून किया है।

अपने इस कथन द्वारा कि 'हर मुसलमान पहले मजहब के प्रति वफादार है और बाद में देश के प्रति और वह भी भारत या पाकिस्तान के प्रति नहीं बल्कि अरब के प्रति।' श्री बुखारी भारतीय मुसलमानों के मन में देश के प्रति असन्तोष पैदा करके भारत सरकार के प्रति द्रोह तथा देश के प्रति विद्रोह भड़का रहे हैं।

याचिका में कहा गया है कि इमाम के ऐसे अपमानजनक वचन भारत में रहने वाले तथा विदेशों में बसने वाले हिन्दुओं के मन में दुर्भाव, घृणा व द्वेष पैदा कर सकते हैं। वास्तव में वाणी का प्रहार तलवार से भी अधिक घातक होता है। न्यायालय से प्रार्थना की गई है कि प्रतिष्ठा हनन के इस अपराध के लिए इमाम को कठोरतम एवं शिक्षाप्रद दण्ड दिया जाय।

श्री ओबराय की ओर से श्री त्रिवेणी प्रसाद सहाय, श्री कृपाल सिंह, श्री तिलक राम अधिवक्ता प्रस्तुत हुए तथा पटना हाईकोर्ट के अधिवक्ता श्री विश्वनाथसिंह गवाह के रूप में प्रस्तुत हुए।



6 जून 1986 को श्री अज्ञेयजी और नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री राजेन्द्र माथुर दीनदयाल शोध संस्थान के मंच से बोले। उनका निष्कर्ष यह था—राष्ट्रीयताबोध और राष्ट्र की मुख्यधारा की स्वीकृति-अस्वीकृति और पहचान का प्रश्न यदि अल्पसंख्यकों की स्वीकृति-अस्वीकृति और उनके प्रमाण पर छोड़ दिया जायेगा तो भारत ही नहीं दुनिया के किसी भी देश में राष्ट्रीयता, राष्ट्र के व्यक्तित्व और उसकी मुख्यधारा को कभी परिभाषित और रूपायित नहीं किया जा सकेगा। यह इतिहास का एक सर्वकालिक सत्य है कि भारत का अस्सी प्रतिशत बहुमत वाला समाज हिन्दू समाज है उसने ही देश का व्यक्तित्व बनाया है।

× × ×

मुसलमान लोग सबसे अधिक संकुचित और सम्प्रदायवादी हैं। उनका घोष वाक्य है—'अल्लाह केवल एक है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है। उसके अतिरिक्त जो कुछ है वह न केवल बुरा है, अपितु नष्ट हो जाना चाहिए। इस घोष वाक्य पर आस्था न रखने वालों को तुरंत मार डालना चाहिए।'

संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं है जो अपने-पराये की इस भावना का इतना अधिक शिकार रहा हो जितना कि अरब के पैगम्बर द्वारा स्थापित धर्म। और कोई दूसरा धर्म न होगा जिसने अन्य धर्मावलम्बियों पर इतने अधिक अत्याचार किए हो और रक्तपात किया हो। कुरान में यह आदेश दिया गया है कि जो इन उपदेशों को नहीं मानते उनका कत्ल कर देना चाहिए, उनकी हत्या करना उन पर दया करना है। और सुन्दर हूरों तथा सब प्रकार के ऐशो-आराम से परिपूर्ण जन्नत (स्वर्ग) को पाने का निश्चित मार्ग एक ही है और वह है इन काफिरों को मार डालना। ऐसे विश्वासों के फलस्वरूप जो भीषण रक्तपात हुआ है उसकी कल्पना तो करो।

—स्वामी विवेकानन्द



धर्म तत्त्व (सैय्यद अब्दुल्लाह बुखारी)

सैय्यद अब्दुल्लाह बुखारी ने दिनांक 6 जून 1980 को 'द रिव्यू', नयी दिल्ली में प्रकाशित भेंटवार्त्ता में अति उत्तेजित होकर क्रोध से लाल चेहरे के साथ विस्फोटकारी उत्तेजना भरे शब्दों में कहा—'हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है।'

अंग्रेजी में प्रकाशित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"....Now the Shahi Imam was agitated. He was red in the face. He burnt out to say, "Hindus do not have any religion." But he quickly recommend and said, "There is a culture. We are Muslims. We have a common religion but our loyalty is only to one country." He classified in the next sentence that the loyalty of all Muslims the world over was neither to India nor to Pakistan but only to Arabia the faith place of P. Mohd...."

इसमें विचार करने के निम्नलिखित बिन्दु हैं—

क. धर्म क्या है?

ख. धर्मों के इतिहास में हिन्दू धर्म माना जाता है या नहीं?

ग. भारत के इतिहास में, इस देश पर, यहाँ की संस्कृति पर, यहाँ के समाज पर, यहाँ के दर्शन और धर्म पर, साहित्य और कला पर हिन्दू धर्म की मुद्रा कितनी सुस्पष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है?

घ. भारत के संविधान एवं विधि-विधान में हिन्दू को धर्म स्वीकार किया गया है अथवा नहीं?

ड. संसार के प्रतिष्ठित ग्रन्थों, कोशों, विश्वकोशों में तथा विद्वानों के मत में हिन्दू को धर्म के रूप में मान्यता है अथवा नहीं?

च. भारत के अतिरिक्त नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, इंडो-चाइना के देश, दक्षिण-पूर्व एशिया के देश, उत्तर-पूर्व एशिया के देश, मध्य-पूर्व के देश, अफ्रीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया आदि में करोड़ों हिन्दू बसते हैं या नहीं?

छ. क्या संसार के सबसे बड़े मुस्लिम देश इंडोनेशिया की सदर बाली द्वीप को, जहाँ शत-प्रतिशत हिन्दू लोग बसते हैं, हिन्दू धर्म के रूप में मान्यता, सुविधा एवं सुरक्षा प्रदान करती है या नहीं? नेपाल में हिन्दू राजधर्म है अथवा नहीं? क्या फिजी, गुयाना, मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम आदि देशों में हिन्दी राजभाषा एवं हिन्दू धर्म बहुसंख्यक का प्रतिष्ठित धर्म है अथवा नहीं?

हिन्दुस्तान के मूल पुत्रवत् हिन्दू समाज के विषय में प्रश्न पूछने पर सैय्यद अब्दुल्लाबुखारी को उत्तेजित होने, चेहरा तथा आँखें लाल करके भड़क कर तिरस्कारपूर्ण वाणी बोलने का क्या अधिकार है? हिन्दू को धर्म से वंचित कर मात्र तहजीब कह देने से क्या विश्वभर के हिन्दुओं के धर्मशून्य की क्षतिपूर्ति हो जाती है?

क्या अभियोगी हिन्दू धर्म एवं संस्कृति पर व्याख्यानमालाओं के लिए देश एवं विदेश के विश्वविद्यालयों, शिक्षण-संस्थानों एवं धार्मिक संस्थानों में अनेक वर्षों से प्रवास करने के कारण कोई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा अर्जित कर चुका है या नहीं?

यदि इमाम अब्दुल्लाबुखारी का यह वचन सही मान लिया जाए कि हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है तो हिन्दू धर्म के लिए सारा जीवन समर्पित करने वाले व्यक्ति के जीवन का मूल्य स्वाभाविक रूप से शून्य हो जाता है। इस प्रकार अभियोगी की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का हनन एवं जीवन भर की तपस्या का सर्वनाश हो जाता है।

'धर्म' शब्द मत, मजहब, पंथ या रिलिजन से बहुत अधिक व्यापक अर्थ वाला है। संस्कृत की 'धृ' धातु से बनने वाले इस 'धर्म' शब्द का अर्थ है उन विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों का विश्वमंगलकारी विधान जो पूरे समाज एवं विश्व को धारण करने वाला है। वैदिक काल में इसे ही 'ऋतम्' कहा जाता था, जिसका अर्थ है विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्त। इसी 'ऋतम्' से Letn Rection, Ey. Right Ganic Raints, D.E. Right, or. Raht, आदि बने हैं। अतः धर्म विश्वव्यापी नैतिक शासन है जो सबके व्यापक कल्याण के लिए, सबके हित में उचित एवं ठीक है। भारत के ऋषियों ने इसे मानव धर्म, विश्व धर्म, सनातन धर्म, आर्य धर्म, वैदिक धर्म आदि नाम दिये। यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा, किसी विशेष भूखण्ड में, किसी विशेष देश के लिए, किसी विशेष परिस्थिति के विचार से, किसी विशेष तिथि को प्रारम्भ किया गया पंथ या मजहब नहीं है। स्थापित पंथों का कोई-न-कोई संस्थापक या पैगम्बर होता है, किन्तु सनातन धर्म किसी मानव शरीरधारी व्यक्ति द्वारा संस्थापित पंथ न होकर शाश्वत धर्म है, जिसका संस्थापक कौन है कोई नहीं बता सकता। हिन्दू धर्म राम और कृष्ण की उपज भी नहीं है वरन् राम एवं कृष्ण

स्वयं हिन्दू धर्म की फुलवारी के सुन्दरतम फूल हैं। राम एवं कृष्ण के पूर्वज स्वयं हिन्दू ही थे। इसकी तुलना में पंथों का प्रारम्भ करने वालों के अपने पूर्वज उस पंथ के अनुगामी कभी नहीं हो सकते। ईसा के पूर्वज किसी भी तर्क से ईसाई नहीं हो सकते तथा हजरत मुहम्मद के पूर्वज मोहम्मडन नहीं हो सकते।

अंग्रेजी का 'Religion' (रिलिजन) शब्द दो शब्दों से बना है—'Re'+ 'Legare'. 'Re' का अर्थ है दोबारा या वापस। 'Legare' का अर्थ है बाँधना। अतः 'Religion' का शाब्दिक अर्थ है वापस अपने मूल धाम से बँधना; क्योंकि सब जीवों का मूल धाम परमेश्वर ही है। इसलिए वापस परमेश्वर की ओर लौटना अपने मूल धाम से संबंध जोड़ना ही 'Religion' (रिलिजन) का शाब्दिक अर्थ है। (Swami Raman : His life and Legacy P. 664)

Oxford Concise dictionary के पृष्ठ 1048 पर 'Religion' शब्द के निम्नलिखित अर्थ दिए हुए हैं—

1. Monastic condition, being monk or nun (मठ-व्यवस्था, साधु या साध्वी होना)

2. Practice of sacred Rites (पवित्र कर्मकाण्ड का पालन)

3. One of the prevalent systems of faith and worship (विश्वास एवं पूजा की प्रचलित विधि)

जॉन येल के शब्दों में—Realization of divinity is religion. अर्थात्, दिव्यता की साधना ही धर्म (Religion) है। (What religion is? P. XXIV)

Religion is path of god realization or self realization.

Religion ईश्वर-प्राप्ति या आत्मसिद्धि की साधना है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं—'Religion is manifestation of the Divinity already in man.' इस प्रकार धर्म की व्यापक गोदी में समय-समय पर विकसित होने वाली भिन्न-भिन्न साधनाओं को 'Religion' कहा जा सकता है, जैसे—योग साधना, तंत्र साधना, मंत्र साधना, कर्मयोग साधना, अहिंसा-व्रत साधना, जीव-दया साधना, यज्ञ-कर्म साधना, संकीर्तन साधना, सेवा-स्मरण साधना इत्यादि। इस दृष्टि से हिन्दू व्यापक अर्थ में शाश्वत धर्म है जो अनादि है, किन्तु उसी के अन्तर्गत ब्रह्म-दर्शन या आत्मदर्शन हेतु पतंजलि, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक, कबीर आदि ने साधना के भिन्न-भिन्न पथ भी दिखाए, जिन्हें साधना-पथ या 'Religion' माना जाता है। अतः यह कहना कि 'Hindus do not have any religion', यह धर्म और 'Religion'—दोनों का अपमान होने के अतिरिक्त सत्य का भी घोर तिरस्कार है।

विश्व के धर्मों की गणना में हिन्दू धर्म सबसे प्राचीन एवं प्रतिष्ठित धर्म है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—'Three religions now stand in the world which have come down to us from time pre-historic Hinduism, Zorastrianism and Judaism.' अर्थात् ऐतिहासिक-युग पूर्व के केवल तीन ही धर्म आज संसार में विद्यमान हैं—हिन्दू धर्म, पारसी धर्म और यहूदी धर्म।'

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अपनी पुस्तक 'Hinduism' के पृष्ठ 2 पर स्पष्ट लिखा है—'Half of the population of world lives in Asia and poetesses allegiance to religion and moral ideas that undoubtedly originated in India. Sir Henry Maine has stated that, barring the blind forces of nature, there was nothing that lived and moved in the world which was not Hellenic in origin. This may be true, but it must be remembered that Hellenic thought owes a good deal to India. Philosophical speculation had well advanced in India before the time of Socrates. The conceptions of Indian seers travelled to Greece and could not have failed to make their impression on Hellenic thought.'

अर्थात् संसार की आधी जनता एशिया में रहती है और उन धार्मिक एवं नैतिक विचारों के प्रति आस्था रखती है जो निःसन्देह भारत में ही प्रकट हुए। सर हेनरी मैन ने कहा है कि प्रकृति की अंध शक्तियों को छोड़कर संसार में अन्य कुछ भी ऐसा नहीं घटा जो मूल में यूनानी न हो (अर्थात् संसार की सारी प्रगति यूनान से ही हुई)। हो सकता है यह ठीक हो, किन्तु यह अवश्य स्मरण रहना चाहिए कि यूनानी विचारधारा बहुत हद तक भारत की ऋणी है। सुकरात से पहले ही भारत में दार्शनिक चिन्तन बहुत अधिक प्रगति कर चुका था। भारत के ऋषियों के विचार यूनान तक पहुँचे तथा यूनानी विचारधारा पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहे।'

विश्वधर्म तथा धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के जितने ग्रन्थ संसार भर के विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाते हैं, उसमें हिन्दू धर्म का सम्मानजनक स्थान है। भारतरत्न डॉ. भगवानदास अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सब धर्मों की बुनियादी एकता' में पग-पग पर हिन्दू धर्म की महिमा गाते हैं—'हिन्दू धर्म में जिन तीन गुणों को 'सच्चित्-आनन्द' नाम दिया गया, उन्हीं को इस्लाम में वजूद, हद और इल्म कहा गया है। सत्, चित्, और आनन्द—तीनों चैतन्य में जा मिलते हैं। इस्लाम में चैतन्य को 'नूर' कहा गया। वही परम ज्योति या 'नूरे काहिर' भी है। उसी नूर से सारा जहान रोशन है। 'विश्व धर्म दर्शन' में श्री साँवलिया बिहारीलाल वर्मा ने आधा ग्रन्थ हिन्दू धर्म की चर्चा पर व्यय किया है और शेष आधे में संसार के

अन्य धर्मों की चर्चा की है। डॉ. राधाकृष्णन ने अपने ग्रन्थ ‘East and West in Religion’ के पृ. 26 में धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की चर्चा में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में व्याख्यान करते हुए हिन्दू धर्म की उचित प्रतिष्ठा की—‘Take for example, the case of Hinduism for many centuries its spell has bound a large part of Asia, the Middle and the far East. With its offshoots of Buddhism, Jainism and Sikhism, it appeals to millions of people, several militant creeds tried to suppress it, yet, it is still there. Many critics ancient and modern killed it, certified its death and carried out the funeral obsequies, and yet it is there....

‘Men like Gandhi and Tagore, plead guilty to being Hindus.... we want to understand the sources of its strength, the sprung of its vitality. To shut our eyes to it is an ostrich like policy which leads nowhere.’

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हमारे सनातन धर्म को ‘Religion of man’ कहा है। मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म को भी ‘मानव धर्मशास्त्र’ कहा गया है।

विश्व-विख्यात ब्रिटिश इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयनबी ने भी धर्मों की चर्चा में हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठा का स्थान दिया है। जर्मन दार्शनिक स्विट्जर ने भी भारतीय दर्शन एवं हिन्दू धर्म की विशद् चर्चा की है।

सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है, ‘Hinduism is not only a Religion but a Synthesis of Religion.’

भारत के इतिहास, संस्कृति एवं कला पर हिन्दुत्व की छाप

डॉ. एनी बीसेंट ने लिखा है—‘India & Hinduism are one’. (भारत और हिन्दुत्व—दोनों एक और अभिन्न हैं)।

‘....और यदि हिन्दू ही हिन्दुत्व का संरक्षण नहीं करेंगे तो कौन इसे बचाएगा? यदि भारतमाता की अपनी सन्तानें ही अपने धर्म के प्रति निष्ठावान् नहीं रहती तो कौन इसकी रक्षा करेगा? विदेशी कलेवर में कोई भी वह नहीं कर सकता जो अपने स्वदेश में कर सकता है। मेरा भारत के लिए कितना भी प्रेम, कितनी भी सेवा की पूर्णता, कितनी भी भक्ति की अनन्यता, इस विदेशी शरीर में वह नहीं कर सकती जो आप भारत के लाल कर सकते हैं। अतः हम भी, जिनके हृदय हिन्दू हैं, और जिनके पूर्वज हिन्दू रहे हैं, हम केवल आपकी सहायता कर सकते हैं, मुख्य कार्य आपको स्वयं ही करना होगा।

'भूलो मत! हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्तान का कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह जनन-भूमि है जिसमें भारत की जड़ें स्थापित हैं, और उससे उखाड़ देने पर वह अनिवार्य रूप से मुरझाकर मर जाएगा, जैसे एक वृक्ष को उसके मूलस्थान से उजाड़ देने पर होता है। बहुत से धर्म हैं और बहुत सी जातियाँ हैं जो भारत में फल-फूल रही हैं, किन्तु उनमें से कोई भी उसके अतीत के अति दूर प्रथम सूर्योदय तक नहीं पहुँच पाती, तथा न ही वे उसके राष्ट्र के रूप में जीवित रहने के लिए आवश्यक है। उनमें से प्रत्येक जैसे आया था भले ही चला जाए, और भारत फिर भी बना रहेगा। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को लुप्त होने दो, तो भारत क्या बचेगा? भूतकाल का एक भौगोलिक आभास मात्र, विनष्ट वैभव की धुँधली स्मृति मात्र! उसके इतिहास, उसके साहित्य, उसकी कला, उसके स्मारकों—सभी पर हिन्दुत्व ही अंकित है।

जरथ्रुस्त्र का पारसी धर्म भारत में शरण के लिए आया और उसके पुत्रों को भारत में शरण एवं स्वागत मिला; किन्तु पारसी धर्म भले ही चला जाए, तब भी भारत भारत ही रहेगा। बौद्धधर्म यहीं पर स्थापित हुआ, किन्तु बौद्ध धर्म लुप्त हो गया और भारत भारत ही है। इस्लाम एक आक्रमण की लहर बन कर आया, और मुसलमान भारतीय राष्ट्र के अंग बने हुए हैं, तथा इसके भविष्य के निर्माण में योगदान करेंगे; फिर भी इस्लाम भले ही चला जाए, भारत भारत ही रहेगा। ईसाइयत आई है, और ईसाई भारत में शासन करते हैं तथा इसके विभिन्न पक्षों को प्रभावित करते हैं; फिर भी ईसाइयत भले ही चली जाए और भारत भारत ही रहेगा। भारत उनके आगमन से पहले भी जीवित था; और भारत उनके चले जाने के बाद भी जीवित रह सकता है। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को जाने दो, हिन्दुत्व जो भारत का शैशव का झूला रहा है, और उसके लोप में ही भारत की मृत्यु हो जाएगी। तब भारत, भारत के धर्म के साथ, केवल स्मृति शेष बचेगा, जैसे मिस्र एवं मिस्र के धर्म आजकल हो गए हैं। तब भारत बचेगा मात्र प्राचीन इतिहास का एक विषय, पुरातत्त्व की वस्तु, चीर-फाड़ के लिए शवमात्र, किन्तु वह देशभक्ति की वस्तु नहीं बचेगा, वह राष्ट्र नहीं रहेगा।' (डॉ. एनी बीसेंट का हिन्दू आदर्शों पर व्याख्यान, सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस; हिंदुइज्म थ्रूदि एजेज, जी. एल. शर्मा पृष्ठ 118-119)

डा. रामधारीसिंह दिनकर कहते हैं—भारत का एक दुर्भाग्य सैक्यूलरिज्म भी है।...भारत के सैक्यूलर राज्य की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान बराबर नहीं है। हिन्दू एक ही विवाह कर सकता है, मगर मुसलमान के विवाह की संख्या पर रोक नहीं है। और यह तो है ही कि हिन्दू अगर दूसरा विवाह करना चाहे, तो उसे मुसलमान हो जाना पड़ेगा।

शिक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि धार्मिक शिक्षा के बिना भारत की संस्कृति नहीं बचेगी, किन्तु भारत की सैक्यूलर सरकार अपने ही द्वारा स्थापित शिक्षा आयोग के सुझाव पर अमल करना नहीं चाहती। सैक्यूलरिज्म का इस गलत अर्थ में प्रयोग जवाहरलाल जी के जोर से बढ़ा और डा. राजेन्द्र बाबू तथा डा. राधाकृष्णन् राष्ट्रपति होते हुए भी उस प्रवाह को रोक न सके। फिर भी डा. राधाकृष्णन् को यह श्रेय अवश्य दिया जायगा कि उन्होंने दो-एक भाषणों में यह खुलासा कर दिया कि सैक्यूलरिज्म का अर्थ धर्मनिरपेक्षता नहीं, बल्कि असांप्रदायिकता है।

—धर्मयुग 14 सितम्बर 1969, पृष्ठ 12-13

(अपूर्ण)



धर्म

मनुष्य मात्र के लिये धर्म एक मूलभूत आवश्यकता है, और कट्टरता एवं धर्मोन्माद से यदि इसे मुक्त रखा जाये तो यह नीति, नैतिकता, दया, भलाई एवं सामाजिक व आर्थिक न्याय का कभी समाप्त न होने वाला झरना है और साथ ही मनुष्य को सभ्य बनाने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी।

—नानी. ए. पालखीवाला



धर्म तत्त्व

'धर्म, संयम का मंगल मर्यादा कवच एवं मानव की अन्तरात्मा का कर्तव्यानुशासन है, जिस पर मानवता टिकी हुई है। धर्मानुशासन लुप्त हो जाने पर विश्व का कोई भी राज्य शासन मानवता को नहीं बचा सकता। आज विश्व के चारित्रिक संकट के समय विश्व के सर्वोत्तम धर्म, धर्मों के आदि स्रोत सनातन हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता सबसे अधिक है।

उत्तम धर्म वह नहीं जिसने आग और तलवार द्वारा दुनिया को रौंद डाला हो, देवालय ध्वस्त, जनगण त्रस्त, परिवार अस्त-व्यस्त, धर्म निरस्त, विश्वविद्यालय ज्वालस्थ कर नरमांस पर, नर शोणित से जघन्य बर्बरता की क्रूर कहानी लिख कर अपने पंथ का फैलाव किया है। उत्तम धर्म वह भी नहीं जिसने क्रूसेड और इन्-क्विजिशन द्वारा व्यापक नरसंहार किए। भिन्न पंथ वालों को लाखों की संख्या में तेल छिड़ककर जीवित जलाया तथा आलोचकों के गड़े हुए शवों को कब्र से निकाल कर टॉवर ऑफ लंदन पर फांसियां दीं।

उत्तमता की कसौटी है विश्व मंगल की निःस्वार्थ साधना। बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने तथा किसी मां-बहन की मान मर्यादा को लूटे, परहित के लिए आत्म त्याग एवं आत्म यज्ञ, जो कि हिन्दू धर्म का आधारभूत संस्कार है। आर्य धर्म की इसी महत्ता के कारण ही महात्मा ईसा हिन्दू आचार्यों का शिष्य बनकर भारत में शिक्षा-दीक्षा हेतु आया तथा हजरत मुहम्मद के पितृव्य-पुरुष अबु हिक्म हिन्द देश, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू देवों की स्तुतियां गाते थे।'

आज भारत एवं मानवता के परम कल्याण के लिए हिन्दू धर्म की रक्षा परम आवश्यक है। जहां इस्लाम और ईसाइयत एक ही खम्भे (एक पैगम्बर और एक ग्रंथ) पर टिके हुए भवन हैं वहां हिन्दू धर्म सहस्रों-स्तम्भों पर खड़ा एक सुदृढ़ सनातन भवन है। यदि अन्य पंथों का एक पाया ही हिल जाए तो वे धराशायी हो जाते हैं, किन्तु सनातन हिन्दू धर्म, युगों के झंझावातों तथा काल के क्रूर आक्रमणों के उपरान्त भी मृत्युंजय है।

सनातनधर्मी हिन्दू का नाम रत्नलाल शर्मा हो तो आर्यसमाजी होने पर रतनलाल आर्य, जैन बनने पर रत्नलाल जैन, बौद्ध भिक्षु बनने पर भिक्षु रत्ननिधि,

सिख बनने पर रत्नसिंह नाम रखता है। किन्तु मुसलमान बनने पर मौलाना अलाउद्दीन और ईसाई बनने पर माईकल स्कॉट कहलाने लगता है। विदेशी पंथों द्वारा भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का उच्छेद कर भारतीयों को विदेशी संस्कृति का गुलाम बना लेना आज के युग का सबसे बड़ा राष्ट्रीय संकट है।

हिन्दू कभी भी साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। जो हिन्दू को साम्प्रदायिक कहते हैं वे स्वयं में घोर साम्प्रदायिक हैं। जो दूसरे आक्रमक सम्प्रदायों को प्रसन्न करने के लिए हिन्दू की एकमात्र मातृभूमि हिन्दुस्तान की हत्या करके पाकिस्तान बनवाते हैं वे कांग्रेसी भी स्वयं अत्यन्त घृणित दर्जे के साम्प्रदायिक हैं जो हिन्दुओं की जनसंख्या पर अंकुश लगाने के लिए हिन्दू कोडबिल बनाते हैं तथा जबरन परिवार नियोजन का अभियान चलाते हैं। वे स्वयं राष्ट्रघाती, साम्प्रदायिक हैं।

दिल्ली के शासकों की गद्दी तभी तक सुरक्षित है जब तक कि हिन्दू का बहुमत है। हिन्दू के अल्पसंख्यक में होते ही विधर्मी दिल्ली के शासकों को उठाकर नदी या समुद्र में फेंक देंगे।

हिन्दू संस्कृति का दूसरा नाम शक्ति है। समस्या शक्ति के अभाव की नहीं है, वरन् उसके सही संयोजन की आवश्यकता है। हिन्दुत्व ही हिन्दुस्तान का प्राण है। यदि हिन्दू घटा तो हिन्दुस्तान मिट जाएगा।

मुस्लिम लीग कांग्रेस को देश की प्रतिनिधिक संस्था न मानकर हिन्दुओं की संस्था मानती थी। ब्रिटिश शासन भी हिन्दुओं की ओर से कांग्रेस को और मुसलमानों की ओर से मुस्लिम लीग को आमंत्रित करता था। किन्तु कांग्रेस हिन्दू को साम्प्रदायिक ही मानकर, कोसती रही। हिन्दू का हित न कांग्रेस ने देखा, न अंग्रेजों ने और न मुसलमानों ने। परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान कट गया और हिन्दुओं का व्यापक जनसंहार हुआ।

जहां इस्लाम और ईसाइयत दूसरे धर्मों से द्वेष करने वाले अंधविश्वासी सम्प्रदाय हैं वहां हिन्दू धर्म कोई पंथ, सम्प्रदाय, अंधविश्वास या पूजा पद्धति मात्र न होकर भारत की राष्ट्रीय संस्कृति है। हिन्दुत्व को सम्प्रदाय कहना राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता दोनों का घोर तिरस्कार है।



हिन्दू धर्म भारत माता के प्रति शत-प्रतिशत भक्ति का धर्म है। धर्म अथवा राजनीति के माध्यम से राष्ट्र बाह्य श्रद्धायें राष्ट्र के प्रति द्रोह का मार्ग प्रशस्त कर देती है।

—डॉ. ओबराय



मजहब से रक्तपात एवं अशान्ति : धर्म से विश्व मंगल एवं शान्ति

संसार के सभी निष्पक्ष विचारकों एवं धर्म-द्रष्टाओं का यही निर्णित मत है कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म ही सर्वोत्तम एवं सर्व कल्याणकारी है। भगिनी निवेदिता (मूलतः आइरिश महिला), डॉ. एनी बीसेंट (ब्रिटिश विचार नेत्री), रोमां रोलां (फ्रेंच साहित्य मनीषी), अर्नाल्ड टायनबी (विश्वविख्यात ब्रिटिश इतिहासकार), विल डूरेंट (सभ्यता के इतिहास के महानतम अमरीकी लेखक) का मत है कि धर्म तो केवल हिन्दू-धर्म ही है; शेष सब पंथ, सम्प्रदाय, मजहब मात्र हैं जो नश्वर मानवों द्वारा धरती के भिन्न-भिन्न भूखण्डों में काल सरिता की नश्वर तिथियों पर किसी सीमित-लौकिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित किये गये। न वे अनादि है और न शाश्वत। पंथों और पैगम्बरों की परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण जो भीषण रक्तपात एवं बर्बर जनसंहार हुए उसी ने कार्लमार्क्स जैसे क्रान्तिद्रष्टा को भी नास्तिक बना दिया। जहाँ पंथों ने नर मांस और नर शोणित से अपनी बर्बरता की क्रूर कहानी लिखी वहाँ विश्व मंगलकारी सनातन हिन्दू धर्म ने बिना किसी की रोटी, बेटी या आजादी को लूटे मानवता के परम मंगल हेतु अपनी मृत्युंजयी संस्कृति के अमृत को विश्व के प्रत्येक देश एवं जाति को निःस्वार्थ भाव से बाँटा।



हिन्दुत्व अध्यात्म क्षेत्र की खुली प्रयोगशाला है।

—डा. राधाकृष्णन्

× × ×

भारतीय संस्कृति का उद्धार केवल भारत के लिये ही आवश्यक नहीं है वरन् इसलिये भी कि उससे सारे संसार का कल्याण होगा।

—डा. रामधारीसिंह दिनकर



ऋषियों के संदेश का पालन ही हमारा राष्ट्र धर्म है यानी धर्म तत्त्व

मानव जीवन धर्म के बिना अपूर्ण है। भारत में धर्म शब्द बड़ा सार्वभौम एवं विश्वजनीन है। अतः हिन्दू धर्म ही वस्तुतः धर्म है। शेष केवल मजहब, मत-सम्प्रदाय आदि हैं।

भारत एक धर्मप्राण देश है। धर्म व्यक्ति एवं समाज को अपने-अपने कर्तव्य धर्म में बांधने वाला आधारभूत तत्त्व है। यहां धर्म जैसे निगूढ़ तत्त्व की व्याख्या केवल शास्त्रों में ही नहीं की गई वरन् इस धर्मप्राण देश के धर्म विग्रह महापुरुषों ने अपने जीवन के सजीव शास्त्र के द्वारा भी धर्म तत्त्व पर जीते जागते अनुपम भाष्य प्रस्तुत किए हैं। अतः महापुरुषों के मार्ग का अनुसरण ही धर्म का सुगम राजमार्ग है।

अनादि-काल से भारत के ऋषियों ने धर्म की व्याख्या की है। लेकिन किसी ने अन्तिम नहीं माना। क्योंकि उससे चिन्तन में गतिरोध होता है। राष्ट्रधर्म, मानव धर्म एवं स्वधर्म भारतीय संस्कृति की विशेषता है। अपने प्रति, परिवार एवं मातृ भूमि के प्रति जो हमारा महती कर्तव्य है, वही हमारा धर्म है। अतः स्वदेश एवं स्वधर्म की रक्षा ही भारतीयों का धर्म है।

अपना धर्म माता के समान पवित्र होता है। जिस तरह हमें अपनी माता को बदलने का अधिकार नहीं है, उसी तरह हमें धर्म बदलने का अधिकार नहीं है। ईसाई पादरियों के बहकावे में आकर हमें अपना धर्म नहीं बदलना चाहिए। क्योंकि ये लोग हमें बहकाकर भारत के प्रति विद्रोह को उकसाते हैं।

धर्म सर्वाधिक मूल्यवान

मानव की समस्त संपदाओं में यदि कोई सर्वाधिक मूल्यवान संपदा है जिसे न खरीदा जा सकता है न बेचा जा सकता है, न नीलाम किया जा सकता है, न लूटा जा सकता है तथा न ही मानव द्वारा चुनाव किया जा सकता है तो वह धर्म ही है, जो केवल ईश्वरीय वरदान है तथा उसको बदलने या लूटने का मनुष्य का प्रयास एक अक्षम्य अपराध है। शत प्रतिशत भारत भक्ति के अधिष्ठान के बिना भारतीय राष्ट्र का निर्माण अधूरा रहेगा। अतः अभारतीय निष्ठा के वायुमण्डल को शुद्ध कर पावन भारत निष्ठा का प्रसार ही शुद्धि हवन का उद्दिष्ट है।

धर्म के नाम पर राष्ट्रीयता लूटने वालों से सावधान

भारत भूमि पर पैदा होने वाला प्रत्येक व्यक्ति भारत का लाल है। भारत भूमि सभी धर्मों की माता है। जो लोग धर्म के नाम पर जनता को गुमराह करते हैं; उन्हें विघटन पैदा करने के लिए प्रेरित करते हैं, वे निश्चय ही भारत के शत्रु हैं। वे नहीं चाहते कि भारत एक शक्ति सम्पन्न, आत्मनिर्भर राष्ट्र बने। वे नहीं चाहते कि भारत का कल्याण हो। धर्म के नाम पर विदेशी पादरी देश को बांटने का षड्यंत्र करते हैं। इन धोखेबाज पादरियों से हमें सावधान रहना चाहिए।

भारतीय राष्ट्र एवं संस्कृति पर हिन्दुत्व की अमिट छाप

भारत एक धर्मप्राण देश है। यहाँ स्वदेश एवं स्वधर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारत के धर्मग्रन्थों में वेद से लेकर विवेकानंद साहित्य तक सर्वत्र देशभक्ति, देवभक्ति के साथ-साथ चलती है। अतः सच्चा देशभक्त न कभी स्वदेश से, स्वधर्म से द्रोह करता है न परधर्म (अन्य पंथों) की निन्दा ही करता है। अपने स्वदेश से विद्रोह की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार सच्चा धर्मात्मा न कभी स्वदेश से द्रोह कर सकता है न अन्य देशों से अकारण घृणा करता है तथा न किसी प्रतिष्ठित धर्म या सम्प्रदाय का तिरस्कार करता है। भारत में देशभक्ति ही सर्वोच्च धर्म भी है तथा भारत भक्ति ही भगवान् की भक्ति भी सिद्ध होती है। चारों धामों की तीर्थयात्रा के धार्मिक कृत्य से राष्ट्रीय एकता का जो चमत्कार हिन्दू धर्म ने करके दिखाया है वह विश्व इतिहास में अद्वितीय है। इस स्वदेश एवं स्वधर्म की एकता का मूल कारण यही है कि हमारे देश ने सदा विश्वमंगल की साधना की है तथा हमारा धर्म विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित सच्चा विश्वधर्म ही रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हमारा राष्ट्रीय आदर्श तथा 'सर्वधर्म समभाव' हमारा धार्मिक आदर्श रहा है।

इसकी तुलना में कुछ देश दूसरे देशों को कुचल कर पराधीन बनाने में अपनी शान दिखाने वाले होते हैं तथा कुछ धर्म-सम्प्रदाय दूसरे धर्मों के प्रति घृणा का विष फैला कर विद्वेष की अग्नि फूंकने में ही अपने पंथ की महानता मानते हैं। वे विश्व शान्ति के वैरी तथा मानवता के घोर शत्रु सिद्ध हुए हैं।

जामा मस्जिद, दिल्ली के इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी ने वीक एण्ड रिव्यू (Week and Review) नई दिल्ली के 7 जून 1980 के अंक में प्रकाशित एक भेंटवार्त्ता में अति उत्तेजित वक्तव्य दिया और यह हिन्दुओं की अतिशय उदारता की आत्मघाती अतिसीमा ही समझनी चाहिए कि देश की किसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिका में अब्दुल्ला बुखारी के अपराधपूर्ण, अपमानकारी कथन का उत्तर देते हुए बुद्धि सम्मत, तर्कपूर्ण उद्बोधक लेख नहीं छपे। इसकी तुलना में मुस्लिम समाज

इतना अधिक जागरूक एवं पूर्वाग्रह ग्रस्त है कि इस्लाम के हित अथवा इतिहास पर कहीं आक्षेप या आलोचना हो तो वे संसार भर में एक अवांछनीय तूफान खड़ा कर देते हैं। यरुशलम में कोई ऑस्ट्रेलियावासी अल-अक्सा मस्जिद को जलाने का प्रयास करे तो भारत के मुसलमान अपना सारा गुस्सा हिन्दुओं पर निकालना प्रारम्भ करते हैं। अहमदाबाद के जगन्नाथ मंदिर पर धावा बोल देते हैं, संध्या को गोचर भूमि से लौटने वाली गायों को काट देते हैं और हिन्दुओं की बस्तियों में आग लगा देते हैं। इसी प्रकार हजरत मुहम्मद साहब के विषय में अमेरिका में छपी हुई पुस्तक का समाचार 'स्टेट्समैन कलकत्ता' में छपता है तो वे धर्मान्ध लोग स्टेट्समैन कलकत्ता के कार्यालय को आग लगा देते हैं। चौदहवीं सदी पूरी होने वाले दिन अगर कुछ बन्दूकधारी मुसलमान ही काबा की मस्जिद की मीनारों में ऊपर चढ़कर नीचे आंगन में नमाज पढ़ने वाले हज यात्रियों पर गोली चलाते हैं तो उसका गुस्सा कोलकाता और हैदराबाद के हिन्दुओं पर हिंसक आक्रमण, गोलीबारी और अग्निकांड के रूप में निकालना कहाँ तक तर्कसंगत है?

भारत में हिन्दुओं की हत्या, दुकानों, ट्राम-गाड़ियों का जलाना काबा की मस्जिद की मुक्ति और इस्लाम की रक्षा में कैसे सहायक हो सकता है और कुरान के शरअी कानून के अनुसार यह कहाँ तक न्यायोचित है?



रोमां रोलां जो प्रथम जीवन में मार्क्सवादी था, मार्क्सवाद से मोह भंग होने पर ईसाइयत की ओर झुका, वहाँ भी अपने जीवन की उलझनों का समाधान न पाकर भारत की ओर झुका और वहाँ समाधान पाकर कहता है—मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परन्तु मुझे उन सबमें हिन्दू धर्म ही सर्वश्रेष्ठ दिखाई देता है...मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत् को सिर झुकाना पड़ेगा।

अन्यत्र कहता है—अगर संसार की सतह पर कोई ऐसा देश है, जहाँ जीवित लोगों के सभी स्वप्नों को, उस प्राचीन काल से स्थान मिला है जबसे मनुष्य ने अस्तित्व का स्वप्न आरम्भ किया, तो वह देश हिन्दुस्तान है।



संस्कृति का स्वरूप निर्धारण

समास में—दो पदों को निकट लाकर रख दिया जाता है और उनको जोड़ने वाले शब्द 'और, का, की,' आदि को हटा दिया जाता है। पर दोनों पदों का अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व या व्यक्तित्व कायम रहता है। जब चाहे इन दोनों पदों को अलग कर सकते हैं। जो दो पद का एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है वो दोनों को निकट लाकर रख देते हैं। जैसे—माता-पिता, पिता-पुत्र आदि।

समन्वय—समन्वय में दो समान महत्त्व की वस्तुएं अपना-अपना पृथक् अस्तित्व-व्यक्तित्व खो करके एक नई उत्कृष्ट वस्तु बना देती हैं। दोनों का पृथक् अस्तित्व खो जाता है। फिर उसे चाहने पर भी अलग नहीं किया जा सकता। जैसे—नीबू और चीनी मिलकर उत्कृष्ट पेय शर्बत बनता है। दूध और चीनी मिलकर उत्कृष्ट पेय मीठा दूध बनता है।

समरसता—जैसे गंगा में गंदी-गंदी नालियां और छोटी-मोटी नदियां आकर उसमें विलीन हो जाती हैं। गंगा के पानी को गंदा कर देती हैं। गंगोत्री या ऋषिकेश के गंगा का जल हावड़ा में पहुंचते-पहुंचते गंदा हो ही जाता है, यह लाचारी है। सहन कर लिया जाता है। इसलिए उन छोटी-छोटी नालियों या नदियों ने अपना अस्तित्व ही विलीन कर दिया है, उससे गंगा थोड़ी दूषित भले ही हो जाए पर बाद में गंगा उसे आखिर अपने में पचाकर गंगासागर ही बना देती है।

भारतीय संस्कृति शक, हूण, कुशाण की संस्कृतियों का भारतीयकरण करके इस तरह से पचा गई कि उनके पृथक् अस्तित्व के चिह्न खोजने पर भी नहीं मिलते। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल में अपने शुद्ध रूप में और भी अच्छी थी। यह नहीं कि शकों-कुशाणों की संस्कृति से भारतीय संस्कृति अच्छी हो गई है। अन्य संस्कृतियों ने तो इसके स्वरूप को विकृत ही किया है। पर चूंकि उन संस्कृतियों ने अपना अस्तित्व भारतीय संस्कृति में विलीन कर दिया तो भारतीय संस्कृति भले ही कुछ मलिन हुई हो पर भारतीय संस्कृति ने उनका भी भारतीयकरण करके, अपने अन्दर उसको पचाकर वैदिक आर्य संस्कृति ही बना दिया।

हमें सामासिक संस्कृति भी नहीं चाहिए। जिसमें दोनों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व सदैव के लिए बना रहता है।

हमें समन्वय भी नहीं चाहिए। क्योंकि इसमें दो समान महत्त्व की वस्तुएं चाहिए।

हमें समरसता चाहिए। कोई कहे इस्लामी संस्कृति और भारतीय संस्कृति में समरसता होनी चाहिए तो कहना ही गलत होगा। क्योंकि इस्लामी संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को प्रारम्भ से ही नष्ट करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी संस्कृति को हमेशा अलग-जुदा रखने का प्रयास किया है। अपनी संस्कृति के आधार पर देश का बंटवारा किया और अभी भी उनका यही प्रयास चल रहा है।

अगर भारतीय संस्कृति से बाहर किसी संस्कृति में उत्कृष्ट वस्तु मिलती है तो पहले खोजें, वह हमारी संस्कृति में भी विद्यमान थी कि नहीं। अगर थी पर बीच में लुप्त हो गई तो उसे पुनः जीवित करें और अगर नहीं तो उसका भारतीयकरण करके अपनी संस्कृति में समाविष्ट कर लें।



भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं। भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरी जवानी की फुलवारी, मेरा पवित्र स्वर्ग और मेरे बुढ़ापे की काशी है। भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है। मैं भारतवासी हूं और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

हिन्दू संस्कृति की अपूर्व शक्ति और दीघार्यु का सर्वप्रमुख कारण प्रकटतः भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और परस्पर विरोधाभासी आस्थाओं की व्यवस्थित तथा समायोजित करने की इसकी क्षमता है। अनेक रूपी तत्त्वों को समायोजित करने और उन्हें सामाजिक और अलग पहचान देने की इसकी योग्यता संभवतः मानव इतिहास में अभूतपूर्व हैं।

—विलियम कॉस



भारतीय संस्कृति

यद्यपि संस्कृति भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधी जा सकती है, फिर भी, जिस भूमि पर वह निर्माण होती है उस भूमि से संबंध अवश्य रखती है। और वह उस भूमि के नाम से ही विश्व में पहचानी जाती है।

आपने भारत की सामासिक संस्कृति की वृथा कल्पना का पूर्ण खण्डन किया है। भारतीय संस्कृति (Indian Culture) से किसी भी खिचड़ी संस्कृति की कल्पना तक विश्व के विद्वान् नहीं कर सकते।

भारतीय संस्कृति से शुद्ध हिन्दू संस्कृति का ही बोध होता है। 'इंडियन फिलॉसफी' से वेदोपनिषद्, प्राचीन दर्शन तथा जैन व बौद्ध दर्शनों का ही निर्देश पाया जाता है। भारतीय संस्कृति के विशेष स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि अपनी यह संस्कृति पशुमानव से मानव, मानव से देव मानव, देव मानव से ब्रह्म तक जीव को उठाने वाली प्रक्रिया क्रमशः व्यक्ति के सामने रखकर उसको प्रत्यक्ष रूप से धीरे-धीरे समझा-बुझाकर व्यष्टि से समष्टि तक उसका विकास साधन करती है और आत्मदर्शन कराती है। इसलिए पुरुषार्थों की योजना भी उसमें है, जिसमें अर्थ और काम भी समाविष्ट हैं।

संस्कृति

संस्कृति उन आधारभूत मूल्यों का विकास एवं अध्ययन है जिनसे मानव जीवन को वास्तविक मूल्य मिलता है तथा नर-पशु संस्कारित होकर सच्चे नरत्व, देवत्व एवं ब्रह्मत्व को पाता है। जो संस्कृति मानव का संस्कार कर उसे परिष्कृत न कर सके वह संस्कृति कहलाने योग्य नहीं है। उदाहरणार्थ—अमरीका आदि पाश्चात्य देशों में जीवन के सुख-साधनों का विकास कर जीवन स्तर ऊंचा किया गया है। किन्तु, मानवीय गौरव गरिमा का स्तर नीचे गिर गया है। पश्चिम के उत्तम रोटी, कपड़ा, मकान आदि सुख-साधनों से सम्पन्न किसी विलासी व्यक्ति की तुलना में महात्मा गांधी जैसा लंगोटधारी अथवा वनवासी राम जैसा वल्कल वस्त्रधारी महापुरुष सांस्कृतिक दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

हमारी संस्कृति की जीवन क्षमता

हमारी संस्कृति विविधरूपिणी एवं बहुमुखी रही है। युद्ध एवं शांति की प्रत्येक कला, राजनीति एवं शासन व्यवस्था, संगीत तथा साहित्य, स्थापत्य अथवा प्रतिमा निर्माण कौशल, नृत्य एवं चित्रकला हमारी इस भव्य संस्कृति के विकास का परिचय देती है। समस्त विश्व भारतीय संस्कृति का प्रशंसक है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि समय-समय पर विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप हमारे देश में अनेक संस्कृतियों ने अपना प्रभाव छोड़ना चाहा, परन्तु भारतीय संस्कृति ने अन्य संस्कृति को समेट कर आत्मसात् कर लिया। यह इसके प्राणवान होने का चिह्न है। आर्यकाल से चली आती भारतीय संस्कृति को आज इस बात का गर्व है कि सहस्रों वर्षों से उसका जीवन प्रवाह निरन्तर एवं अविच्छिन्न है, जबकि मिस्र, बेबीलोन, यूनान, रोम की संस्कृतियों का कोई अवशिष्ट चिह्न तक नहीं दिखाई देता। संसार के इतिहास में 11 सौ वर्षों तक अराजकता में रहकर अरक्षित, इतने आक्रमण और लूटमार सहकर नौ सौ वर्ष तक विदेशी धर्म एवं संस्कृति, मुस्लिम एवं अंग्रेज शासकों के शासन में रहकर भी इसने अपने जीवन, जाति एवं सभ्यता को अक्षुण्ण बनाए रखने में अमरता एवं मृत्युंजयता का ठोस प्रमाण दिया। भारतीय संस्कृति ऐसे भयंकर प्रहारों को सहकर भी अपनी अमर संस्कृति की आधारशिला पर स्थित है। इसकी अजेयता ने विश्व भर के इतिहासज्ञों को भी चकित कर दिया है। क्योंकि उनको ऐसा उदाहरण ही नहीं मिलता।

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यता में समन्वय

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक है। पाश्चात्य संस्कृति भोगवादी है। भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति में समन्वय हो सकता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का भौतिक उन्नति से कोई विरोध नहीं है।

पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार भौतिकता स्वयमेव साध्य है, लक्ष्य है, परमगति है। पर भारतीय संस्कृति के अनुसार भौतिकता मात्र साधन है, जिसकी

सहायता से हम आध्यात्मिकता में पहुंचते हैं। भौतिकता एक सोपान है, सीढ़ी है जिसके सहारे से आध्यात्मिकता में पहुंचते हैं। अत: भौतिकता एक साधन मात्र है।

पाश्चात्य देशों ने आज विज्ञान में बहुत उन्नति की है। पर भारत में भी प्राचीनकाल में विज्ञान की कम उन्नति नहीं हुई थी। हां, आज का जो विज्ञान का स्वरूप है प्राचीन भारत के विज्ञान के स्वरूप से भिन्न हो सकता है। हम विज्ञान में बहुत आगे बढ़े हुए थे और आज के विज्ञान से कम विकसित नहीं थे।

विज्ञान की प्रगति के पूर्व जिन मजदूरों को 16-16 घंटा काम करना पड़ता था उन्हीं मजदूरों को विज्ञान की प्रगति के कारण 8 घंटा या 6 घंटा मात्र काम करना पड़ता है।

इससे हमारे समय की बचत हुई है। इस खाली समय का उपयोग किस में किया जाए? भारत के अनुसार इसका उपयोग आध्यात्मिक उन्नति में किया जाए। पर पाश्चात्य देशों के अनुसार भौतिक सुखों को भोगने के लिए किया जाए। यानी फिल्म देखने, टेलीविजन देखने, नाच-गान, तमाशों में किया जाए।

संस्कृति भारत की हो और सभ्यता पाश्चात्य की हो। यही सुन्दर समन्वय है।

भोगवादी, पश्चिम अध्यात्मवादी भारत की ओर ताक रहा है

सभ्यता जीवन के सुख-साधनों का विकास है। संस्कृति जीवन के आदर्शों का विकास है। सभ्यता शरीर को ही अन्तिम सत्य मानकर उसके भोगों को उपलब्ध कराने की दौड़-धूप है और संस्कृति आत्मा को परम सत्य मानकर चारित्रिक एवं आध्यात्मिक गुण सम्पदा की साधना है। सभ्यता जीवन का शृंगार है और संस्कृति जीवन का सार है। जहां पश्चिम ने मानव के बहिरंग शरीर एवं विषय-भोगों मात्र की खोज की है वहां भारत ने मानव के अन्तरंग शाश्वत जीवन का अनवरत अध्ययन एवं आविष्कार किया है।

बिना सार के मात्र शृंगार वैसे ही है जैसे प्राणविहीन शव की पुष्प-सज्जा। इसलिए अमरीका जैसे सबसे धनी, सभ्य एवं ऐश्वर्य सम्पन्न देश में आत्महत्याएं सबसे अधिक हो रही हैं। वहां 33 प्रतिशत डॉक्टर मानसिक चिकित्सक हैं। क्योंकि एक-तिहाई जनता मानसिक रोगों से ग्रस्त है। इसलिए आज पश्चिम भारत की ओर देख रहा है।

संस्कृति के दो पक्ष होते हैं उसमें से एक की उपेक्षा का दुष्परिणाम

पाश्चात्य संस्कृति न होकर मूलतः पाश्चात्य सभ्यता है। पाश्चात्य ने इहलोक के भौतिक सुखों, समृद्धि पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। परलोक की पूर्णतः उपेक्षा की है। भौतिक सुखों की उसने खूब समृद्धि की है और उसी को अपना जीवन सर्वस्व मानकर मोक्ष की पूर्णतः उपेक्षा की है।

भारत ने धर्म और मोक्ष पर अधिक बल दिया और इहलोक की उपेक्षा की। जिसका इहलोक खराब है उसका परलोक सुन्दर होगा उसकी आशा नहीं की जा सकती। जिसका पेट भरने योग्य अन्न जुटाने में सारा दिन व्यय हो जाता है फिर भी पेट भरने योग्य अन्न नहीं जुटा पाता, वह परलोक के विषय में सोच ही नहीं सकता। जो इहलोक में दर-दर का भिखारी हो तो वह परलोक के सुखद स्वप्नों में अपनी निष्ठा कायम नहीं रख सकता और न ही उसके धर्म के प्रति निष्ठा बचाकर रखी जा सकती है।

इसलिए जो धर्म इहलोक को उपेक्षित करके परलोक के सुखद सपने को दिखाता है वह धर्म टिक नहीं सकता। वैसे धर्म को कुछ विचारकों ने अफीम की गोली कहा, जो इहलोक को उपेक्षित कर परलोक के सुखद स्वप्नों में मानव को भुलाये रखता है। अतः कोई भी धर्म अर्थ की उपेक्षा करके किसी को धर्म की ओर उन्मुख और उसके प्रति आस्था को जीवित नहीं रख सकता। इसलिए विवेकानन्द ने कहा—'दरिद्रो देवो भवः।'

प्राचीनकाल में ऐसा नहीं था। देश भौतिक सम्पदा से परिपूर्ण था। विज्ञान, सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय चरित्र, सामाजिक संगठन, वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति पर पूरा ध्यान दिया गया था।

मध्ययुगीन संतों द्वारा जगत् मिथ्या ब्रह्म सत्यम् की अव्यावहारिक व्याख्या और सामाजिक संगठन, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय चरित्र, आर्थिक उन्नति की पूर्णतः उपेक्षा कर परलोक को ही सर्वस्व समझ लिया। जिसके कारण देश की यह दुरावस्था हो गई।

हमारी महान् संस्कृति के पतन का क्या कारण?

भारत संसार का सबसे प्रथम सभ्य राष्ट्र है। संस्कृति के क्षेत्र में यह विश्व का गुरु रहा है। जितने अलौकिक महात्माओं को भारत ने उत्पन्न किया है उसकी उपलब्धि विश्व में कहीं नहीं है। श्री रामचन्द्र की नैतिकता, श्री कृष्णचन्द्र के गीतोपदेश एवं उनका रण-कौशल, बुद्ध की करुणा, महावीर की जीवदया, शंकराचार्य की दार्शनिक प्रतिभा, आर्यभट्ट एवं भास्कराचार्य का गणित ज्ञान, वराहमिहिर का ज्योतिर्विज्ञान, भीम-अर्जुन का बल-पौरुष, कपिल की दार्शनिक दृष्टि, व्यास-वाल्मीकि के महाकाव्य, कालिदास-भवभूति के काव्य दर्शन, चाणक्य की कूटनीति, चन्द्रगुप्त का दिग्विजय और राष्ट्र निर्माण, श्री हर्ष एवं भामाशाह की महानता, प्रताप की तपस्या, गुरु गोविन्द सिंह का संकल्प, शिवाजी की विजिगीषु-वृत्ति आदि के महान् सद्‌गुणों से विभूषित हमारा समाज रहा है।

किन्तु इतने महान् एवं नैतिक तथा आध्यात्मिक सद्‌गुणों से अलंकृत हमारा यह समाज संसार की पतित एवं चरित्रभ्रष्ट जातियों के समूह से पददलित हो लगभग एक हजार वर्ष तक दीनता एवं पराधीनता का नारकीय जीवन क्यों भोगता रहा? क्या सज्जन, नीतिमत् आध्यात्मिकता का यही पुरस्कार होता है? क्या यह न्याय है कि तपस्वी-महात्मा लोग एक हजार वर्ष तक पापी म्लेच्छों की मार खाते रहे? आखिरकार हमारी पराधीनता का सबसे बड़ा कारण क्या रहा?

संस्कृति विहार भवन में संगीत सम्मेलन

जहां पश्चिमी नृत्य संगीत मात्र इन्द्रिय भोग एवं मनोविनोद का साधन है वहां भारतीय नृत्य संगीत मानव को मन एवं इन्द्रिय के बंधन से मुक्त कर आत्म सुख, आत्मानंद प्रदान करने वाला है। पाश्चात्य नृत्य में केवल संघर्षपूर्ण गति एवं अशांति के लक्षण मिलते हैं, वहीं भारतीय नृत्य में तीव्रतम गति में भी संतुलन रखा जाता है जो अशांति में भी शांति का संदेशवाहक है। पाश्चात्य मानव आज रॉकेट की गति से चलने में समर्थ हो गया है किन्तु संतुलन की कमी के कारण वह भीषण मनोरोगों का शिकार हो रहा है। इसलिए पाश्चात्य देशों में भी भारतीय नृत्य संगीत की तीव्र मांग है।

इन शब्दों में विगत दिवस संस्कृति विहार भवन में आयोजित एक विराट् नृत्य संगीत सम्मेलन का उद्‌घाटन करते हुए संस्कृति विहार के निदेशक श्री हरवंशलाल ओबराय ने भारतीय ललितकलाओं के जीवनदायी संदेश पर प्रकाश डाला।

भारत की विदेश नीति

भारत के ऋषियों ने कहा—मम देशो भुवन त्रयम्। अर्थात् तीनों ही भुवन मेरा ही देश हैं। सारे विश्व को परिवार मानने वाले ऋषियों ने घोषणा की—वसुधैव कुटुम्बकम्। विश्व के राष्ट्र अपने ही भाई-बंधु हैं तो इसमें कौन अपना और कौन पराया?

जैसे किसी बड़े परिवार के बंधु-बांधव सब एक ही मकान में न रहकर सुविधानुसार भिन्न-भिन्न भवनों में रहते हैं इसी प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्र परस्पर बंधु होते हुए भी देश-काल पात्र, परिस्थिति और सुविधा के विचार से भिन्न-भिन्न भौगोलिक खण्डों में व भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में रहते हैं। जैसे भिन्न-भिन्न नगरों में बसने वाले बंधु हजारों मील की दूरी के उपरान्त भी बंधु ही रहते हैं, शरीरों की दूरी के उपरान्त भी मन से समीप रहते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के लोग समुद्र पार विदेशों में बसने के उपरान्त भी वस्तुतः बंधु ही हैं।

भारत की विदेश नीति का यह आदर्श सूत्र है। इसलिये युक्ति बुद्धि से अपने राष्ट्र की हितसाधना करते हुए सारे संसार में विश्वबंधुत्व की भावना का विकास करना हमारा उद्देश्य है।

वैदेशिक नीति के लिये अंग्रेजी शब्द है—Diplomacy नीति व्यवहार, चातुरी। इसका प्रायः अर्थ माना जाता है चालाकी। इसमें ऊपर से विदेशों के प्रति मित्रभाव दिखाकर भीतर से स्वार्थ साधन किया जाता है। इसी को कूटनीति भी कहते हैं। कूट शब्द का अर्थ ही झूठ या छल है। कूटनीति शतरंज के खेल के समान है जिसमें हमारा दूसरे से व्यवहार में अन्ततोगत्वा मात करना या पराजित करना ही उद्देश्य होता है। पाश्चात्य विदेश नीति की कल्पना यही है। विदेशों में विदेश मंत्री की सफलता का मापदण्ड ही यही है कि कितने देशों को सहायता या सेवा की आड़ में अपने देश की स्वार्थ पूर्ति के लिये उस देश विशेष को और उस देश विशेष से दूसरे देशों को सताना, परस्पर में लड़ाना और अपनी इच्छानुसार नचाना है। इसमें जो सफल होता है वही सफल विदेश मंत्री कहा जाता है। किसी भी सहायता या समर्थन में उनकी चाल निहित रहती है जिससे कभी बाज नहीं आते। एक देश को दूसरे देश से लड़ाते रहना जिससे वे सदैव निर्बल बने रहें, जिससे उस देश पर उनका

प्रभुत्व बना रहे और उनकी इच्छानुसार नाचते रहें। अमेरिका और रूस की विदेश नीति का यही लक्ष्य है। जितनी भी अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएं हैं वे उनके स्वार्थ साधन के अखाड़े बने हुए हैं। उदाहरण के लिये भारत को निर्बल बनाये रखने और संघर्षों में उलझाये रखने के लिए अमेरिका का पाकिस्तान को मित्र बनाना आदि।

भारत ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार वैदेशिक नीति के द्वारा विश्व कल्याण की साधना की। भारत ने अपने इतिहास के विभिन्न चरणों में कभी भी न तो किसी देश की स्वतन्त्रता पर डाका डाला, न तो अर्थ पर, न धर्म पर, न सांस्कृतिक जीवन को तहस-नहस किया और ना ही अर्थिक सहायता या सैनिक सहायता के माध्यम से किसी भी देश का किसी भी प्रकार का शोषण किया है। विश्व के भूतल पर कोई भी देश, जो अपने राष्ट्र के हित को साधते हुए, उसको खंडित नहीं करते हुए सदैव शांति का प्रहरी बना रहा तो इस अर्थ में भारत विश्व को मार्गदर्शन देता रहा है। अपने राष्ट्र का अहित न हो और विश्व का कल्याण हो, ऐसी साधना हमारी प्रथम से रही है। हाँ, हम अपने राष्ट्र का अहित करके विश्व का मंगल नहीं चाहते। हम अपने राष्ट्र का हित-साधन करते हुए विश्व हितसाधना में सतत कर्मरत हैं। इसलिये भारत जब अपने विषय में सोचता है तो विश्व की समस्याओं को भी अपने समक्ष रखता है।

आदर्श विदेश नीति सभी दूसरे देशों को अपने समान मानकर चलती है। वह दूसरों पर आधिपत्य या प्रभाव या दादागीरी जमाकर नहीं चलती। हम जब दूसरों का सम्मान करते हैं तब वे भी हमारा सम्मान करते हैं। यदि हम अजातशत्रु हैं तो हमें संसार भर में मित्र ही मित्र दिखाई देंगे।

विदेश नीति में हम न अपना सम्मान खोवें न दूसरों के सम्मान का हनन करें। अमेरिका तथा रूस दोनों अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत अपनी आर्थिक सहायता या सैनिक सहायता या सन्धियों द्वारा दूसरे देशों को अपना पिछलग्गू बनाकर रखना चाहते हैं।

पं. नेहरू ने अपनी विदेश नीति में भारत को अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में लाकर भारत को 35 अरब के विदेशी ऋण के नीचे दबा दिया। इतने बड़े ऋण को चुकाना भारत के लिये कठिन ही नहीं असम्भव हो गया है। इसके बदले देश की इज्जत या स्वाधीनता बिक सकती है।

श्रीमती इ. गाँधी ने विदेश नीति में रूस के प्रभाव क्षेत्र में आकर देश पर रूसी लोगों का वर्चस्व बढ़ा दिया। भिलाई, बोकारो, H.S.C. रांची, पतरातू आदि में सर्वत्र रूसी प्रभाव है। भारत का धन विदेशों की जेब में जाता है।

टेक्निशियन Expert के नाम पर मोटे वेतन भी देने पड़ते हैं, उनकी मशीनें खरीदनी पड़ती हैं तथा वे भारत में प्राप्त राशि से कम्युनिज्म का खुला प्रचार-प्रसार भी करते हैं।

सफल विदेश नीति अपने राष्ट्र की अखण्डता नष्ट नहीं होने देती। दुर्भाग्य से हमारी चीन के प्रति नीति असफल रही। उसने तिब्बत को खा लिया। हमने पंचशील पर हस्ताक्षर किये वही हमारे लिये पंचशूल बन गया। भारत की 16000 वर्गमील भूमि अभी तक चीनी दरिंदों के पांव के नीचे पड़ी है। पाकिस्तान ने कश्मीर की 30,000 वर्गमील भूमि दबा रखी है। बसवाड़ा और कच्छ के रण में हमने पुनः देश की भूमि गंवाई है।

सफल विदेश नीति की मांग है कि हम न दूसरों को ठगें और न दूसरों से हम ठगे जावें। हमें चतुर-चालाक तो रहना चाहिये किन्तु छली नहीं होना चाहिये। इस दृष्टि से भी विगत 30 वर्षों के कांग्रेसी शासन में हम बार-बार ठगे गये। तिब्बत के मामले में हम ठगे गये। कश्मीर के मामले में हम ठगे गये। ताशकन्द के समझौते में हम बुरी तरह ठगे गये।

पड़ोसी छोटे देशों से सम्बन्ध ऐसे होने चाहिये थे कि वे भारत जैसे महान् देश को अपना स्वाभाविक नेता मानते। पर स्थिति बनी है ठीक इसके विपरीत। नेपाल, भूटान, लंका, बर्मा सभी उलटे भारत पर पाद प्रहार करने लगे।

जनता सरकार ने विदेश नीति को पुनः सुधारा है। विदेश मंत्री थोड़े काल में ही अनेक देशों की यात्राओं पर जा चुके हैं। वे प्रायः कहते हैं—हम भूमि से अलग-अलग एवं बंटे हुए बेशक हैं किन्तु हमारे हृदय बंटे हुए नहीं हैं। अन्य देशों के हृदयों को स्पर्श कर उनके हृदय से बात करना एक सफल विदेश नीति का लक्षण है।

भारत संस्कृति का दिव्य मन्दिर है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत जगद्गुरु है। अतः अन्य देशों पर राजनीतिक वर्चस्व बनाने की अपेक्षा अपनी संस्कृति की सुधा सब देशों को पिलाना एक महान् आदर्श है।

राजनीतिक वर्चस्व द्वारा दूसरे देशों को गुलाम बनाते हैं पर संस्कृति के प्रकाश द्वारा हम उन्हें मुक्ति का आनन्द बांटते हैं।

राजनीतिक हस्तमिलाप (Hand shake) केवल स्वार्थ पर आधारित होता है तथा आज का राजनीतिक हस्तमिलाप कल के राजनीतिक घूसे में बदल सकता है। पर सांस्कृतिक हस्तमिलाप युगों तक दो राष्ट्रों को मित्र बनाकर रखता है। अतः विदेश नीति में अन्य देशों से सांस्कृतिक आदान-प्रदान परम लाभकारी होता है। विदेश मंत्री एवं राजदूतों को संस्कृति का ज्योतिघर बनकर प्रकाश फैलाना चाहिये। भिन्न-भिन्न देशों में परस्पर बहुत सी भ्रान्तियाँ एक-दूसरे के निकट जाने पर दूर होती हैं।

When you look into the eyes of a foreigner you discover that he is a brother.

इस प्रकार सफल विदेश नीति द्वारा विश्वशांति स्थापित हो सकती है।

हमारे पड़ोसी शिष्य देश

जो भारत विश्व का गुरु रहा है, आज दुर्भाग्य से अपने सभी पड़ोसियों तथा कल तक के शिष्यों के लात-घूंसे तथा चाबुक खाने वाला अभागा नौकर जैसा बन गया है। सन् 1947 में पश्चिमी पंजाब, सिंध सीमाप्रांत, ब्लोचिस्तान, कश्मीर एवं पूर्वी बंगाल में लाखों हिन्दुओं को तलवार के घाट उतारा गया। नन्हे बच्चों को भालों की नोकों पर उछाला गया, नंगी महिलाओं के जुलूस निकाले गये, भवन जलाये गये, धन, प्राण एवं मान-मर्यादा लूटी गई तथा करोड़ों लोगों को उनके हजारों वर्षों के परंपरागत निवास से निर्वासित कर दर-दर का भिखारी, शरणार्थी बना दिया गया।

चीन जो दो हजार वर्ष तक भारत का शिष्य रहा, उसने भी सन् 1962 में तिब्बत की हत्या के उपरांत भारत के लद्दाख एवं नेफा क्षेत्रों पर निर्लज्ज बर्बर आक्रमण कर दिया।

ब्रह्मदेश से (जो सन् 1936 तक भारत का अंग था) लाखों भारतवंशियों की धन-संपत्ति लूट कर उन्हें देश से निकाल दिया गया।

नेपाल जैसे हिन्दू राष्ट्र ने भी भारतीयों के लिए कठोर नियम बनाने प्रारंभ किए हैं तथा उसने भी भारत के संरक्षित राष्ट्र की स्थिति त्याग कर संयुक्त राष्ट्र-संघ में अपनी स्वतंत्र सदस्यता स्वीकार कर ली है। उसको बहुत अधिक आर्थिक सहायता देकर—चीन, रूस, अमेरिका, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश भारत के खिलाफ भड़काते रहते हैं।

भारत एवं लंका के सांस्कृतिक सम्बन्ध इतने पुराने हैं जितना कि विश्व का प्रथम महाकाव्य वाल्मीकि रामायण।

अब श्रीलंका में भी, जो विभीषण के काल से अब तक भारतीय संस्कृति का भक्त रहा, गत 2300 वर्षों से भगवान बुद्ध के संदेश से अनुप्राणित रहा तथा सन् 1936 तक भारत का अंग भी रहा, वहाँ भी आज भारतवंशियों की सामूहिक हत्या, आगजनी, लूट-पाट, व्यापक हिंसा द्वारा श्रीलंका से निकालने या नामशेष करने का खूनी नाटक चल रहा है।

भारत की इस अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा-हानि का कारण क्या है? भारत की विदेशों में जो प्रतिष्ठा थी वह सैन्य शासन शक्ति के कारण न होकर भारत की महान नैतिक और आध्यात्मिक संस्कृति के कारण ही थी। उदार हिन्दुत्व कोई पंथ, संप्रदाय या मजहब न होकर इस देश की चिरंतन संस्कृति है। किन्तु जब हमारे प्रशासक हिन्दुत्व को संप्रदाय कहकर भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन-मूल्यों को सांप्रदायिक कूड़ा-करकट कहकर कूड़ेदानी में फेंक देते हैं, तब न भारत की भावात्मक एकता का आधार बचता है तथा न भारत के जगद्‌गुरुत्व का ऐतिहासिक सम्बन्ध-सूत्र। जिस संस्कृति के उज्ज्वल दीपस्तंभ से अन्य देश प्रकाश पाते थे उसके स्वयं प्रकाशविहीन हो जाने पर पड़ोसी उसे नमस्कार करने के स्थान पर पत्थर ही मारेंगे। संस्कृति को छोड़कर केवल कूटनीतिक सम्बन्ध मात्र रखने से हम सम्मान तो कभी पा नहीं सकते, हाँ, कूटनीतिक दांव-पेंच में कभी-कभी अपमान तो अवश्य पा सकते हैं। राजनीति तोड़ती है संस्कृति जोड़ती है। श्रीलंका और भारत के राज्य और राजनीति दोनों भिन्न हैं। अतः दोनों में स्वार्थों का संघर्ष स्वाभाविक है। किन्तु जिस संस्कृति ने हजारों वर्षों से लंका को भारत का कृतज्ञ शिष्य बनाया है, उस संस्कृति के सम्बन्धों को सजीव एवं सुदृढ़ करने की कोई प्रभावी योजना आज भारत सरकार के पास नहीं है। राजनीति स्वार्थों का अखाड़ा है। संस्कृति उदात्त जीवनमूल्यों की संस्कार परंपरा है। जो सिंहली राजनीतिक विद्वेष में भारतवंशियों को भ्रमवश राष्ट्र शत्रु मानकर उन पर गोलियाँ चलाता है, वही एक भारतीय महापुरुष भगवान बुद्ध के चरणों में अपना तन-मन-धन समर्पित करता है तथा भारतीय तीर्थों की धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है। राजनीति काटने वाली कुठारिका है और संस्कृति जोड़ने वाली संजीवनी-सुधा।

अतः पुनः सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने से राजनीतिक स्वार्थों की आंधिया छंट जाने पर पुरानी स्मृतियाँ कौंधेगी तब ये देश पुनः भारत के चरणों में आ सकते हैं। क्योंकि कोई भी देश एकाएक पूर्णतया बदल नहीं सकता। समय पाकर पुरानी स्मृतियाँ जागेगी तब पुनः भारत ही विश्वगुरु के पद पर स्थापित होगा और सारा विश्व सौख्य शांति का अनुभव करेगा। भारत के पास ही वह कर्तृत्व, व्यक्तित्व, वह भाव, वह दृष्टि है जो सारे विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है। सुलझे हुए पश्चिम के विचारकों की दृष्टि में भारत ही भावी विश्व की आशा का केन्द्र है।



'धर्म में जीवन का शाश्वत विधान प्रतिष्ठित है।'

—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)



जनतन्त्र

जनतन्त्र का स्वामी जन ही होता है। वास्तविक प्रभुसत्ता जनार्दन की ही है। तन्त्र तो जन की इच्छानुसार चलने वाला प्रशासन का रथ है। प्रजातन्त्र का शाब्दिक अर्थ है प्रजा का तन्त्र। यानी प्रजा मालिक है और तन्त्र उसका नौकर है, जो प्रजा की इच्छानुसार चलने वाला है। अंग्रेजी में Minister शब्द का अर्थ ही होता है नौकर या अभिकर्ता (दलाल)। Minister Staff का अर्थ है नौकर-चाकर। अतः लोकतन्त्र में लोक ही सारे प्रशासन का स्वामी होता है तथा शासनतन्त्र के मंत्री, उपमंत्री, प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री आदि उसके वशवर्ती नौकर-चाकर हैं।

जनतन्त्र का आधारभूत सिद्धान्त है मानव व्यक्तित्व की पवित्रता और स्वतन्त्रता। प्रजातन्त्र के मन्दिर में कोई देवता है तो वह मनुष्य ही है। उसकी गरिमा का विकास ही लोकतन्त्र की पूजा-प्रतिष्ठा है। मानव की स्वाधीनता लोकतन्त्र की प्राणवायु है। भगवान वेदव्यास जैसे आध्यात्मिक महर्षि ने भी कहा है—

न हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित

अर्थात् मनुष्य से परे और कोई सचाई नहीं है। अतः इस तन्त्र में तन्त्र मात्र सेवक के समान कार्य करता है। सेवक को सदा स्वामी की इच्छानुसार कार्य करना चाहिये। पर स्वामी की इच्छा कैसे जानी जाय यह एक समस्या है। इस समस्या को हल करने के लिये जनतन्त्र में चुनाव का प्रावधान किया गया है।

चुनाव लोकतन्त्र के फेफड़े हैं। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में फेफड़े श्वास लेते हुए हर बार उत्तम वायु को श्वास द्वारा भीतर खींचते हैं तथा गंदी विकृत वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर फेंकते हैं, उसी प्रकार लोकतन्त्र को जीवित एवं स्वस्थ रखने के लिये चुनाव द्वारा उत्तम समाजसेवी, संस्कृतिनिष्ठ सज्जनों को शासन-तन्त्र में लाना तथा गन्दे-सड़े भ्रष्ट शासकों को हराकर बाहर फेंकना प्रत्येक लोकतन्त्र-प्रेमी नागरिक का प्रथम कर्तव्य है।

चुनाव जनता की इच्छाओं का मापदण्ड भी है कि जनता क्या चाहती है।

लोकतन्त्र की चुनाव प्रणाली में कुछ त्रुटियाँ एवं चोर दरवाजे भी रह जाते हैं जिनके द्वारा अल्पमत वाले भी बहुमत के ऊपर शासन करने लग जाते हैं।

मूर्खों का शासन

इसमें Quality का Quantity गला घोट देती है। इसमें विद्वान और मूर्ख दोनों को एक ही तराजू में तौला जाता है। विश्व में एक शिक्षित व्यक्ति के पीछे 9-10 मूर्ख व्यक्ति हैं। अब अगर मूर्ख व्यक्ति संगठित हो जायं तो सज्जन व्यक्ति टिक नहीं सकते। इसलिये इकबाल ने कहा है—

डेमोक्रेसी एक ऐसा तर्ज जमा है इकबाल,
यहाँ सिर गिने जाते हैं सिर तोले नहीं जाते।

किसी भी देश में लगभग आधी जनता को मतदान का अधिकार होता है यानी 50% को मतदान का अधिकार है। फिर भारत जैसे देश में अशिक्षा एवं राजनीतिक चेतना के अभाव में 40-45% मतदान होता है वह भी 8-10 राजनीतिक दलों में विभाजित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप 40-45% का 25-30% मत पाकर शासन करते हैं। इस प्रकार 50% को वोट नहीं=1/2, उसमें से 50% ने वोट डाला नहीं=1/4 यानी उसके 25-30% वोट पाकर शासन करते हैं। देश की 1/3 जनता के 1/12 या 1/16 भाग का समर्थन पाकर लोग शासन करते हैं। अर्थात् 6% लोगों के मत से 94% पर शासन होता है।



आदिकाल से भारत की धार्मिक परम्परा में अपना एक विशेष गुण रहा है। उसमें विशालता और लोच है तथा वह सतत प्रगतिशील है। 'विभिन्नताओं में एकता'—इस विचार को हमारे धर्म ने अपने इतिहास में कभी विलग नहीं होने दिया। वह सामाजिक संस्थाओं की विशेषताओं और उसके व्यक्तिगत अधिकारों का तब तक आदर करता है, जब तक वे उस सामाजिक व्यवस्था से मेल खाते हैं जो सदियों से उसके साथ ताने-बाने की तरह बुनी गयी है।

—डा. राधाकृष्णन्

× × ×

योगी अरविन्द ने कहा है, 'भूतकाल का गौरव, वर्तमान की पीड़ा और भविष्य के सपने जिस देश के नौजवानों में रहते हैं वह देश प्रगति करता है।



एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख

भारतीय मानव विज्ञानी के बजाय संस्कृति-विशेषज्ञ से लिखाने की मांग

रांची (ए.स.)—संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने एक वक्तव्य में कहा है कि यह बड़े ही हर्ष का विषय है कि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के सम्पादकीय बोर्ड ने ब्रिटेनिका के अगले संस्करण के लिए 'दक्षिणी एशियाई संस्कृति' पर लेख तैयार करने के लिए एक भारतीय विद्वान् को आमंत्रित किया है। यह तो और भी सम्मान और गौरव की बात है कि यह कार्य मेरे सम्मानीय मित्र, रांची विश्वविद्यालय के मानव विभाग के विभागाध्यक्ष डा. ललिताप्रसाद विद्यार्थी को सौंपा गया है। परन्तु मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि भारतीय संस्कृति के प्रति न्याय एवं ज्ञान के प्रति न्यायसंगतता के हित में यह अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य आर्य-संस्कृति के किसी अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् को सौंपा जाना चाहिये था। दक्षिणी एशियाई संस्कृति के अन्तर्गत भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत, थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, मलाया, सिंगापुर, इन्डोनेशिया, पॉलिनेशिया, प्रशान्त द्वीपसमूह, फिलिपीन, हांगकांग, चीन आदि देश आ जाते हैं। संक्षेप में उपरोक्त कार्य का अभिप्राय है वृहत्तर भारत का अध्ययन। स्व. डा. रघुबीर वृहत्तर भारत के महानतम अध्येता थे। उनके सुपुत्र डा. लोकेशचन्द्र उनके पद-चिह्नों का ही अनुसरण कर रहे हैं और अपने पिता द्वारा प्रज्वलित ज्ञान-मार्ग को और प्रशस्त करने में लगे हैं। इनके अलावा कुछ अन्य विश्व-ख्यातिप्राप्त आर्य-संस्कृति विशेषज्ञ भी हैं जैसे—डा. आर. सी. मजूमदार, डा. आर. सी. छाबड़ा, डा. बी. आर. चटर्जी, डा. बुद्ध प्रकाश, प्रो. के. ए. एन. शास्त्री, डा. बैजनाथ पुरी आदि ऐसे विद्वान् हैं जिन्होंने उपरोक्त विषय पर काफी प्रामाणिक, उच्च कोटि की सामग्रियाँ प्रस्तुत की हैं। उचित तो यह होता कि इस विषय में अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन, पूना या अन्तरराष्ट्रीय प्राच्यविद् कांग्रेस से परामर्श लिया जाता।

श्री ओबराय ने कहा है कि हमें बड़ी ही प्रसन्नता होती यदि डा. विद्यार्थी

को मानव विज्ञान विषय जैसे दक्षिण बिहार के जनजातीय जीवन पर लिखने को कहा जाता। संस्कृति मूल्यों का अध्ययन-विषय है जातीय वंशों का नहीं। प्रो. ओबराय ने अपने वक्तव्य में आशा व्यक्त की है कि एन्साक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का सम्पादकीय बोर्ड उनके उपरोक्त सुझावों पर विचार करेगा।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका : संस्कृति लेख आवंटन पर विवाद

हम लोगों को आपके समाचार-पत्र के 17 अक्टूबर के अंक में 'स्थानीय एवं प्रान्तीय समाचार' स्तम्भ के अन्तर्गत 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख भारतीय मानव विज्ञानी के बजाय संस्कृति विशेषज्ञ से लिखाने की मांग' शीर्षक समाचार को पढ़कर ज्ञात हुआ कि 'संस्कृति विहार' के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने ऐसी मांग की है। प्रो. ओबराय ने मानव विज्ञान को संस्कृति से अलग माना है। किन्तु यह उनका भ्रममात्र है। वस्तुतः मानव-विज्ञान संस्कृति का ही अध्ययन है।

यह पहला अवसर नहीं जबकि डा. विद्यार्थी को इस तरह का सम्मान दिया गया हो।

प्रो. ओबराय के कथन का तात्पर्य यह है कि डा. विद्यार्थी को यह सम्मान देकर भारतीय संस्कृति के प्रति अन्याय किया गया है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में आर्य-संस्कृति पर नहीं किन्तु दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख लिखने को कहा गया है। 'द. एशियाई संस्कृति का प्रयोग प्रो. ओबराय एवं उनके मित्र आर्य-संस्कृति तक ही सीमित रखते हैं। दक्षिणी एशियाई संस्कृति को मात्र आर्य-संस्कृति समझना प्रो. ओबराय की संकीर्णता का द्योतक है। मानवशास्त्री संस्कृति शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से करते हैं। मानव वैज्ञानिक के अनुसार संस्कृति शब्द के अन्तर्गत मात्र आर्य-संस्कृति नहीं वरन् समस्त संस्कृतियाँ—आर्य-अनार्य, आदिम जातीय एवं जनजातीय संस्कृति—सम्मिलित हैं और दक्षिण एशियाई संस्कृति इन समस्त संस्कृतियों का समन्वय है न कि केवल आर्य-संस्कृति।

डा. विद्यार्थी को यह सम्मान देकर एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के सम्पादकीय बोर्ड ने पूर्ण न्याय किया है। डा. विद्यार्थी का संस्कृति का अध्ययन मात्र पुस्तकीय ही नहीं वरन् संस्कृति का उनका अध्ययन संस्कृति की गोद में जाकर, सहभागिक अवलोकन पर आधारित होता है।

प्रो. ओबराय ने डा. विद्यार्थी को जातीय वंशों का विशेषज्ञ माना है जबकि सारी दुनिया उन्हें संस्कृति विशेषज्ञ, मानव विज्ञानी मानती है।

हम एन्साइक्लोपीडिया के सम्पादकीय बोर्ड से आशा करते हैं कि प्रो. ओबराय के विचारों की ओर ध्यान न देकर संस्कृति के निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक अध्येता के ज्ञान से वंचित न हों।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका

संस्कृति लेख आवंटन पर विवाद

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के सम्पादकीय मण्डल ने डा. ललिताप्रसाद विद्यार्थी को दक्षिण एशियाई संस्कृति पर लेख लिखने के लिए जो आमंत्रण दिया है उस पर मैंने जो वक्तव्य दिया है (रांची एक्सप्रेस, 17 अक्टूबर, 71) वह शुद्ध कर्तव्य भावना से प्रेरित है। डा. विद्यार्थी मेरे मित्र हैं, किंतु मेरे लिए भारत का हित तथा ज्ञान का सम्मान किसी भी मित्र की मित्रता से अधिक मूल्यवान है।

डा. विद्यार्थी ने मेरी प्रतिक्रिया का स्वयं कुछ उत्तर न देते हुए अपने तीन छात्रों से 'रांची एक्सप्रेस' के दिनांक 7 नवम्बर के अंक में सम्पादक के नाम एक पत्र प्रकाशित कराया है जिसमें मेरे सुझाव को संकीर्णता एवं मेरे मत को भ्रममात्र लिखा गया है। मैंने इस विषय में अपनी प्रतिक्रिया का प्रकाशन अखिल भारतीय समाचार-पत्रों में तथा इंग्लैण्ड और अमेरिका के पत्रों में भी किया है।

मेरा विनम्र तर्क निम्न है—

(1) नृतत्त्व अथवा 'मानव विज्ञान' (Anthropology) जातियों के वंशानुक्रम का अध्ययन है। कुछ मात्रा में इस विषय के अन्तर्गत सभ्यता के विकास का अध्ययन भी किया जाता है, जिसे कोई भ्रमवश संस्कृति का नाम दे दे तो उसकी भारी भूल है।

(2) संस्कृति जीवन का सार है और सभ्यता जीवन का शृंगार है।

(3) नृतत्त्व में जीवन के उन आधारभूत मूल्यों का अध्ययन नहीं किया जाता जिनसे मानव जीवन को वास्तविक मूल्य मिलता है तथा नर-पशु संस्कारित होकर सच्चे नरत्व, देवत्व एवं ब्रह्मत्व को पाता है। जो संस्कृति मानव का संस्कार कर उसे परिष्कृत न कर सके वह संस्कृति कहलाने योग्य नहीं है। उदाहरणार्थ, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में जीवन के सुख-साधनों का विकास कर जीवन-स्तर ऊंचा किया गया है किंतु मानवीय गौरव-गरिमा का स्तर नीचे गिर गया है। पश्चिम के उत्तम रोटी, कपड़ा, मकान आदि

सुख-साधनों से सम्पन्न किसी विलासी व्यक्ति की तुलना में महात्मा गाँधी जैसा अथवा वनवासी राम जैसा लंगोटीधारी या वल्कल वस्त्रधारी महापुरुष सांस्कृतिक दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

(4) भारतीय संस्कृति के अध्ययन को भारतीय विद्या (Indology) कहते हैं। सारे पूर्वी देशों के सांस्कृतिक अध्ययन को प्राच्य विद्या (Orientology or Oriental Studies) कहा जाता है। दक्षिण एशियाई संस्कृति पर संसार के महानतम विश्वकोश (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका) के लिए लेख निश्चय ही किसी भारत विद्या विशारद अथवा प्राच्य विद्या विशारद द्वारा लिखवाना चाहिए, किसी नृतत्त्व शास्त्री द्वारा नहीं, यही मेरा साग्रह निवेदन है। Indologist के लिए आर्य-संस्कृति विशेषज्ञ शब्द न देकर भारत विद्या विशेषज्ञ का प्रयोग होना चाहिए।

(5) Anthropology तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। संसार भर के नृतत्त्व-शास्त्री श्री हनुमान को राम से भिन्न अनार्य, दक्षिण वासी वानर, वनवासी कहते रहेंगे। किंतु संस्कृति ने दोनों को ऐसी एकरूपता दे दी कि हनुमान के रोम-रोम में राम समा गया तथा संस्कृति की सुधा द्वारा यह राष्ट्रीय एकात्मता का चमत्कार हुआ है।

(6) दक्षिण एशियाई क्षेत्र में जितने भी देश हैं, सबके सब भारतीय संस्कृति से प्रभूत मात्रा में प्रभावित हैं। अतः भारतीय संस्कृति के विद्वान् ही इस विषय के साथ न्याय कर सकते हैं।

(7) डा. विद्यार्थी का संस्कृत ज्ञान एवं संस्कृति का ज्ञान आधिकारिक नहीं है। चम्पा में हजारों संस्कृत शिलालेख हैं, थाईलैंड एवं इन्डोनेशिया में सहस्रों शिलालेख एवं तारपत्र ग्रंथ हैं जो भारतीय संस्कृति के प्रभाव की घोषणा कर रहे हैं। सारे दक्षिण एशिया की भाषाओं, लिपियों, उत्सवों, मन्दिरों पर भारत की छाप है। डा. विद्यार्थी इन तथ्यों से अनभिज्ञ हैं तथा उक्त देशों की भाषा का अक्षर-ज्ञान भी नहीं रखते। इसकी तुलना में देश में ऐसे विद्वान् जीवित हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इन्हीं विषयों की शोध में लगा दिया है। निश्चय ही उनमें से किसी को विश्वकोश में लिखने के लिए आमंत्रित करना संस्कृति का उचित सम्मान होगा।

(8) यह सर्वविदित तथ्य है कि एन्साइक्लोपीडिया में भारतीय दर्शन पर लेख के लिए भारत के महामहिम राष्ट्रपति, विश्व-मनीषा के मणिमुकुट डा. राधाकृष्णन को आमंत्रित किया जाता था।

हमारी विनम्र प्रार्थना है कि दक्षिण एशियाई संस्कृति पर प्रामाणिक लेख

लिखने के लिए भारत विद्या अथवा प्राच्य विद्या के किसी विश्वविख्यात विद्वान् को आमंत्रित किया जाना चाहिए, जो कि हमारे मित्र डा. विद्यार्थी निश्चय ही नहीं हैं। अधिक शालीनता तो इसी बात में होगी यदि प्रो. विद्यार्थी स्वयं ही इस लेख को लिखने में अपनी असमर्थता ज्ञापित कर देवें ताकि भारत के प्रति व ज्ञान-साधना के प्रति उचित न्याय हो सके।



हमें अपने प्राचीन साहित्य में, धर्म में, शास्त्र में जिस विद्या का भग्नांश ही प्राप्त हुआ है उसकी तुलना में आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की सारी विद्या है नवजात शिशु का अर्थहीन प्रलाप मात्र। जैसे शिशु जो पदार्थ भी सामने देखता है उसे हाथ में उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोड़कर बाह्य जगत् का थोड़ा-बहुत ज्ञान संचय करता है किन्तु जगत् क्या है, पदार्थ का असली स्वरूप क्या है व सम्बन्ध क्या है, कुछ भी नहीं जानता, वैसे ही पाश्चात्य विज्ञान प्रकृति के सब स्थूल पदार्थ हाथ में उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोड़कर कुछ ज्ञान संचय करता है। किन्तु जगत् क्या है, पदार्थ का असली स्वरूप क्या है, स्थूल-सूक्ष्म में क्या सम्बन्ध है, इस विषय में वह कुछ नहीं जानता और इस विद्या के अभाव में पदार्थ के वास्तविक स्वभाव से अवगत नहीं हो पाता।

—ऋषि अरविन्द

× × ×

भारत की मूल विशेषता यद्यपि अध्यात्मिक क्षेत्र में है। तथापि भौतिक रूप से भी भारत अन्य पाश्चात्य देशों से अधिक समृद्ध रहा है...और आज भी है। अभाव है तो सिर्फ स्वाभिमान की जागृति का। अमृत पुत्रो! अपने गौरवशाली अतीत को पहचानो, गर्व करो...और जुट जाओ देश को पुनः वैभवशाली स्थिति में पहुँचाने के लिए।

—स्वामी विवेकानन्द



बौद्ध धर्म के पतन का कारण

भगवान बुद्ध एवं महावीर दोनों वंश-परंपरा से क्षत्रिय थे। किन्तु उन्होंने क्षत्रियजनों की मृगया, युयुत्सा, शस्त्रचर्या एवं हिंसा त्याग कर शाकाहारी (शुद्धाहार) एवं अहिंसा (शुद्धाचार) का व्रत लिया था। सम्राट् अशोक भी प्रियदर्शी अशोक बना। बौद्ध धर्म के राजधर्म घोषित हो जाने के पश्चात् देश की बहुसंख्यक जनता बुद्धं शरणं गच्छामि गाने लगी। काशी के राजा सुधन्वा द्वारा भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने पर उसकी रानी चिन्ता के आंसू बहाने लगी। सर्वे बौद्धा बौद्धाः को वेदानुर्थाख्यते अर्थात् सभी तो बौद्ध बनते जा रहे हैं, अब वेदों का उद्धार कौन करेगा? नीचे राजप्रासाद के आगे राजपथ पर जाते हुए एक ब्राह्मण नवयुवक ने रानी की करुणा-विगलित वाणी सुनकर उत्तर दिया, 'मा विषीद वरारोहे भट्टाचायोऽत्त जीवति, (हे सुमुखी! विषाद मत करो, कुमारिल भट्ट अभी जीवित है)। 8वीं शती में शंकराचार्य एवं कुमारिल भट्ट ने वेद-निंदक बौद्धों को शास्त्रार्थों में परास्त कर सनातन वैदिक धर्म की पुनर्संस्थापना की। बौद्ध धर्म के समस्त सद्गुणों को वैदिक धर्म का अंग सिद्ध किया गया तथा स्वयं भगवान बुद्ध को भगवान विष्णु के अवतार के रूप में पूजा जाने लगा।

वेद-निंदा के अतिरिक्त बौद्धों में दो बड़ी विकृतियाँ आ गई थीं। अशोक एवं कनिष्क के समय बौद्ध धर्म सारे एशिया एवं मध्य-पूर्व में फैल चुका था। अतः बौद्ध लोग कहने लगे थे कि—हिन्दू धर्म तो मात्र एकदेशीय धर्म है। बौद्ध-धर्म विश्व धर्म है। वे साम्प्रदायिक भाव से प्रेरित हो भारत पर विदेशी आक्रमण के समय भारत के ब्राह्मण राजा (सिंध के राजा दाहिर) एवं क्षत्रिय राजा (विक्रमादित्य एवं यशोधर्मा) के विरोध में विदेशी आक्रान्ताओं (हूणों, शकों, मंगोलों, अरबों) का साथ देने लगे थे। यह सांप्रदायिक स्वार्थ के नाम पर देश-द्रोह था। विदेशी आक्रान्ता भी इन देश-द्रोही तत्त्वों से गुप्त सहयोग पाने की लालसा से हिमालय या हिन्दूकुश पार करते ही अपने-आप को झूठ-मूठ बौद्ध घोषित कर देते थे। विश्व इतिहास का परम हिंसक मंगोल आक्रान्ता छिगिस खां (चंगेज खां) भी बौद्ध बना हुआ था तथा उसका रक्तपात-रंजन बेटा कैवल्य खां (कुबलाई खां) भी बौद्ध था।

बौद्धों में दूसरी बड़ी विकृति आ गई थी—स्वच्छंद यौनाचार की। भगवान बुद्ध ने पूर्ण ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। उन्होंने स्वयं ने गेरिक-वस्त्र धारण कर परिव्रज्या ली। अपने बूढ़े पिता को भी परिव्रज्या दे दी, अपने नन्हे पुत्र राहुल को भी पीतवस्त्र दिया तथा अपनी पत्नी यशोधरा को भी भिक्षुणी बनने की अनुमति प्रदान कर दी। जब नर और नारी और तीन-तीन पीढ़ियाँ संन्यासी बनने लगी तब आश्रम व्यवस्था गड़बड़ा गई। प्रतिक्रियास्वरूप भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों में अत्यंत कामेच्छा जाग उठी तथा खुलकर व्यभिचार चलने लगा। वज्रयान बौद्धों ने वामाचारी तांत्रिक के दूषित प्रभाव को लेकर अपने ग्रंथों में लिखना प्रारंभ कर दिया कि डोमनी या रजकी के साथ काम-संभोग से तुरंत निर्वाण-पद मिलता है।

इस संभोग से समाधि वाले मंत्र ने आचार्य कण्हया से आचार्य रजनीश, बालयोगेश्वर दादा लेखराम, प्रभातरंजन बाबा तक सभी को डुबो दिया। वेद-निंदा, देश-द्रोह एवं यौन-भ्रष्टाचार के कारण बौद्ध नाम भी लांछित हो गया था। अतः भगवान शंकराचार्य के शंखघोष के साथ कोटि-कोटि भारतीय पुनः सनातन वैदिक धर्म में लौट आये। उन्होंने भगवान बुद्ध को तो नमन किया किन्तु विकृत बौद्ध धर्म को तिलांजलि दे दी।



इस्लामिक आक्रान्ताओं ने बौद्ध भिक्षुओं की सामूहिक हत्या करके इस्लाम ने बौद्ध धर्म की ही हत्या कर दी। यह भारत में बौद्ध धर्म पर सबसे भयंकर आघात था। **—डॉ. अम्बेडकर**

× × ×

शांति और प्रेम केवल समान लोगों में ही सम्भव है। शांति के वास्तविक शत्रु वे दुर्बल लोग ही हैं, जो अपनी दुर्बलता से आक्रान्ताओं को निमंत्रण देते हैं। यदि हम शक्तिहीन हैं, तो हम विश्व-शांति को भंग करने के अपराधी हैं। हमारे पतन का मूल कारण हमारी मानसिक दुर्बलता ही है। **—डॉ. केशवराव बलीराम हेडगेवार**

× × ×

'केवल वे जो इतने शक्तिशाली हैं कि न केवल अपनी रक्षा कर सकते हैं, वरन् शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न कर सकते हैं, शान्ति, अनाक्रमण और अहिंसा की बात कर सकते हैं।' **—वीर सावरकर**



उत्तरी सीमा पर चीनी आक्रमण—इतिहास की भीषण चेतावनी

इतिहास के उषाकाल में भारत ने सारे विश्व को जो ज्ञानालोक प्रदान किया उसी परम्परा में एशिया के अनेक देशों के समान चीन को भी धर्मदृष्टि प्रदान की। किन्तु, जहाँ भारत ने चीन को करुणावतार भगवान बुद्ध प्रदान किए वहाँ चीन आज भारत की छाती पर गोलियाँ चला रहा है, चीन का धर्मभूमि भारत पर हमला पाकिस्तान का हजरत मुहम्मद की जन्मभूमि मक्का पर हमला करने के तुल्य है।

भारत की प्राकृतिक सीमाएं

ईश्वर की ओर से भारत को जितनी प्राकृतिक एवं सुदृढ़ सीमाएं प्राप्त हुई थी वैसी संसार के किसी भी अन्य देश को प्राप्त नहीं हुई। उत्तर में 3000 वर्गमील का हिमालय हमारे रक्षक के समान खड़ा है। पश्चिमोत्तर में हिन्दूकुश की ऊंची पर्वत श्रृंखला थी, बाकी 3 ओर अनन्त सागर प्रत्येक आक्रांता को लीलने के लिये आकुल है। किन्तु, जितनी सुदृढ़ सीमाएं हमें प्रकृति से प्राप्त हुई उसके मुकाबले में हम अपनी सीमाओं की रक्षा के प्रति उतने जागरूक नहीं रहे। दर्रा-खैबर एक साधारण सा दर्रा है जो कहीं-कहीं कुछ गज मात्र ही है और कहीं-कहीं एक फर्लांग मात्र। हमने शत्रु को वहाँ नहीं रोका और हर गजनवी, गोरी, खिलजी, हर तुर्क, तातार, मुगल, अफगान सारे भारत को रौंदता हुआ चला गया। हमने शत्रु को सीमा पर नहीं कुचला। बाद में बारी-बारी झेलम, रावी, व्यास, सतलुज पर हम शत्रु से भिड़े सही, किन्तु देश को गुलामी के पंजे से न बचा सके। एक बख्तियार खिलजी मुट्ठी भर सैनिकों के साथ आया और मुट्ठी भर सैनिकों के साथ सारे भारत को रौंदता हुआ बंगाल तक बढ़ गया। नालन्दा विश्वविद्यालय के महान् पुस्तकालय को जला दिया। नालन्दा तथा विक्रम विश्वविद्यालयों के हजारों स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों को तलवार के घाट उतार दिया तथा बोरों में भरवाकर समुद्र में फिंकवा दिया। सीमा सुरक्षा के प्रति एक छोटी सी असावधानी के कारण सारे देश को डेढ़ हजार वर्ष तक की गुलामी का शिकार होना पड़ा। क्या हम इतिहास की इस भीषण चेतावनी पर ध्यान देंगे?

ब्रिटिश शासन में भारत की सीमा सुरक्षा

अंग्रेजों ने भारत के पश्चिमोत्तर में अफगानिस्तान को एक 'बफर स्टेट' के रूप में रखा। उस के साथ ही आगे की सीमा प्रारम्भ हो जाती है। अंग्रेज ने जान लिया कि यदि कहीं भारत की सीमा रूस जैसे बड़े एवं भयंकर देश के साथ जा लगी तो सदा संकट बना रहेगा। अतः अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के साथ तीन युद्ध लड़े तथा अफगानिस्तान को भारत तथा रूस के बीच 'बफर राज्य' रखा ताकि रूस द्वारा होने वाला प्रथम हमला अफगानिस्तान सहे तथा तब तक भारत सम्भल जावे। इसी प्रकार उत्तर में चीन को भारत की सीमा से सदा दूर रखने के लिए तिब्बत को स्वाधीन 'बफर स्टेट' के रूप में रखा गया। तिब्बत के गुलाम होने का अर्थ भारत के द्वार पर नित्य का झगड़ा है। अतः हमारे देश की 3000 मील की उत्तरी सीमा (मेकमोहन लाइन) तिब्बत से मिलती थी न कि चीन से। तिब्बत एक शान्तिप्रिय देश था तथा भारत का उत्तरी सीमांत सदा सुरक्षित था। पूर्व की ओर हिन्द-चीनी के झगड़ों को भारत की सीमा से दूर रखने के लिए अंग्रेज ने स्याम देश को स्वतन्त्र 'बफर स्टेट' रखा ताकि भारत की सीमाओं से झगड़े या संकट की अग्नि को सदा दूर रखा जाये।

वर्तमान असुरक्षित सीमान्त

अब पाकिस्तान के निर्माण की भयंकर भूल से भारत की 2500 मील की सीमा पूर्व और पश्चिम में पाकिस्तान जैसे झगड़ालु देश से जा मिली है। यह सीमा प्राकृतिक नहीं, खेतों और मैदानों में से गुजरती है। इस की रक्षा भी एक महान् समस्या है। फिर उत्तर की ओर चीन द्वारा तिब्बत की हत्या होने के पश्चात् भारत का 3000 मील का उत्तरी सीमान्त लालचीन के खूनी पंजों की मार में आ गया है। वे जब चाहते हैं, जहाँ चाहते हैं वहीं गोलियाँ चला कर भारत के क्षेत्र पर अधिकार कर रहे हैं।

तिब्बत का नरमेध

तिब्बत संसार के उच्चतम पठार पर अवस्थित शान्तिप्रिय, शीत प्रधान देश है। वहाँ की आधी से अधिक जनता लामाओं (साधुओं) की है। प्रत्येक घर में से कम से कम 1 व्यक्ति को लामा बनाया जाता है।

उन निहत्थे साधुओं के मठों के भीतर घुस कर चीनी दरिन्दों ने 65 हजार लामाओं की हत्या कर दी है। भारत सरकार ने तिब्बत पर चीनी शासन को मान्यता देकर भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी भूल की है। तिब्बत की रक्षा का उत्तरदायित्व सदा भारत पर रहा है। अभी तक वहाँ की एक तार व्यवस्था भारत के हाथ थी, ल्हासा में भारतीय सेना की टुकड़ी सदा रहती थी। सांस्कृतिक दृष्टि से भी हम

तिब्बत देश को कभी भी भूल नहीं सकते। यह हमारे कैलास एवं मानसरोवर का देश है। गंगा, सिन्धु एवं ब्रह्मपुत्र का उद्गम स्थल भी वहीं है। यह त्रिविष्टप देश हमारा प्राचीन स्वर्ग है। इसकी हत्या के पश्चात् भारत सदा संकट में है।

चीन का षड्यन्त्र

चीन ने 5 वर्ष पूर्व के नक्शों में भी 44 हजार वर्गमील भारतीय क्षेत्र को चीन का भाग दिखाया था। अब उन्होंने भारत का साढ़े आठ हजार वर्गमील क्षेत्र अपने खूनी पंजे के नीचे दबा लिया है। साढ़े आठ हजार वर्गमील का अर्थ लगभग 1000 जालन्धर शहर जितना क्षेत्र। पं. जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन पर चाऊ भाई ने 9 भारतीयों की लाशें उपहार में भेजीं!! क्या भारतीयों के स्वाभिमान को यह चुनौती नहीं है?

चीन भारत का शीश काटना चाहता है। क्या भारतीय सिंह अपनी गर्जना से शत्रु का कलेजा कंपा देगा? पंजाब केशरी ला. लाजपत राय की हुँकृति हम स्मरण करें—

मगर यह बात कहने में, न चूके हैं न चूकेंगे।
लहू देंगे मगर इस देश की, मिट्टी नहीं देंगे।।



राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनिककरण

'जब तक देश की राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनिककरण नहीं किया जाएगा तब तक भारत की स्वाधीनता, उसकी सभ्यता व संस्कृति कदापि सुरक्षित नहीं रह सकेगी। मेरी तो हिन्दू युवकों से यही अपेक्षा है कि वे अधिक संख्या में सेना में भरती होकर सैन्य विद्या प्राप्त करें ताकि समय पड़ने पर वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा में योग दे सकें! विद्यालय में सैनिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाए।'

—स्वातंत्र्य वीर सावरकर

× × ×

अहिंसा की भ्रान्त व्याख्या ने ही राष्ट्रीय चिन्तन को, विवेक की शक्ति से वंचित किया है। हमने शक्ति को ही 'हिंसा' मानना प्रारम्भ किया है और अपनी 'दुर्बलता' को हम गौरवान्वित करने लगे हैं।... विश्व दुर्बलों के जीवन-दर्शन को, चाहे वह कितना भी उदात्त क्यों न हो, सुनने को तैयार नहीं है।'

—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)



श्री आनन्दमूर्ति की भीषण अज्ञानता

आनन्द मार्ग के संस्थापक श्री आनन्दमूर्ति ने अपनी पत्रिका 'आनन्दलोक' (आनन्द पूर्णिमा विशेषांक), जून, 1970 के प्रथम लेख में ही भारतीय संस्कृति पर कुछ गंभीर आक्षेप किए हैं, जिनका निराकरण करना प्रत्येक भारतीय के लिए अनिवार्य है।

वे पृष्ठ 5 पर लिखते हैं, 'जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, वह भाग वैदिक संस्कृति नहीं है। वैदिक संस्कृति का मूल उत्स तो विदेशी है। आर्यों ने आर्येतर जातियों से सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन व्यतीत करना सीखा।' श्री आनन्दमूर्ति इस कथन से भारतीय संस्कृति एवं वैदिक साहित्य दोनों का न केवल अपमान कर रहे हैं वरन् इनके विषय में अपनी भीषण अज्ञानता का प्रदर्शन भी कर रहे हैं। वेदों के अन्तर्साक्ष्य से सिद्ध होता है कि वेदमंत्रों के द्रष्टा-ऋषियों को सप्तसिन्धव (नीचे सरस्वती, ऊपर सिन्धु, बीच में पंजाब की पांच नदियों वाला प्रदेश) में सभी वेदमंत्रों का दर्शन हुआ था। उसी सप्तसिन्धव के नाम से ईरानी (आर्यान्) भाषा में हप्त हिन्दव, हिन्द, हिन्दू आदि शब्द बने। यूनानी भाषा में 'ह' का उच्चारण लुप्त होने के कारण सिकन्दर के समय के यूनानियों ने हिन्दू को इन्दु कहा। उसी इन्दु शब्द से इस देश का नाम 'इण्डिया' प्रसिद्ध हुआ। अत: आनन्दमूर्ति का यह कथन कि वैदिक संस्कृति भारतीय नहीं है, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से नितांत भ्रमपूर्ण है।

विश्व भर के विद्वान् स्वीकार करते हैं कि वेद पारिवारिक जीवन-मूल्यों एवं सामाजिक आदर्शों के महानतम भण्डार हैं। उन्हीं वैदिक आदर्शों का आख्यान रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों के चरित्रों में इतने अलौकिक रूप में हुआ है।

शंकराचार्य का अपमान

श्री आनन्दमूर्ति इसी अंक के पृष्ठ 5 पर भगवान् शंकराचार्य जैसे विश्वविख्यात तत्त्ववेत्ता के प्रति तिरस्कार की भावना से आक्षेप करते हुए लिखते हैं—''शंकराचार्य के समय से जातिप्रथा विकृत हो गयी। बौद्धों के साथ तार्किक संघर्ष में उनकी शक्ति समाप्त-प्राय हो गयी थी'' यह अत्यन्त विस्मयकारक

मूल्यांकन श्री आनन्दमूर्ति के विकृत एवं पक्षपातपूर्ण मानस का प्रतिबिम्ब है। भगवान् शंकराचार्य से अधिक तेजस्वी विचारक एवं समाज संस्कारक विश्व ने आज तक कदाचित ही देखा होगा।

ब्राह्मण जाति का अपमान

पत्रिका के इसी पृष्ठ पर वे ब्राह्मण जाति का घोर अपमान करते हुए लिखते हैं—''शर्मा कैसे ब्राह्मण हो गए जी? उन्हें तो शूद्र होना चाहिये था। श्रम को आजीविका या वृत्ति के रूप में स्वीकार करने वाला ही तो शर्मा हुआ।'' इस विचित्र एवं मूर्खतापूर्ण व्युत्पत्ति से तो श्री आनन्दमूर्ति ने अपनी छिछली विद्या एवं संस्कृत भाषा के विषय में अपराधपूर्ण अज्ञानता का नग्न प्रदर्शन ही कर दिया है।

वास्तव में शर्मा एवं श्रम शब्द में आकाश-पाताल का अन्तर है। संस्कृत का तनिक भी ज्ञान रखने वाला कोई अबोध भी इस प्रकार की ऊलजुलूल एवं हास्यास्पद व्युत्पत्ति बताने का साहस नहीं कर सकता।

वास्तव में 'शर्म' शब्द वेद में ईश्वरीय कृपा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा **'शर्म वर्म ममान्तरम्' (साम. 9/3/8) का अर्थ है—'शर्म (ईश्वरीय कृपा) ही मेरा आन्तरिक वर्म (कवच) है।** इसी प्रकार ऋग्वेद 7/95/5 में लिखा है 'तव शर्मन प्रियतमे दधाना' अर्थात् हे सरस्वती माता! आप हमें अपने शर्मन (संरक्षण) में धारण करें। इस प्रकार संस्कृत के सभी कोशों के अनुसार शर्म एवं शर्मन का अर्थ है—कृपा, संरक्षण, आश्रय, प्रसन्नता आदि।

'पाण्डेय' का अर्थ

इसी प्रकार पाण्डेय शब्द की विचित्र व्युत्पत्ति बताते हुए श्री आनन्दमूर्ति उसी लेख में आगे कहते हैं, पाण्डेय शब्द पण्ड धातु से बना है जिसका अर्थ होता है गहरे डूबना। यह भी ब्राह्मण जाति पर एक भयंकर आक्षेप है। वास्तव में सारे संस्कृत एवं हिन्दी के कोशों में पण्ड नाम की कोई धातु ही नहीं मिलती। वास्तव में पाण्डेय एवं पण्डित शब्द पण्डा शब्द से बने हैं जिसका संस्कृत के सभी कोशों में अर्थ है—ज्ञान, बुद्धि, विवेक इत्यादि। अत: पाण्डेय और पंडित का अर्थ हुआ विद्वान्, बुद्धिमान्, विवेकी इत्यादि। इसका डूबने वाला अर्थ लेने वाले श्री आनन्दमूर्ति की अपनी बुद्धि ही सम्भवत: अज्ञान में गहरी डूबी हुई है। जो वे बिना पाण्डित्य के पाण्डेय की व्याख्या करने का दुस्साहस कर रहे हैं।

मिश्र ब्राह्मण

मिश्र उपाधिधारी ब्राह्मणों को श्री आनन्दमूर्ति ने ढोंगी एवं द्विधाचारी माना है। वे उक्त लेख में आगे लिखते हैं—'मिश्र वे ब्राह्मण थे जो दिन में दिखाने के

लिए यज्ञ करते थे लेकिन रात्रि काल में आत्मानुभूति के लिए तान्त्रिक साधना करते थे। भेद खुलने पर वे मिश्र कहलाने लगे।' यह भी बड़ी विचित्र एवं दुष्ट कल्पना है। मिश्र ब्राह्मणों की उपाधि शाकद्वीप से लेकर मिस्र देश तक सम्मानित है। महर्षि कण्व के जिन शिष्यों ने अफ्रीका के मिस्र देश तक भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैलाया, जिन्होंने नील-नदी को यह संस्कृत नाम दिया। और जिनके प्रभाव से मिस्र की भाषा में संस्कृत के अनेक तत्सम एवं तद्भव शब्द आज भी गूंज रहे हैं। वे श्रेष्ठ सम्मानित ब्राह्मण मिश्र कहलाये। कुछ विद्वानों का मत है कि मिश्र ब्राह्मण मिस्र से भारत में आये किन्तु, चूंकि मिश्र शब्द मूलत: संस्कृत का है, किसी अफ्रीकी भाषा का नहीं इसलिए ब्राह्मणों का भारतीय होना ही सिद्ध होता है। मिश्र ब्राह्मणों के अनिवार्यत: तान्त्रिक (तथा यज्ञ द्वेषी) होने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। यह भी श्री आनन्दमूर्ति की मिथ्या कल्पना है।

वैदिक जीवन पद्धति पर आक्षेप

श्री आनन्दमूर्ति 'आनन्दलोक' के इसी अंक के पृष्ठ 8 पर महाभारत शीर्षक से एक लेख में लिखते हैं—'वैदिक युग में कोई विशेष शिक्षा व्यवस्था नहीं थी।.....—तुम लोग जब वेद पढ़ोगे तो देखोगे उसमें हजार-हजार व्याकरण की अशुद्धियां हैं। व्याकरण बना ही नहीं था।..... महाभारत काल में वैदिक भाषा की मृत्यु हो गयी थी। संस्कृत के प्रथम वैयाकरण तथा बहुत बड़े पंडित पाणिनि पेशावर के एक पठान थे।'

वैदिक युग में शिक्षा

वास्तव में विश्वभर के विद्वान् स्वीकारते हैं कि वैदिक युग में जिस प्रकार की गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी वही संसार की प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा पद्धतियों में सर्वश्रेष्ठ थी। वेद ज्ञान का जिनको अक्षरज्ञान तक भी नहीं है वे वैदिक साहित्य में यदि समस्त अशुद्धियां ही अशुद्धियां देखें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। यदि उलूक को सहस्ररश्मि-सूर्य अन्धकार से भरा दिखाई दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष? वैदिक संस्कृत का अपना स्वतंत्र व्याकरण है और वेदविद्या तप एवं गुरुसेवा से प्राप्त होती है। महाभारत काल में तो स्वयं भगवान् वेदव्यास ने वैदिक ज्ञान को चार संहिताओं में सम्पादित किया तथा इसी कारण उन्हें वेदव्यास की उपाधि से विभूषित किया गया। किन्तु श्री आनन्दमूर्ति लिखते हैं कि महाभारत काल में वैदिक भाषा की मृत्यु हो गयी थी। वास्तव में इससे अधिक भयंकर साहित्यिक अपराध अन्य किसी कथन से नहीं हो सकता। पाणिनि का जन्म पेशावर नामक ग्राम बताना भी इतिहास का उपहास मात्र है। वास्तव में पाणिनि-कालीन भारतवर्ष के विद्वान् लेखक डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार पाणिनि की जन्मभूमि

शलातुर (गंधार) में ही थी, जिसके कारण पाणिनि शलातुरीय कहलाये। पाणिनि जैसे ऋषितुल्य विद्वान् को पठान कहना भी युक्तियुक्त नहीं है। पठान मुसलमानों की एक उपजाति है।

इस प्रकार श्री आनन्दमूर्ति अपने आनन्द मार्ग के कार्यों द्वारा भारतीय जीवन, भारतीय साहित्य, भारतीय धर्म, भारतीय समाज, भारतीय संस्कृति आदि सभी पर अभ्यन्तर प्रहार कर देशवासियों की परम्परागत निष्ठाओं पर कुठार चला रहे हैं। सभी भारत भक्तों को सजग एवं सचेत होकर इस प्रहार का प्रतिरोध करना चाहिए।



यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्थ स्वजनादुःखदुःखितम्।।
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्।।

भागवत, 10/88/8-9

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्! जिस पर मैं कृपा करता हूं, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूं। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दुःखाकुल चित्त की परवाह न कर के उसे छोड़ देते हैं।।8।। फिर वह धन के लिए उद्योग करने लगता है, तब मैं उसका यह प्रयत्न भी निष्फल कर देता हूं। इस प्रकार बार-बार असफल होने के कारण जब धन कमाने से उसका मन विरक्त हो जाता है, उसे दुःख समझकर उधर से अपना मुंह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तों का आश्रय लेकर उनसे मेल-जोल करता है, तब नैं उस पर अपनी अहैतुक कृपा की वर्षा करता हूं।।9।।



हमारी सामाजिक समस्याएं

जो हमारे लिये अभिशाप बन कर आता है वही विदेशी पादरियों के भारतद्वेषी कार्यों के लिए सबसे अनुकूल समय होने के कारण उनके लिए वरदान बन जाता है।

नारी जाति अपने आप में बहुत बड़ी समस्याओं से ग्रस्त है किन्तु उसमें भी विधवाओं एवं असहाय नारियों की समस्या सबसे भयंकर है। वे असहाय मां-बहनें एवं बेटियां उचित सहायता के लिए हमारी ओर याचनाभरी दृष्टि से लोकलाज की मूकवाणी में कुछ कह रही हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में भी कोई नारी-निकेतन या विधवा-आश्रम नहीं है। विदेशी पादरी इस विवशता का भी अनुचित लाभ उठा कर महिला कल्याण के नाम पर देश की पुत्रियों के ईमान पर डाका डालते हैं। व्यक्तियों के धर्मान्तरण से विदेशी मत की सरल गणितीय वृद्धि होती है, किन्तु महिलाओं के धर्मान्तरण से भावी परिवारों के धर्मान्तरण की संभावना के कारण ज्यामितिक गुणनशील चक्रवृद्धि होती है।

देश में करोड़ों रोगी हैं जो अर्थाभाव, साधनाभाव, औषधाभाव तथा परिचर्या अभाव के कारण जीवन और मृत्यु के बीच में झूल रहे हैं। उनकी विवशता का भी अनुचित लाभ उठाने हेतु विदेशी पादरियों ने अस्पतालों का जाल फैला रखा है। वे तन का उपचार करते हुए मन की श्रद्धाओं पर ऐसा अत्याचार करते हैं कि गांधीजी की शब्दावली में कहना पड़ता है, 'The cure is worse than the disease' अर्थात् ऐसा इलाज रोग से भी अधिक भयंकर है। यदि विदेशी सात समुद्र पार से आकर अपने पन्थ-प्रसार हेतु हमारे रुग्ण-बंधुओं को अपने जाल में फंसाने के लिए अस्पतालों का बड़ा जाल फैला सकते हैं तो क्या हम भारतीय स्वयं अपने देश-बान्धवों के स्वास्थ्य कल्याण एवं औषधि उपचार हेतु छोटानागपुर में उत्तम स्तर के कुछ नि:शुल्क चिकित्सालय स्थापित नहीं कर सकते?

शिक्षा ज्ञान का चक्षु है। इसके बिना राष्ट्र अंधा सा रहता है। दुर्भाग्य से हमारे इस विशाल देश में 75 प्रतिशत से अधिक लोग अभी तक अनपढ़ है। इस क्षेत्र में भी हमारी अकर्मण्यता एवं सरकार की उपेक्षा तथा जनसाधारण के अज्ञान का

पूरा लाभ भारत-द्वेषी-विदेशी मिशन उठा रहे हैं। बालशिक्षा, उच्च शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा तीनों के माध्यम से वे भारतीयों को विदेशी संस्कार देने का व्यापक अभियान चलाए हुए हैं। क्या मिशन के स्तर का अथवा उससे ऊँचे स्तर का एक-एक आदर्श विद्यालय छोटानागपुर के सभी बड़े नगरों में स्थापित करना हमारे लिए असंभव है?

देश में भिखारी-समस्या भी बड़ी विकट है। लगभग 56 लाख तो साधु वेशधारी भिक्षुक हैं। उनमें से अधिकांश पेट भरने के लिए ही साधु बने हुए हैं, साधना करने के लिए नहीं। साधुओं के अतिरिक्त भी लाखों निर्धन भिखमंगे हैं जो सड़क के किनारे पटरी पर सो जाते हैं, पैसा-पैसा मांग कर पेट पालते हैं और चिथड़ों से तन ढकते हैं। आंधी, धूप और वर्षा में उनके पास सिर ढकने का स्थान भी नहीं। क्या उनके लिये हम एक रैन बसेरा तक भी नहीं बना सकते?

बच्चे देश की हरी पौध हैं। वे ही कल के नागरिक होंगे। देश का भविष्य उन्हीं की मुट्ठी में है। हमने अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष भी मना लिए हैं। दुर्भाग्य से देश में करोड़ों अनाथ बच्चे हैं जो माता-पिता तथा अभिभावक के अभाव में अपने नन्हे नेत्रों में दयायाची अश्रुकण भर कर हमारी ओर ताक रहे हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में कोई भी उत्तम स्तर का अनाथालय नहीं है और हमारी इस अकर्तव्यता का पूरा लाभ विदेशी पादरी उठा लेते हैं तथा अनाथालयों में शैशव से ही विदेशी संस्कार देकर भारतमाता के लाडलों को धीरे-धीरे पूर्णतया देशद्रोही बना देते हैं। मध्यप्रदेश में कुछ स्थानों पर भील जाति के वनवासियों को विदेशी पादरी दस-दस रुपया उधार के बदले उनके नन्हे शिशुओं को जमानत के रूप में बंधक रख लेते हैं और इस प्रकार सैकड़ों बंधक रखे हुए बच्चों को विदेशी संस्कार देकर तथा गोमांस खिलाकर पूर्णतया विधर्मी बना लिया जाता है। जिन भीलों ने महाराणा प्रताप के लिए प्राण उत्सर्ग किए, जिस भीलनी की कुटिया पर भगवान राम ने जूठे बेर खाए उनकी संतानें आज भेड़-बकरी की तरह बंधक रहकर विधर्मी एवं देशद्रोही बन जाएं तो इससे बड़ा दु:ख और क्या हो सकता है? सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि एक निर्धन देश के नागरिक होते हुए, वनवासियों, हरिजनों, बाढ़ग्रस्तों, सूखाग्रस्तों, अभावग्रस्तों, रोगग्रस्तों, अज्ञानग्रस्तों, विधवाओं, अनाथों—सबकी करुण-हाहाकार की घोर उपेक्षा कर हम दुर्गापूजा, सरस्वती पूजा, दशहरा, दीवाली के पर्वों पर अरबों रुपया केवल पूजा के बाह्य आडम्बर, साज-सज्जा, तड़क-भड़क, बाहरी चकाचक, क्षुद्र प्रतिस्पर्धा एवं कुछ इने-गिने दिनों की शानशौकत पर स्वाहा कर डालते हैं जिसका सामाजिक लाभ शून्यप्राय ही होता है। सैकड़ों स्थानों पर बड़े-बड़े विशाल मूर्तिपूजा मंडप लगाए गए हैं जिनमें से कुछ तो मात्र परस्पर दस गज की दूरी पर अलग अलग मंडप हैं। दुर्गामाता तो वास्तव में संगठन की देवी है। सभी देवताओं की सामूहिक शक्ति से महाशक्ति दुर्गा का अवतार हुआ

था। किन्तु आज दुर्गापूजा के नाम पर एक ही मौहल्ले में एक ही दीवार के दायें और बायें मात्र दस गज की दूरी पर अलग-अलग दुर्गा बिठाने वाले आज दुर्गा को संगठन की देवी के स्थान पर विघटन की देवी या कलह का कारण बनाने की कुचेष्टा कर रहे हैं। फिर एक-एक पूजा पर पचास-पचास हजार रुपया चार दिन में फूंक कर बड़ा तालाब में विसर्जित कर दिया जायेगा। क्या एक निर्धन, भयंकर समस्याग्रस्त एवं विदेशी एवं विधर्मियों के देशद्रोही कुचक्रों से घिरे हुए देश की ऐसी भयंकर विवेकशून्य आत्मघातकी फिजूलखर्ची को वनवासी या हरिजन क्षमा करेंगे? क्या बाढ़ग्रस्त एवं सूखा पीड़ित नर-नारी क्षमा करेंगे? क्या रोगी एवं भिखारी, क्या विधवा एवं अनाथ बच्चे क्षमा करेंगे? क्या इतिहास क्षमा करेगा अथवा भगवती दुर्गामाता क्षमा करेगी? मेरी हार्दिक विनती है कि इस वर्ष सभी दुर्गापूजा समितियों को वनवासी-हरिजन कल्याण, बाढ़ सूखा कल्याण, रोगी भिक्षुक कल्याण, अनाथ एवं विधवा कल्याण कार्यों के लिए अपने अनुमानित व्यय का कम-से-कम 10 प्रतिशत बचा कर दान करना चाहिए और भविष्य में रांची, डोरांडा एवं धुर्वा में कुल मिलाकर 10 सार्वजनिक दुर्गापूजा महोत्सव करने चाहिए और बाह्याडम्बर का व्यय बचाकर जगन्माता, भारतमाता के अभावग्रस्त पुत्र-पुत्रियों के कल्याण हेतु समर्पित करना चाहिए। उन्हें अपने नगर एवं गांव के इर्द-गिर्द चुन कर उस गांव में जाकर दुर्गापूजा का आयोजन करना चाहिए जहां युगों से अभाव एवं निर्धनता के कारण कभी दुर्गापूजा नहीं हुई है। समाज के निर्बल एवं निर्धन वर्ग को भुखमरी के महिषासुर से तथा धर्मान्तरण की दुर्गति से बचाना ही सच्ची दुर्गापूजा होगी।



याद रहे गांधीजी की कांग्रेस एक आन्दोलन का नाम था। उन्होंने आजादी के बाद भी आन्दोलन वाली कांग्रेस को समाप्त करने की बात कही थी। साथ ही यह भी कहा था कि आन्दोलन वाली कांग्रेस को कभी राजनीतिक दल मत बनाना। गांधीजी के आग्रह की उपेक्षा कर जिस दिन कांग्रेस राजनीतिक दल बन गया उसी दिन गांधीजी की कांग्रेस समाप्त हो गई। यह नेहरू की कांग्रेस है अतः उनके परिवार को जिस प्रकार कांग्रेस को चलाना है, वैसे चला रहे हैं।

—राजनाथसिंह

× × ×

यदि विश्व से हिन्दू धर्म नष्ट हो गया तो सत्य, न्याय, मानवता और शांति सभी समाप्त हो जायेगी।

—स्वामी विवेकानन्द



प्रेस स्वातंत्र्य

'राज्य जो गलतियां कर रहा हो, उसकी चर्चा करना पत्रकारिता का आवश्यक अंग है।' —महात्मा गांधी

'असली स्वाधीनता वही है जो विचार के प्रवाहों में बाधक न बने।' —प्रेमचंद

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष प्रेस प्रजातंत्र व्यवस्था का प्राण माना जाता है। जिसके माध्यम से सरकार अपनी नीतियों एवं कार्यों के प्रति जनता की प्रतिक्रियाओं से अवगत होती है। आम जनता की आवाज तथा प्रजातंत्र के सजग प्रहरी अखबारों के मुंह पर ताला लगाना कोई भी नागरिक पसंद नहीं करेगा।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक खुली हुई व्यवस्था होती है या कहना चाहिए जो व्यवस्था जितनी खुली होती है वह उतनी ही 'लोकतांत्रिक' होती है। क्योंकि लोकतंत्र का मतलब ही होता है बहस से, विचार-विमर्श से शासन।

विधेयक को 'संविधान की आत्मा' के प्रतिकूल और उस पर प्रहार ही माना जा सकता है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर आवश्यक तो यह है कि जनता के प्रतिनिधि अपने चुनाव क्षेत्र में जाते और यहां के विवेकशील व्यक्तियों के विचार जानने का प्रयास करते। प्रतिनिधियों को जनता इतना नैतिक अधिकार नहीं देती कि वे जो चाहें सब कुछ अपने मन से किया करें।

आज अगर प्रेस नहीं होता तो क्या रंगा-बिल्ला को फांसी होती? क्या जेल के अभियुक्तों को सजा मिलती? ये सब तो कुछ नहीं। अगर प्रेस नहीं होता तो क्या जनता यह भी जान सकती की असल में प्रजातंत्र क्या है?

देखने में तो यह विधेयक बहुत छोटा और साधारण लगता है किन्तु वास्तव में यह वाणी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण कर प्रजातंत्र का अपहरण करने वाला एक काला विधेयक है। अगर इस विधेयक को कानून की मुहर लग जाती है तो इस बात की शंका करने में शायद कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि प्रजातंत्र केवल पंगु बनकर रह जायेगा जिसकी वजह से सरकार बहुमत में होने के

कारण अपना कोई विधेयक पारित कर सकेगी और इसकी कोई खबर जनता तक नहीं पहुंच पायेगी और शासन पद्धति का नाम रहेगा प्रजातंत्र का और कार्य रहेगा राजतंत्र का!

आज का राज लोक-कल्याणकारी है। कल्याणकारी राज्य के सेवकों के लिए यह आवश्यक है कि जैसे एक कुशल डॉक्टर मरीज की नाड़ी पकड़ उसकी गति का अंदाजा लगाता रहता है वैसे ही वह भी जनता की भावनाओं को पहचाने।

वास्तव में प्रेस की स्वतंत्रता, लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है। इसके अभाव में शासन पंगु हो सकता है!

लोकमत के सृजन में समाचार पत्रों का महत्त्व बहुत अधिक है और इसके लिए सरकार को उनसे निरंतर संबंध बनाये रखना चाहिए।

जब प्रेस पर ऐसा अंकुश लगा तो निश्चित है कि जनता को अंधेरे में रखा जायेगा और जनता की शिकायत व उसकी इच्छा की उपेक्षा की जायेगी व सरकार के कार्यों का मूल्यांकन नहीं हो सकेगा। इससे यह प्रभाव पड़ेगा कि सरकार भी अपने कार्यों का उचित लेखा-जोखा नहीं पा सकेगी और हो सकता है कि लक्ष्य तक पहुंचना असंभव हो चूंकि सही मार्गदर्शक व स्वस्थ आलोचक का अभाव रहेगा।

प्रजातंत्र की शासन व्यवस्था सर्वाधिक उत्कृष्ट है। यह जन-समूह की आकांक्षा को मूर्त करती है। इसमें सामान्य जन जीवन की सुख-शांति का राज और रहस्य छिपा हुआ है। आधुनिक कुंठा-ग्रस्त एवं तनावपूर्ण अंधकारमयी जीवन की तलहटी में यह उषा की अरुणाई का मांगलिक अवतरण है। आज सामाजिक जीवन को सुदिशा देने के लिए जितने सारे अपेक्षित प्रयत्न किए जा रहे हैं उनका मूलस्रोत यही शासन व्यवस्था है। यह जन चेतना के सुस्फुरण का मांगलिक त्योहार है। यह समाचार पत्र देश की राजनीति, शासननीति और जीवन पद्धति को बहुत ही प्रभावित करते हैं। समाचार पत्रों में प्रकाशित समीक्षाओं, टिप्पणियों, राजनीतिज्ञों की मनमानी, शासन की कुव्यवस्था, सामाजिक जीवन में प्राप्य विविध समस्याओं पर तीव्र तथा तीखा प्रहार होता है और यही कारण है कि आज की सरकार जनता द्वारा इस तीखे एवं तीव्र प्रहार से बचने के लिए समाचार पत्रों का मुंह प्रेस विधेयक बिल को पारित कर बंद कर देना चाहती है जो जनतंत्र के लिए और साथ ही प्रजातंत्र की आत्मा को कुचलने का षड्यंत्र कर रही है।

समाचार पत्रों की स्वतंत्रता तथा मौलिकता का यह अर्थ नहीं कि वे उच्छृंखलता तथा अनुशासनहीनता का दामन थामकर भ्रामक प्रचार का साधन बनें। अनैतिक तथा कुरूप तथ्यों के प्रकाशन से उनका स्वरूप विकृत हो जायेगा।

समाचार पत्र की महत्ता एवं पवित्रता को ध्यान में रखते हुए इस प्रेस को सुरक्षित एवं संरक्षित रखना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए ना कि इसके मुँह में ताला।

डाकुओं और बलात्कारियों की कतार में पत्रकारों को भी खड़ा करने का यह एक 'सुनियोजित षड्यंत्र' है।

आवाज उठाओ तो लाठियां बरसाई जाती हैं और फिर लाठियां बरसाने का भी पूरी बेशर्मी से खंडन किया जाता है। इससे बड़ा खतरा प्रजातंत्र के लिए और क्या होगा?

जितनी भी आजादी (कम ही सही) प्रेस को है, यदि वह भी न रही तो अन्याय-अत्याचार और भ्रष्टाचार के नग्न नृत्य को कौन रोकेगा? और तब क्या वह नग्न नृत्य अश्लील या गंदा नहीं होगा? शायद न भी हो, चूंकि इसके सिर पर तो सरकार का आशीर्वादात्मक हाथ होगा और तब गुण्डा राज होगा।

लोकतंत्र-विरोधी ताकतें विधायिका और प्रशासन पर अधिकार के पश्चात् अपनी वक्र दृष्टि, न्यायपालिका और प्रेस पर डाल रही है। अंतुले का घोटाला, भागलपुर आंख फोड़ काण्ड, छात्रों-मजदूरों पर पुलिस आक्रमण और हरिजनों पर अत्याचार के मामलों में प्रेस की निष्पक्षता का साथ दिया है न्यायपालिका ने। वक्र दृष्टि का यही कारण है और इसी का परिणाम है-'प्रेस विधेयक'।

प्रजातंत्र का कितना महत्त्व सरकार की नजरों में है, इसका परिचय हमें प्रधानमंत्री के रवैये से मिलता है। अपनी अमरीका यात्रा की रिपोर्ट तक संसद में देना वह आवश्यक नहीं समझतीं, जबकि यह उनकी जवाबदेही है। यह तो तयशुदा बात है कि बिहार प्रेस विधेयक एक परीक्षण-गुब्बारा है और बाद में इसी के आधार पर सारे भारत में इमरजेंसी इसी संशोधित रूप में लागू होगी। सांप भी मर जायेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। प्रेस की जबान भी बंद होगी और सरकार पर तानाशाही का आरोप भी नहीं लगेगा।

इस विधेयक के कानून बनने के बाद तो सरकार विरोधी हर कार्य राष्ट्र-विरोधी होगा, प्रजातंत्र समाचार पत्रों के अभाव में नहीं चल सकता है। जनता की इच्छा राज्य तक ले जाने में प्रेस ही भूमिका निभाते हैं। प्रेस जनमत को जागृत करके राज्य का मार्ग निर्देशन करते हैं। समाचार पत्र प्रजातंत्र का सशक्त समर्थन करने का एक साधन है।

राष्ट्रीय जागृति एवं राष्ट्रीय भावना का विकास प्रेस ही कर पाये हैं। प्रेस ने अपनी वाणी के जयघोष से जागृति उत्पन्न की तथा जनता की शक्ति को आंका है। जनता के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान समाचार पत्रों ने ही बताया। जनता की गरीबी भुखमरी एवं रोगग्रस्तता के कष्टों में समाचार पत्रों ने सहायता की है।

समाचार-पत्र शक्ति के साधन रहे और जन-आंदोलनों की चिनगारी को प्रज्वलित करते रहे हैं।

जनता के आक्रोश को अभिव्यक्त कर प्रेस ने अनेक बार युद्ध एवं नरसंहार को होने से बचा दिया।

प्रजातंत्र में प्रेस ने उदात्त भावनाओं, सभ्यताओं का सामंजस्य एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान किया।

प्रेस राष्ट्रीयता की संकीर्ण भावना से ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय भावना भी लाना समाचार पत्रों का कार्य है। समाचार-पत्रों की शक्ति अनन्त है। श्रीमती इंदिरागांधी के सुदृढ़ शासन की फौलादी भित्ति समाचार पत्र पर लगाये गये अंकुश के कारण से ही धराशायी हो गयी। निर्भीक, सुदृढ़ एवं निष्पक्ष समाचार पत्रों से इस देश के प्रजातंत्र का भविष्य उज्ज्वल है। संविधान में इमरजेंसी के दौरान जो तोड़ मरोड़ की गयी थी उसे जनता पार्टी ने आधे मन से प्रस्तुत किया। उस अफसरशाही को रास्ते पर लाने की कोशिश नहीं की गयी जो इमरजेंसी के दौरान कांग्रेस पार्टी की अनुचर बन गई थी। रास्ते पर लाना तो दूर जनता पार्टी की सरकार खुद अफसरशाही का अनुचर बन गयी। परिणामस्वरूप 1980 में तानाशाही की ताकतें विजयी हुई। और वे ही तानाशाही की ताकतें जनता पर हावी होने के लिए अपने अत्याचार, भ्रष्टाचार जैसे कुकर्मों एवं अश्लीलता के नंगे नाच को जनता से छुपाने के लिए इस काले कानून की बेड़ियां 'प्रेस' के गले में पहनाना चाहती है।

शायद उन्हें यह मालूम भी नहीं कि प्रेस समाज का दूसरा रूप है जिस प्रकार 'प्रेस विधेयक' इमरजेंसी का दूसरा रूप है।

प्रशासन प्रेस पर रोक लगाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है, पत्रकारों को आंख दिखा कर मारने की धमकी देता है। कई स्थानों पर पुलिस अपराध संबंधी सभी समाचार अपने अनुकूल छपवाने के लिए पत्रकारों को हफ्ता 'घूस' भी देती है इनके विरुद्ध छापने पर मार डालने की धमकी देते हैं।

1920 में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रेस पर पाबंदी लगाने के वक्त गांधीजी ने कहा था कि 'सरकार अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रतिबंध लगाएगी ही। प्रेस के पास दो ही उपाय है या तो सुधरे या दमन स्वीकार करे।'

'ओ दुनिया वाले बता, अंजाम हमारा क्या होगा?
तकदीर खफा, तदवीर सफा, जीने का सहारा क्या होगा।'

लाला लाजपतराय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Unhappy India के प्रारम्भ में ही लिखते हैं कि 'सत्ताधारी अन्यायकारी राजा की शासन नीति में परिवर्तन लाना सुगम है परन्तु प्रजातंत्रात्मक शासन को बदलना बहुत कठिन समस्या है।

भारत को भारत की आंख से देखें

भारत को समझने के लिए भारत की आंख से ही समझना होगा। भारतीय धर्म दर्शन संस्कृति के ज्ञान के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। संस्कृत के द्वारा ही इन्हें भारत की आंख से देख सकेंगे। विदेशियों ने जो हमारे साहित्य का भाष्य किया है श्रद्धा से नहीं जिज्ञासा से, और कुछ ने हम भारतीयों की उस पर जमी हुई आस्था को तोड़ने के लिए वे शव परीक्षा या वे असंगतियां निकालने का प्रयास करते हैं जिससे हमारी श्रद्धा पर चोट पहुंचे। कुछ विद्वानों ने सही अर्थ में भारतीय संस्कृति को समझने का प्रयास किया है पर वे भारतीय परम्परा से अनभिज्ञ या पूरी तौर पर अभिज्ञ नहीं रहने से उनका ज्ञान Second hand या Second class का ही होगा। Frist hand ज्ञान तो हम भारत की परम्पराओं को जानकर भारत की आंख से समझने पर होगा। अपौरुषेय वेद, उपनिषद्, गीता आदि शब्दज्ञान नहीं वरन् अनुभूतियों का संग्रह है और उसको ठीक से समझने के लिए वैसा ही शुद्ध जीवन चाहिए।

बहुत से भारतीय लेखकों ने तोता रटन विधि से पाश्चात्य लेखकों के द्वारा रचित साहित्य को आधार मानकर अपने ग्रंथों की रचना की है। अतः जो भारतीय पाश्चात्य लेखकों के शिष्य रहे उनके ग्रंथों से भी बचना चाहिए।

जिसका महल स्वयं कांच का हो वह दूसरों पत्थर न फेंके—सभी देशों के धर्मग्रंथों में असंगतियां होती हैं। अतः जिसका महल स्वयं कांच का है, जिसके धर्मग्रंथों में असंगतियां ही असंगतियां हैं वह दूसरे के धर्म पर कीचड़ न उछाले।

हम जब interview में जाते हैं तब हम अपने चेहरे को सजा संवार कर जाते हैं और अपने चेहरे को दिखाते हैं मल से भरे हुए गुदे नहीं। उसे तो अच्छी तरह से ढककर जाते हैं। मल से भरे हुए गुदे भी fact हैं फिर भी उसे नहीं दिखाते। उसी प्रकार अपनी संस्कृति, सभ्यता, देश, इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को ही अपने सामने व अन्यों के सामने रखना चाहिए Dark point को नहीं। त्रिगुणों के कारण कुछ गन्दे तत्त्व मिल ही जाते हैं। अतः उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

इतिहास को विकृत क्यों किया जाता है?

कोई भी राष्ट्र जब किसी देश को गुलाम बनाता है तो वह सर्वप्रथम उसकी संस्कृति, दर्शन, परंपराओं, महापुरुषों, गौरव को विकृत रूप में प्रस्तुत करता है। क्योंकि ये वे मानदण्ड या आधारस्तम्भ हैं जिनके ऊपर कोई सभ्यता या देश टिका हुआ होता है। ये उसके लिए गौरव की वस्तु होती है और उसके लिए वह प्राण त्यागने में भी गर्व का अनुभव करता है। इनको हम इतिहास के माध्यम से जानते हैं अतः इतिहास को विकृत किया जाता है।

किसी भी राष्ट्र को सदैव गुलाम बनाये रखने के लिए उसे मानसिक दृष्टि से दुर्बल किया जाता है। उनके अन्दर अपनी संस्कृति, सभ्यता, दर्शन के विषय में हीन भावनाएं भरी जाती है और उनके मनोबल को तोड़ा जाता है। इसी क्रम में इतिहास के विषय में बताया जाता है हिन्दुस्तान गुलामों का राष्ट्र है वह कभी शक, हूणों के अधीन, तो कभी मुगलों के अधीन तो कभी अंग्रेजों के अधीन रहा है। वह कभी भी स्वतंत्र राष्ट्र रहा ही नहीं। इस प्रकार इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को हटाकर अंधकार पक्ष को बढ़ा-चढ़ा कर, तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है।

इतिहास राष्ट्र का चक्षु होता है। इतिहास के द्वारा ही हम जानते हैं कि हमारा राष्ट्र किस समय वैभव के उच्च शिखर पर था, और उस वैभव के आधारभूत कारण क्या थे जिसके कारण हम विश्वगुरु थे। फिर किन कारणों से हम पतन के गर्त में चले गये। तो हम इतिहास के द्वारा जानते हैं कि किन गुणों का पुनः अर्जन करके पुनः विश्वगुरु, विश्व विजेता बन सकते हैं और किन दुर्बलताओं के कारण हम पतित हुए थे उनसे सावधान रहें। विदेशी इतिहासकारों का यह उद्देश्य नहीं था कि हम अपने उज्ज्वल पक्ष को जानकर उससे गौरवान्वित होकर उस दिशा में अग्रसर होवें। वे तो चाहते हैं कि हम पतित इतिहास को ही इतना बढ़ा-चढ़ाकर, तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करें जिससे ये हमेशा पतन के गर्त में ही पड़े रहें। इसलिए हमें प्रथम में Stone age बाद थोड़ा सा अशोक आदि के बाद सीधे मुगलकालीन इतिहास, फिर ब्रिटिशकालीन इतिहास पढ़ाया जाता था। और यही क्रम भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् का रहा है।

इसी प्रकार अंग्रेजों ने यहां University की स्थापना इसलिए नहीं की थी कि हम पढ़कर देशभक्त, आचारवान नागरिक बनें वरन् यहां ऐसे काले अंग्रेज पैदा हों जो उनके प्रति वफादार हों, उनके शासन करने में सहायक हों जिससे देश को अधिक से अधिक दिनों तक गुलाम बनाये रखा जा सके।

भारत में जो अर्थव्यवस्था लागू की गई थी वह इसलिए नहीं की गई कि इस देश को लाभ पहुंचे, यह देश आत्मनिर्भर हो वरन् इसलिए कि इससे लन्दन को कैसे अधिकाधिक लाभ मिलेगा।

अंग्रेजों ने रेललाइन सारे देश में इसलिए नहीं बिछाई थी कि पूरे देश की अखण्डता कायम हो वरन् इसलिए कि इससे उन्हें शासन करने में सुगमता होगी।



काल रात्रि जितनी भी अंधेरी हो, सुप्रभात आता ही है।

—रज्जू भैया

× × ×

अमन्त्र्यमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
आयोग्यः पुरषो नास्ति योजकस्तु दुर्लभः।।

शुक्रनीति, 2/126

मन्त्रहीन कोई अक्षर नहीं होता, किसी भी लता-गुल्म की जड़ औषधविहीन नहीं होती तथा कोई भी पुरुष अयोग्य नहीं होता। इन सबको सही ढंग से प्रयोग करने वाला व्यक्ति ही दुर्लभ होता है।

× × ×

अजरामरवत प्राज्ञ विद्यां अर्थ च चिंतयेत्।
गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्मम् आचरेत।।

विद्या और अर्थ के उपार्जन के समय काल अनन्त है आत्मा अमर है ऐसा अपने को समझना चाहिए पर धर्माचार के समय, सांसारिक जीवन-यापन के समय समझना चाहिए मुझे काल ने पकड़ रखा है, आयु क्षय होती जा रही है।



हिन्दू शब्द की उत्पत्ति

मुझे आपके पत्र में प्रकाशित सम्पादक के नाम पत्र Origin of Hindu हिन्दू शब्द का उद्गम (श्री एस. एन. चौपड़ा द्वारा) पढ़कर बहुत आश्चर्य हुआ। लेखक महोदय के अनुसार हिन्दू शब्द हिन्दसा (अंक) से निकला है क्योंकि हिन्दुओं ने ही सर्वप्रथम अंकों का ज्ञान विश्व को दिया था।

मेरे विचार से ऐसी काल्पनिक उड़ान में कोई तथ्य नहीं है। इनके शब्दों की उत्पत्ति के ज्ञान को किसी भी इतिहासकार या भाषाविज्ञानवेत्ता का समर्थन नहीं मिला है। और यह भाषाविज्ञान के मूल नियमों के भी प्रतिकूल है।

हम यह मानते हैं कि हिन्दू शब्द आर्यन या मानव (मनु भगवान् के वंशज) जितना पुरातन नहीं है। किन्तु जब मानव का वृहद् अर्थ पूरे विश्व की मानवता के लिये किया गया और आर्यन शब्द इस क्षेत्र की प्रमुख जाति के लिये प्रयोग में आता था, या विश्व के अन्य भागों में आर्य वंशजों के लिये प्रयोग होता था तब इस क्षेत्र के मुख्य निवासी समूह के लिए एक उपयुक्त नाम (शब्द) की जरूरत अनुभव हुई।

भारत के यूनान और परशिया (फारस) के साथ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के कारण हिन्दू शब्द की उत्पत्ति हुई जिसका मूल सर्वथा भारतीय ही था। यह इतिहास से स्पष्ट है कि जो लोग वैदिक मन्त्र गाते थे, यज्ञ करते थे और सोमरस का पान करते थे, वे भारतवर्ष के उत्तरी भाग के निवासी थे। भारतीय कालक्रम विज्ञान के अनुसार सामवेद की ऋचाएं सर्वप्रथम सिन्धु (Indus) नदी के तट पर गाई गई—परमपवित्र सिंधु नदी भारत के उत्तर-पश्चिम में बहती है। वृहद् अर्थों में सिंधु का अर्थ एक बड़ी नदी या समुद्र भी माना जाता है। वेदों के अनुसार आर्य जिस देश में रहते थे उसे सप्तसिंधु भी कहते थे। सप्तसिंधु अर्थात् सात पवित्र नदियों का देश। कुछ इतिहासकार पंजाब की पाँच नदियाँ (सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम) और बाएं गंगा, दाएं सिंधु मानते हैं। अन्य इतिहासकार सप्तसिंधु में गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु और कावेरी गिनते हैं और इन्हें सप्तसिंधु मानते हैं। इस विषय पर कुछ विवाद है किन्तु, सभी मानते हैं कि वैदिक काल और उसके बाद भी भारतवर्ष सप्तसिंधु के नाम से प्रसिद्ध था।

कालान्तर में जब ग्रीक-यूनान के निवासी जो मूलतः आर्य ही थे, ने आर्यों के देश भारत पर आक्रमण किया तो उन्होंने यहाँ के निवासियों को आर्य के सिवाय किसी अन्य नाम से बुलाना उचित समझा। भाषा विज्ञान के नियमों के अनुसार वे सिंधु को Indus (इण्डस) कहने लगे। आदि Persians परशियन लोग (ईरानी आर्यन) जो स्वयं आर्य मूल के थे, हमें आर्य के स्थान पर किसी अन्य नाम से जानना चाहते थे। जब अन्तर्राष्ट्रीय संबंध और बढ़े तो भाषाविज्ञान के मूल नियमों के अनुरूप भारत को सप्तसिंधु की जगह हफ्तहिन्दु कहने लगे। वे 'स' ध्वनि को 'ह' कहते थे। इस प्रकार संस्कृत का शब्द 'सप्त' फारसी का 'हफ्त' हो गया। 'सप्ताह' बदल कर फारसी का 'हफ्ता' बन गया। संस्कृत शब्द सुर (देवता) बन गया 'हूर' और असुर (राक्षस) शब्द फारसी में 'अहूर' हो गया। जब सिकन्दर 'भारत जीतो अभियान' में भारत पहुँचा तो उसने अन्य फारसी लोगों से यहाँ के निवासियों के बारे में काफी सुना था—वह उन्हें 'इन्दू' कहने लगा।

धरती और वहाँ के निवासियों का गहरा संबंध होता है। यहाँ के निवासियों को भी 'हिन्दू' कहा जाने लगा। कालान्तर में फारसी लोग इस देश को हिन्द, हिन्दुवर, हिन्दुस्तान कहने लगे और यहाँ के निवासियों को हिन्दू या हिन्दी कहने लगे।

फारसी के पुराने शब्दकोश जैन्दा और पहलवी के अनुसार हिन्दू शब्द संस्कृत शब्द सिंधु से बना है। Encyclopaedia Britannica में भी 'हिन्दू' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द सिंधु से दर्शाई गयी है और संसार के सभी भाषाविज्ञान-वेत्ता इसे स्वीकार करते हैं। 'हिन्दू' शब्द का गलत अर्थ गुलाम या नास्तिक बताया गया जो औरंगजेब के शासनकाल में फारसी भाषा के साथ धोखाधड़ी या बलात्कार था। यह गैर-मुसलिमों को बदनाम करने का षड्यंत्र था। गैर-मुसलिमों को मुगल शासक काफिर या नास्तिक कहते थे।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी श्री चौपड़ा का मानना है कि 'हिन्दू' शब्द फारसी शब्द 'हिन्दसा' (अंकों) से बना है, पूर्णतया असत्य है। 'हिन्दसा' शब्द तो भारतीय मूल का नहीं है। यह अरबी शब्द है। अरबों द्वारा फारस (Persia) आक्रमण के पश्चात् फारसी इस शब्द को हिन्दसा कहने लगे जिससे एक अन्य फारसी शब्द 'अन्दाज' बना।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि हिन्दू शब्द मूल संस्कृत शब्द सिंधु से बना है जिसका 15 सौ वर्षों से अधिक का इतिहास है। आदि यूनानी (Greek) ऐतिहासिक ग्रन्थों में 'इण्डस', 'इन्दु' और 'इन्तू' शब्दों का प्रयोग एवं प्राचीन चीनी यात्रियों के यात्रालेखों में तू, इन्ट्र, एयन्ट्र शब्दों का प्रयोग दर्शाता है कि हिन्दू शब्द का मूल स्रोत बहुत ही प्राचीन है।

24 मार्च, 1956, समाचार सम्पादक हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली

जय भारत—जय स्वतन्त्रता

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् संत इमर्सन ने कहा था :

'To what avail the plough or sail or land or life, if freedom fail'.

अर्थात् 'उस देश के किसान के हल अथवा उपजाऊ मिट्टी का क्या लाभ यदि वह देश अपनी स्वाधीनता खो चुका है।'

यह चेतावनी उन सबके लिए है जो थोड़ी सुख-सुविधा या जीवन के अन्य लाभ के लिये अपनी स्वतन्त्रता का सौदा कर लेते हैं।

ईसाई धर्म के मसीहा यीशु ने कहा था, 'यदि व्यक्ति स्वयं को गंवाकर सम्पूर्ण विश्व को भी पा लेता है तो सब व्यर्थ है।' स्वतन्त्रता को खो देना स्वयं को खो देने के समान है।

जैसे नेत्रों के लिए प्रकाश, फेफड़ों के लिए शुद्ध वायु और हृदय के लिये प्रेम अनिवार्य है उसी प्रकार मानव के लिये उसकी स्वतन्त्रता बहुमूल्य हैं। एक अन्य स्वतन्त्रता के पुजारी का कहना है, 'स्वतन्त्रता के बिना हमारा मस्तिष्क एक काल-कोठरी-सा है, जिसमें पराधीन विचार घुट-घुटकर अन्ततः मर ही जाते हैं।

स्वतन्त्रता का अधिकार

संविधान में जीवन के अधिकार के एकदम बाद स्वतन्त्रता का अधिकार लिखना उचित ही है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था, 'जीवन जीने का पूर्ण मूल्य देकर ही स्वतन्त्रता मिलती है।' किन्तु यह स्मरण रहे कि यद्यपि स्वतन्त्रता का अधिकार जीवन के अधिकार के पश्चात् आता है, किन्तु यह अधिकार किसी प्रकार भी गौण नहीं है। स्वतन्त्रता के दीवाने देश की स्वाधीनता के लिये हंसते-हंसते अपने प्राण न्योछावर कर देते हैं। वे कहते हैं—'हे प्रभु! हमें स्वतन्त्रता का जीवन दो या फिर मृत्यु।' ऐसे वीर घुटने टेक कर जीने के स्थान पर पाँव पर खड़े-खड़े जीवन अर्पण कर देंगे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का उद्घोष था—'स्वाधीनता (स्वराज्य) हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' इस उद्घोष का सरल अर्थ है कि जीवन के अधिकार से ही स्वतन्त्रता का अधिकार पनपता है।

वेदों में भी स्वतन्त्रता का उच्च संदेश इस प्रकार दिया गया है—

जीवेम् शरदः शतम्।
अदीनास्याम शरदः शतम्।

अर्थात् 'हे प्रभु! हम शत वर्ष तक जीयें। पूरी आयु, हम स्वतंत्र रूप में किसी के अधीन न होकर जीवन बिताएँ।

प्रब्रवाम शरदः शतम्

हम यावत् जीवन वाक्-स्वतंत्रता का उपभोग करें।

स्वतन्त्रता का मूल्य

यदि स्वाधीनता और जीवन में संघर्ष हो और जीवन का अर्थ केवल सुख-वैभव हो तो स्वयं की स्वाधीनता के लिये सुख का परित्याग कर देना चाहिये—

आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्

अर्थात्—'स्वयं की स्वाधीनता के लिये पूरी धरती का साम्राज्य त्याग देना चाहिये।'

प्रसिद्ध साहित्यकार फ्रेंकलिन कहते हैं—'जो लोग अस्थाई सुरक्षा प्राप्त करने के लिये अपनी स्वाधीनता को त्यागते हैं, वे सुरक्षा एवं स्वाधीनता—दोनों के अयोग्य हैं। स्वाधीनता का मूल्य केवल नित्य चौकसी (सतर्कता) ही नहीं बल्कि स्वाधीनता की रक्षा के लिये आत्मबलिदान की उमंग भी है। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय का कहना था—'स्वाधीनता का नन्हा पौधा केवल शहीदों के रक्त पर पनपता है।'

मोक्ष : गांधीजी का मत

गांधीजी की स्वाधीनता पर विचारधारा आध्यात्मिक थी। वे कहते हैं—'मैं सत्य की खोज में लगा हूँ। मुझे इसी जन्म में मोक्ष चाहिये। मोक्ष पाने को मैं अधीर हूँ। मेरी समाज-सेवा भी मुक्ति पाने का ही प्रयास है। मैं अपनी आत्मा को इस शरीर से मुक्त कराने के लिये प्रयत्नशील हूँ। अतः मेरी राष्ट्र भक्ति पूर्ण स्वाधीनता एवं मुक्ति प्राप्त करने की ओर उठा पहला कदम है।'

स्वाधीनता और संस्कृति

स्वाधीनता वास्तव में संस्कृति का प्राण है। हमारे राजनीतिक नेता यह समझाते हैं कि राजनीतिक स्वाधीनता ही मुख्य ध्येय है, जिसके मिलते ही वस्तुएँ अपने-आप जुड़ती चली जाएँगी। यूरोपीय विद्वान् देवे का मत है कि राजनीतिक स्वाधीनता सांस्कृतिक स्वाधीनता का ही प्रभाव है न कि इसका उलटा।

श्री अरविन्द : स्वाधीन व्यक्तित्व

योगीराज अरविन्द घोष, भारत की स्वतन्त्रता के महान् संत, जिनकी जन्म-शताब्दी भारत की स्वाधीनता के 25वें वर्ष में पड़ती है, राष्ट्रवाद के विषय में कहते हैं—'राष्ट्रधर्म एक अवतार है, भगवान् का एक रूप है जिसकी कभी हत्या या ह्रास नहीं हो सकता। सर्व बंधनों से मुक्त राष्ट्र एक बड़ा यज्ञ है....मातृभूमि के पूजन के लिये आत्मसमर्पण ही स्वाधीनता का मूल्य है....यज्ञ की प्रखर सात ज्वालाओं में हमें अपना सर्वस्व, अपना रक्त, जीवन और खुशियाँ भी अर्पण करनी हैं।'

देश का बँटवारा समाप्त हो

15 अगस्त सन् 1947 को भारत का बँटवारा हो गया। श्री अरविन्द का हृदय द्रवित हो गया—'किसी भी उपाय से, कुछ भी यत्न करके भारत में अखण्डता आनी चाहिये। आपसी एकता, मैत्री, भारत की महानता एवं अखण्डता के लिये अत्यावश्यक है।'

भारतमाता की जय

भारत के उज्ज्वल भविष्य की परिकल्पना करते हुए श्री अरविन्द कहते हैं—'भारत के उज्ज्वल भविष्य का सूर्य उदय होगा, जिसका प्रकाश भारत की, एशिया की, सकल विश्व की सीमा लाँघकर बहुत दूर तक फैल जाएगा।'



भारत भूमि को विश्वेश्वर ने एक क्यारी के रूप में चुना। पौधा लगाने के लिए पहले क्यारी चाहिए। इसी प्रकार भगवान् ने सत्य के लिए भारत को एक नर्सरी बनाया। 'यहां मैं धर्म का आरोपण करके इसको पनपने दूंगा। फिर यहां से लेकर उठा-उठाकर उस धर्म के पौधे को सारे संसार में लगा दूंगा।'

—परमपूज्य श्री स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी



स्वतन्त्रता के स्वर्ग में

'सभ्यता का राष्ट्रीयकरण'—यह लोकप्रिय राजनीतिक वाक्य नहीं है, किन्तु आधुनिक राजनीति के विद्यार्थी के लिए इस वाक्य की मूलभावना अज्ञात नहीं है। एकाधिकार राज्य (जहाँ एक ही राजनीतिक दल का पूर्ण अधिकार हो) के अर्थशास्त्री 'राष्ट्रीयकरण' शब्द का प्रयोग कई संदर्भों के संबंध में करते हैं। उनके लिए इसका अर्थ राज्य-नियन्त्रण या राज्य द्वारा एकाधिपत्य है। आधुनिक राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था में रेलवे का राष्ट्रीयकरण, बीमा का राष्ट्रीयकरण, व्यापार का राष्ट्रीयकरण आदि ऐसे वाक्य भ्रान्तिकारक शब्दजाल हैं। किसी भी स्वतंत्रताप्रेमी व्यक्ति के लिए यह विचार चुनौतीपूर्ण है कि क्या हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों पर राष्ट्रीय नियन्त्रण होना चाहिये? क्या राज्य को हमारी विचारधारा और हम क्या सोचते हैं इस पर अंकुश लगाना चाहिये? क्या इस प्रकार का शासन का नियन्त्रण हमारी आकांक्षाओं, मान्यताओं, भावनाओं, श्रद्धा और धर्मनिष्ठा पर तर्कसंगत या न्यायोचित होगा?

सभ्यता का मुख्य उद्देश्य मानव का विकास है—उसके मन का विकास और आत्मा का उत्थान। किसी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति की कसौटी उसके जीवनमूल्य और मान्यताएँ हैं, जो मानव और समाज के विकास के लिये परमावश्यक होते हैं। इस प्रकार संस्कृति और जीवनमूल्यों में घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। क्योंकि संस्कृति का मुख्य उद्देश्य मानव का पूर्ण विकास करना है, अतः वह मानवता के हर अंग को छूती है जो कला, साहित्य, काव्य, दर्शन, संगीत और नृत्य के रूप में प्रखर होती है।

संस्कृति व्यक्ति विशेष का मानसिक-सांस्कृतिक विकास करती है न कि एक समुदाय का। सत्य का सच्चा स्वरूप जानने से उसके हृदय-उपवन में असंख्य पुष्प (ज्ञान और माधुर्य के) अपनी छटा बिखेरते हैं। मानव मन ही संस्कृति का प्रथम झूला है। मानव संस्कृति का इतिहास उन कवियों, कलाकारों, गम्भीर चिन्तकों के ताने-बाने से बना है, जिन्होंने सत्य, साधुता, सौन्दर्य का गहन चिन्तन किया और अपने अस्तित्व की चिन्ता किये बिना उचित-अनुचित का पक्ष समाज

के सम्मुख रखा। यह सब उन्होंने अंतरात्मा की ध्वनि, ललकार के लिए किया ताकि वे जीवन और आत्मा पर खरे उतरें। अतः पूर्ण स्वतन्त्रता संस्कृति का प्राण है। संस्कृति प्रत्येक मानव को ईश्वर की देन है, यह शक्ति और प्रकाश की एक चिनगारी है, जो बाह्य अंकुश या नियन्त्रण को कभी सहन नहीं कर सकती।

एक कलाकार अपना जीवन जीता है—अनुभूति लेता है और गीत गाता है स्वतंत्र कोयल की तरह। उसे कोई सामाजिक बंधन या राजनीतिक नियन्त्रण मान्य नहीं है। उसकी आत्मा कोई बंधन या नियन्त्रण स्वीकार नहीं करती। वह अपनी लेखनी अंतरात्मा में डुबोकर गीतों और चित्रों के रूप में अपने गहन भाव प्रकट करता है। एक कवि स्वतन्त्रता और पावन सौन्दर्य का अवतार होता है। जब कलाकार की आत्मा को राज्य खरीद लेता है तो सत्य और सौन्दर्य अनाथ हो जाते हैं। कोई कवि या कलाकार अपनी विचारधारा पर बाह्य नियन्त्रण या बंधन स्वीकार नहीं कर सकता।

सरदार के. एम. पणिक्कर ने कहा है—'हर राज्य आज एकाधिकार की ओर जा रहा है—सब शक्तियों को अपने हाथ में रखना चाहता है। यह बहुमुखी नाग की तरह है जो आकाशवाणी द्वारा प्रचार-प्रसार करता रहता है; टेलिफोन पर हमारे वार्तालाप को सुनता है; हमारे जल, भोजन पर नियन्त्रण रखता है; हमारे सब क्रियाकलापों पर अंकुश रखता है। इस प्रकार व्यक्ति तो नगण्य हो गया है।' स्वतन्त्रता के सौन्दर्य के विषय में डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं—'स्वतन्त्रता का मुख्य उद्देश्य यह है कि भीड़ में व्यक्ति कहीं खो न जाए, उसकी आत्मा कहीं घुटन में दब न जाए। व्यक्ति की विचारधारा और दृष्टि धूमिल न हो।'

प्रकृति हमें समझाती है कि वृक्षों का सहारा लेने वाली लताएँ अपने तने पर कभी खड़ी नहीं हो सकतीं। वे कभी सुदृढ़ नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार राष्ट्र का सहारा लेने वाले कलाकार और कवि अपने नैतिक अस्तित्व और चरित्र का बल बढ़ा न सकेंगे। वे तो राज्य के हाथों कठपुतली बन जाते हैं। वे अपने शासकों के इशारों पर उनकी इच्छानुसार पूँछ हिलाते रहते हैं।

भारतीय हिन्दी साहित्य के इतिहास में कुछ कलाकारों-कवियों ने राज्य का आलम्बन लिया था। लेकिन राज्य के सहयोग के बदले उन्हें आत्मा की स्वतन्त्रता की बलि देनी पड़ी। पृथ्वीराज चौहान के चचेरे भाई जयचन्द इतिहास में एक देशद्रोही और भ्रातृत्व पर कलंक के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु उनके राजकवि केदार भट्ट ने अपने ग्रन्थ 'जय मयंक जस चन्द्रिका' में जयचन्द को चन्द्रमा के प्रकाश की भांति उज्ज्वल दिखाया है। जयचन्द जो इतिहास में एक देशद्रोही है, इस कवि के शब्दों में चन्द्रमा के प्रकाश के विजेता के रूप में प्रस्तुत होते हैं, क्योंकि इस कवि की लेखनी और वाणी पर राजा का नियन्त्रण था। यह दुःखद सत्य है कि

राज्य का संरक्षण और समर्थन पाकर कलाकार, संगीतज्ञ और कवि केवल चाटुकार या भाट बनकर रह जाते हैं जिन्होंने चाँदी के कुछ टुकड़ों के लिये अपनी आत्मा को बेच दिया।

कोयल को कभी हम अपनी इच्छानुसार अमुक समय पर अमुक स्थान पर गाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। कोई अच्छा कवि या कलाकार शेले के स्काई लार्क की तरह होता है जिसका संगीत केवल आत्मा की प्रतिध्वनि के अनुसार ही प्रस्फुटित होता है। सच्चा कलाकार अक्सर धारा के विरुद्ध चलता है। वह अपनी स्वतन्त्रता, चरित्र एवं मौलिकता के लिए लोकप्रिय सामाजिक धारणाओं के विरुद्ध भी जा सकता है। यदि ये मानवता के प्रहरी अपनी अस्मिता और गौरव को सोने-चाँदी के कुछ टुकड़ों के लिए बेच दें तो मानवता का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा। यदि सर्वशक्तिशाली राज्यसत्ता बल और प्रतिबंधों के प्रयोग से कवित्व, संगीत और कला पर राजनीतिक अंकुश लगाएगी तो मानव इतिहास का अंधकारमय दिवस दूर नहीं है।

कलाकार अपने संगीत और कला का स्वामी होता है। वह अन्तरात्मा से ऊपर किसी का स्वामित्व स्वीकार नहीं कर सकता। राज्यसत्ता जब कलाकार पर अपना नियन्त्रण लगाती है, तब वह संस्कृति एवं कला के लिये प्राणघातक होता है।

यदि सत्ता बुद्धि, कला, मौलिक चिन्तन पर नियन्त्रण लगाएगी तो समाज का भविष्य अंधकारमय ही होगा।

डॉ. रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वतंत्र चिन्तन के समर्थक थे। मानव की स्वतन्त्रता के लिए पिपासा रवीन्द्रनाथ इस गीत में व्यक्त करते हैं—

जहाँ मन भय से मुक्त है—भाल गर्व से ऊँचा उठा हो
जहाँ ज्ञान स्वतन्त्र, निरंकुश है
जहाँ विश्व संकीर्णता की दीवारों से
टुकड़ों में बँट नहीं गया....
ऐसे स्वतन्त्रता के स्वर्ग में
मेरे पिता....मेरा देश जागे....

राष्ट्र के प्रति हमारी कैसी दृष्टि होनी चाहिए

आज सबकी आम शिकायत है कि भारत में नीचे से लेकर ऊपर तक सब भ्रष्ट हैं। हिन्दुस्तान में जन्मना मेरा दुर्भाग्य है, हिन्दुस्तान को कोई बचा नहीं सकता।

समाधान—कुछ लोगों से पूछा जाता है कि तुम समाज के लिये क्या करोगे तो वह कहता है कि मैं समाज के लिये कुछ नहीं करूंगा। पर समाज की हानि भी नहीं करूंगा। यह कहना वैसा ही हुआ कि मैं मां को रोटी भी नहीं दूंगा, किन्तु मां को गाली भी नहीं दूंगा। मैं मां को भोजन नहीं दूंगा किन्तु मैं मां को दुत्कारूंगा नहीं, हाथ नहीं उठाऊँगा। इस प्रकार मां को भूखा मारकर कहे कि मैंने मां का तिरस्कार नहीं किया।

अगर हम अपने शरीर या पेट को एक समय भोजन न दें तो वह बगावत कर उठता है। अगर परिवार को कुछ दिन नहीं सम्हाला तो परिवार बगावत कर उठता है। तो क्या जिस राष्ट्र को मैंने सदियों से उपेक्षित कर रखा है वह बगावत नहीं करेगा क्या? आप शरीर के लिये कितना समय देते हैं, परिवार के लिये कितना समय देते हैं फिर आप सोचें राष्ट्र के लिये आप कितना समय देते हैं। जब कोई हिन्दुस्तान की आलोचना करता है तब लगता है कि वह हिन्दुस्तान से बाहर है। वह हिन्दुस्तान का अंग नहीं है। मां के बेटे अगर कमीने हो जाय तो मां तिरस्करणीय नहीं है वरन् उसका बेटा तिरस्करणीय है। अत: अपने कमीनेपन का तिरस्कार करो, मां का नहीं।

अगर कोई मां-बाप को त्यागता है तो वह निंदनीय दृष्टि से देखा जाता है पर जो राष्ट्र को त्यागता है तो वह कितना निन्दनीय है? किसी से पूछा जाता है कि तुम अपने शरीर की सेवा करोगे या समाज की। तो उसका उत्तर होता है शरीर की तो सेवा करनी ही पड़ेगी।

कोई भी देश स्वयं महान् नहीं होता। उसके पुत्र महान् होते हैं तो वह देश भी महान् होता है। आज अमेरीका महान् है तो अपने पुत्रों के कारण। अगर भारत पहले विश्वगुरु था तो अपने पुत्रों के कारण। उसके पुत्र त्यागी, तपस्वी, ऋषि थे तब देश महान् था, जगद्गुरु था, जगत्वंदनीय था।

अतः हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं। हम देखें कि भारत पहले किन गुणों के कारण महान् था और उन गुणों के पतन के कारण आज किस प्रकार हमारा अधःपतन हुआ है। अतः हमें देखना है किन गुणों को पुनः अर्जित करके हम महान् हो सकते हैं।

इतिहास साक्षी है। इतिहास उन्हीं व्यक्तियों को पूजता है जो अपने जीवन में उन गुणों का विकास करके राष्ट्रसमर्पित जीवन व्यतीत करता है और उन व्यक्तियों को इतिहास कूड़ेदानी में फेंक देता है जिनका जीवन व्यक्तिगत भोग और परिवार तक सीमित होता है। लोकमान्य तिलक के साथ और भी 44 छात्रों ने वकालत पास की। पर उनका इतिहास में नामोनिशान भी नहीं है क्योंकि उनका जीवन अपने आप तक सीमित था।

देश के उत्थान के लिये हमें यह बताया जाना चाहिये कि किन गुणों के कारण विश्ववंदनीय थे और किन दुर्बलताओं के कारण हम पतित हुए। फिर हम उन गुणों को पुनः कैसे अर्जित करें कि हम पुनः विश्वगुरु बन सकते हैं।



वे देश भाग्यवान् हैं जो चिरन्तन स्वदेश को देश के इतिहास में खोज लेते हैं। बाल्यकाल में इतिहास ही देश के साथ उनका परिचय करा देता है। किन्तु हमारे यहां बिल्कुल उलटा है। देश का इतिहास ही हमारे स्वदेश को आच्छन्न किये हुए हैं।....अंग्रेजों के लड़के यह जानते हैं कि उनके बाप-दादों ने अनेक युद्ध जीते, अनेक देशों पर अधिकार किया और वाणिज्य व्यवसाय बढ़ाया। वे स्वयं भी रण गौरव, धन गौरव, और वाणिज्य गौरव के अधिकारी बनना चाहते हैं। हम जानते हैं कि हमारे पूर्वजों ने देश अधिकार और वाणिज्य-व्यवसाय नहीं किया। यही जानने के लिए है भारतवर्ष का इतिहास। उन्होंने क्या किया हम नहीं जानते।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर



संस्कृति विहार का स्पष्ट उद्देश्य है—प्रत्येक भारतवासी को शत-प्रतिशत भारत भक्त बनाना

(क) प्रत्येक भारतवासी की शत-प्रतिशत श्रद्धा भारत के भीतर हो। भारत से बढ़कर किसी अन्य देश को न माने।

(ख) भारत ही उसकी कर्म भूमि, धर्म भूमि, पितृ भूमि एवं मातृ भूमि—सभी कुछ है। यदि किसी की धर्म भूमि भारत से बाहर (जैसे मक्का) चली जाती है तो भारत उसके लिये पुण्य भूमि न होकर भोग भूमि रह जाती है।

भोग की वस्तु	**पूजा की वस्तु**
(1) भोग की वस्तु का महत्त्व तब तक है जब तक उससे स्वार्थ की पूर्ति होती है।	पूजा की वस्तु का महत्त्व शाश्वत है। सदा रहने वाला है।
(2) भोग की वस्तु स्वार्थ है। It is a meand to end	पूजा की वस्तु अपने आप में साध्य है। end is itself
(3) भोग की वस्तु खरीदी और बेची जाती है। व्यापार का काम होता है।	पूजा की वस्तु कभी खरीदी और बेची नहीं जाती। इसमें व्यापार की कल्पना भी पाप है।
(4) भोग की वस्तु काटी-बांटी जा सकती है। जमीन काटी-बांटी जाती है।	पूजा की वस्तु को विभाजित नहीं करते। मां को बांट नहीं सकते।
(5) भोग की वस्तु के प्रति आज का प्रेम कल वैर में बदल जाता है—जैसे वेश्या। आज भोग किया, कल मनमुटाव होने पर वैर में परिणत हो जाती है। भोग की वस्तु साधन मात्र होती है।	पूजा की वस्तु पर अखण्ड प्रेम की भावना होती है।

(6) भोग की वस्तु का हम शोषण करते हैं, जब उसको हम साधन मात्र मानते हैं तो उसकी भलाई की चिन्ता किये बिना शोषण करते हैं, रस चूसते हैं। हमारी तृप्ति के साथ उसका नाश हो जाता है।	पूजा की वस्तु का शोषण नहीं किया जा सकता। अपनी पूजा द्वारा उसका महत्त्व बढ़ाते हैं।
(7) भोग की वस्तु से हम कुछ लूटना या छिपाना चाहते हैं।	पूजा की वस्तु के प्रति हम कुछ समर्पण करते हैं। हमारी भावना कुछ देने की होती है। मां की पूजा में कुछ चढ़ाना यह भारत भक्ति है।
(8) जैसे वेश्या भोग की वस्तु है, जमीन भोग की वस्तु है।	मां पूजा की वस्तु है। सर्वतोभावेन समर्पण की भावना भक्त की होनी चाहिये।

उद्देश्य-प्राप्ति के उपाय—

प्रत्येक भारतवासी को भारतीय संस्कृति का ज्ञान और गौरव होना चाहिए। ज्ञान होने पर ही सत्य से प्रेम होता है। सत्य को जानने से सत्य के प्रति श्रद्धा होती है। Once you know the truth, you believe in truth.

भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य	—	रामायण, महाभारत
भारत के राष्ट्रीय महापुरुष	—	राम-कृष्ण
भारत का राष्ट्रीय इतिहास	—	राणा प्रताप है अकबर नहीं
राष्ट्रीय उत्सव	—	होली, दीपावली
राष्ट्रीय वेश-भूषा	—	धोती-कुरता
राष्ट्रीय दर्शन	—	षड्दर्शन, बौद्ध, जैन
राष्ट्रीय ललित कला	—	शिल्प, मूर्तिकला
राष्ट्रीय साहित्यकार	—	व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसीदास
भारतीय शिष्टाचार	—	अभिवादन

इसमें किसी पंथ, सम्प्रदाय या धर्म का झगड़ा नहीं है।

राष्ट्र की मूल धारा का अर्थ

Concept of our nation as 'one people one culture, one history, one ancestors and concept of one law for all.'

एक राष्ट्र की अवधारणा।

द्विराष्ट्र की अवधारणा ने देश का विभाजन किया और अलग-अलग राष्ट्रों की बात उठती रहती है।

एक जन की बात यानी एक राष्ट्रीयता की बात। अलग-अलग जाति, प्रांतीयता की बात नहीं। सभी बंगाली, बिहारी मुसलमान नहीं। सभी को हिन्दू या भारतीय कहा जाना चाहिए।

एक संस्कृति की बात न कि मिली-जुली खिचड़ी संस्कृति। गंगा-जमुनी संस्कृति नहीं। किसी भी देश की संस्कृति को मिली-जुली नहीं कहा जाता। यद्यपि सभी संस्कृतियां अन्य संस्कृतियों के तत्त्वों को ग्रहण करती हैं। पर वह मिली-जुली संस्कृति नहीं कहलातीं, न ही इसका ढोल पीटा जाता है। वह अपने देश विशेष की ही संस्कृति कहलाती है, न कि मिली-जुली संस्कृति। जो गंगा-जमुना की Terminology के आधार पर संस्कृति को समझना चाहते हैं उन्हें समझना चाहिए कि प्रयागराज में त्रिवेणी संगम के पश्चात् भी उसे गंगा ही कहा जाता है। हमारी संस्कृति भी संगम के पश्चात् भी हिन्दू या भारतीय संस्कृति ही कहलाएगी।

हमारे देश के इतिहास के साथ भी दुर्भाग्य जुड़ गया है कि इतिहास को विकृत करके आक्रान्ताओं के नाम पर हमारे देश के इतिहास का विभाजन करके पढ़ाया जा रहा है। विश्व के किसी भी देश में आक्रान्ताओं के नाम पर न इतिहास का विभाजन किया जाता है न पढ़ाया जाता है। पर हमारा दुर्भाग्य है कि स्वाधीन भारत में भी हमने इतिहास का विभाजन आक्रान्ताओं के नाम पर किया यथा मुगल काल, ब्रिटिश काल आदि। मुगल काल पर गर्व करना सिखाया जा रहा है। उसे देश का स्वर्णिम काल कहा जा रहा है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत नराधम, दुष्ट, देशद्रोही और दुराचारी व्यक्ति भी एम.ए. दर्शन, साहित्य व विज्ञान, शास्त्रज्ञ (डॉक्टर) की उपाधियां प्राप्त

कर सकता है। क्योंकि इस शिक्षा प्रणाली की जड़ें भारत की सांस्कृतिक भूमि में नहीं है और इसका सम्बन्ध विद्या और वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती से नहीं है।

इस शिक्षा प्रणाली के इस प्रकार पुनरुद्धार की आवश्यकता है जिससे वह सरस्वती माता के आशीर्वाद के योग्य बन सके व भारत माता की आशाओं को पूर्ण कर सके।

एक महापुरुष की अवधारणा है कि किसी भी देश में दो प्रकार के पूर्वजों की अवधारणा नहीं होती। हमारे देश के पूर्वज, महापुरुष, आदर्श पुरुष—राम, कृष्ण, शिवाजी, राणा प्रताप हो सकते हैं। सिकन्दर, बाबर, अकबर या औरंगजेब नहीं। ये आक्रान्ता देश के दुश्मन, सभ्यता-संस्कृति के शत्रु थे जो कभी इस देश के महापुरुष, मान्य पुरुष नहीं हो सकते। जो कहते हैं अकबर भी महान् और राणा प्रताप भी महान् वो देश को भ्रमित कर रहे हैं। वे वास्तव में देश के प्रति निष्ठावान नहीं हैं।

सभी के लिए एक जैसी कानून व्यवस्था

Concept of one nation.
Concept of one people.
Concept of one culture.
Concept of one history.
Concept of one ancestors.
Concept of one law for all.

मेरे देश के तीन नाम हैं—हिन्दुस्तान, भारतवर्ष तथा आर्यावर्त्त। देश की भावना एक परम पवित्र भावना है। यह पवित्र भावना मानव शरीर में एक रोमांच-सा उत्पन्न कर देती है। कौन-सा ऐसा भारतीय है, बंकिम बाबू का अमर गीत 'वंदेमातरम्' जिसके हृदय में उथल-पुथल नहीं मचा देता। यदि वास्तव में इस भावना से शून्य कोई व्यक्ति इस भारत भूतल पर है तो समझ लो उसके शरीर में रुधिर नहीं नमक का तेजाब है। उसके शरीर में अंतड़ियां नहीं फौलाद की जंजीरें हैं। उसके दिल में दिल नहीं पत्थर का ढेला है।

देश के तीन नाम—इस देश के तीनों नाम इसके तीन गुणों के प्रतीक हैं। आर्यावर्त्त इस देश की संस्कृति का प्रतीक है। भारतवर्ष इस देश के इतिहास का प्रतिनिधि है और हिन्दुस्तान इस देश की भौगोलिक संज्ञा है। सृष्टि के आरम्भ में इस देश का कुछ भी नाम न था। तथापि इस देश के रहने वाले इस देश को जननी जन्मभूमि तथा अपने को आर्य कहते थे। 'आर्य' शब्द का अर्थ है ईश्वर पुत्र, श्रेष्ठ, आचारवान, गुणवान—एक ऐसा व्यक्ति सद्-असद् विवेक तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति ही जिसके जीवन का उद्देश्य है।

राष्ट्र और राज्य

राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। राज्य एक राजनीतिक इकाई है। राष्ट्र एक है। राज्य अनेक हैं, प्रशासनिक इकाई हैं। राष्ट्र के सफल संचालन में अनेकानेक संस्थाएं होती हैं जो स्वशासित, स्वायत्त सत्ता होती हैं। जैसे परिवार एक संस्था है। विवाह एक संस्था है। चारों आश्रम एक-एक संस्था हैं। शिक्षा एक संस्था है जो सरकारी नियंत्रण से मुक्त स्वशासित स्वायत्त संस्था है जिसके अपने विधान हैं। उसके द्वारा परिचालित हैं। ऐसे ही ग्राम पंचायत एक संस्था है। इन्हीं संस्थाओं की तरह राज्य भी एक संस्थाविशेष, प्रशासनिक इकाई है, राज्य की अन्तःबाह्य रक्षा उसका विशेष दायित्व है। ऐसे ही न्याय व्यवस्था एक हमारी संस्था है। अर्थ, धर्म हमारी एक संस्था है। व्यापार संघ एक संस्था है। जिसमें राज्य का हस्तक्षेप नहीं होता था। इस प्रकार हमारे समाज की रचना का एक केन्द्र नहीं था वरन् अनेकानेक केन्द्र थे।

जबकि पश्चिम में समाज रचना में राज्य ही एकमात्र केन्द्र था, जो सर्वेसर्वा था, जो सारे राज्य की सर्व प्रकार की चिन्ता करता था।

यही कारण है कि पश्चिम में राज्य के पराजित होते ही राष्ट्र भी समाप्त हो जाते थे। क्योंकि सब कुछ राज्य पर निर्भर था।

पर भारत में राज्य तो पराजित होते थे, पर राष्ट्र जीवन अखण्ड-अक्षत रूप से चलता था। क्योंकि ये संस्थाएं राज्य पर निर्भर नहीं थी।

सर्वप्रथम, अंग्रेजों ने हमारी जड़ को (मूल को) समझकर उस पर प्रहार किया और हमारी राष्ट्र की सारी व्यवस्थाओं को अपने हित के अनुसार ढाल दिया जिसके कारण हमारा समाज निरन्तर विश्रृंखलित होता गया। कमजोर पड़ता गया। स्वाधीनता के बाद इसमें परिवर्तन आना चाहिए था जो दुर्भाग्य से पंडित नेहरू के कारण नहीं हो सका।

वास्तविक इतिहास का बोध आवश्यक

जब तक आर्यावर्त्त के देश का वास्तविक इतिहास इस देश के नागरिकों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाएगा तब तक उनमें स्वदेशाभिमान, स्वजाति गौरव, स्वराज्य कामना तथा अस्मिता के भाव जागृत नहीं हो सकेंगे। अतः ऐसा इतिहास होना चाहिए जो भारतीय परम्परा के प्रति आस्था को जगा सके तथा जिसमें भारतवर्ष के अतीत का सही व सजीव चित्रण किया गया हो। विदेशी लेखकों द्वारा लिखे गए इतिहास उस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते हैं।

संतों की वाणी के प्रकाश में मध्यकालीन मुगल इतिहास का पुनर्मूल्यांकन

प्रो. ओबराय ने शोध पत्र में तुलसी साहित्य में प्रतिबिम्बित मध्यकालीन भारत का चित्र प्रस्तुत कर मध्यकालीन इतिहास का पुनर्मूल्यांकन किया।

प्रो. ओबराय ने स्थापित किया कि जिन मुगल सम्राटों को इतिहास में महान् मुगल कहकर सम्बोधित किया जाता है उन्हें तुलसी एवं तत्कालीन संत कवियों ने चोर, लुटेरे, पापी, हत्यारे के रूप में चित्रित किया है। अतः हमें राग-द्वेष से मुक्त इन संतों की वाणी के आधार पर मध्यकालीन इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए।

एक बात ध्यान देने की है मध्यकाल के समस्त कवि, रचनाकार, ग्रंथकार, प्रवचनकार महाराणा से प्रेरणा लेते हैं। इसमें प्रेरणा के स्तर पर 'अकबर' अनुपस्थित है। राजसत्ता में अकबर की बादशाहत थी, लेकिन साहित्य और जनता के स्तर पर प्रताप की बादशाहत स्पष्ट नजर आती है।

—प्रो. ओबराय

हिन्दुत्व एवं आर्य समाज पर घातक प्रहार : नेहरू परिवार का कमीना वार

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, जो अपने आपको अपघटना से हिन्दू (Hindu by Accident) कहने में गर्व मानते हैं, अपनी पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इंडिया के पृष्ठ 337 पर लिखते हैं—'आर्य समाज जो खुद तो इस्लाम की ही हूबहू नकल था, दूसरे मतों के अतिक्रमण के विरुद्ध हिन्दुओं की हर बात का रक्षक बनने का दावा करता रहा।' अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद पण्डित नेहरू के आर्य समाज पर किए गए इस कमीने वार की घोर निन्दा करती है तथा प्रबल मांग करती है कि इन पंक्तियों को उक्त पुस्तक से शीघ्र हटाया जाए।

डिस्कवरी ऑफ इंडिया के पृष्ठ 97 पर पण्डित जी लिखते हैं—'गोमांस खाना, जिसका पहले (महाभारत काल से पहले) समर्थन होता था, बाद में बिल्कुल मना कर दिया गया। महाभारत में ऐसे स्थल मिलते हैं जहां सम्मानित अतिथियों को गोमांस एवं बछड़े का मांस भेंट किया जाता था।' विगत 5 वर्ष से विद्यार्थी परिषद् हिन्दू धर्म के मूल पर चलाए गए उक्त कुठार के विरुद्ध रोष प्रकट कर रही है। किन्तु, पण्डित नेहरू ने कोई उत्तर नहीं दिया।

अभी हाल में 24 जनवरी, 1962 को पं. नेहरू की सुपुत्री इंदिरा गांधी ने आंध्रप्रदेश के ग्राम जोगीपेठ में एक भाषण में कहा-'आर्य समाज इत्तेहादुल्मुसलमीन जैसी साम्प्रदायिक तथा देश के लिए भयानक संस्था है। उससे जनता सावधान रहे।' देशवासियों को ज्ञात है कि इत्तेहादुल्मुसलमीन हैदराबाद के गुण्डे मुसलमानों की वह संस्था थी जिसे देश के कट्टर शत्रु मुहम्मद कासिम रिजवी ने प्रारंभ किया था। आर्य समाज की उस संस्था से तुलना कर इन्दिरा गांधी ने देश भक्त आर्य समाजियों को देशद्रोही, गुण्डे तथा महर्षि दयानन्द की देश के वैरी कासिम रिजवी से उपमा की है। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् अपने पूरे बल के साथ उक्त कथन का विरोध करती है तथा मांग करती है कि श्रीमती इंदिरा गांधी उक्त कथन के लिए सारे देश से सार्वजनिक क्षमा मांगे।

छात्र और सक्रिय राजनीति

विद्यार्थी-जीवन विद्या के अर्जन का जीवन है। विद्यार्थी का अर्थ ही है कि विद्या के अर्थ के लिए कार्य करने वाला।

छात्र के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य विद्या प्राप्त करना है। अन्य सब उद्देश्य इसके सामने गौण हैं।

राजनीति का अर्थ है वह युक्ति, नीति या क्रियाकलाप जो मनुष्य को राज्य तक पहुंचा दे।

राज्ये नयति इति राजनीति

इस प्रकार के क्रियाकलाप हर सभा, समिति, प्रदर्शनी, आन्दोलन, संघर्ष, नारेबाजी, छलछद्म, आलोचना, प्रत्यालोचना, विज्ञापन, मिथ्याचार, कामचलाऊ सिद्धान्त, भय, प्रलोभन, स्वार्थ के लिए येन-केन प्रकारेण सत्ता हथियाना। ये सब कहीं भी विद्यार्थी की परिभाषा में नहीं आता।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव जीवन के चार प्रमुख आश्रम हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम शुद्ध रूप से ज्ञान साधना का काल है। अतः इस आश्रम की मर्यादा में राजनीति के छल-प्रपंचमय क्रियाकलापों का कोई स्थान नहीं बचता।

विद्यार्थी-जीवन रस संचय का काल है। जैसे छोटे पौधे को पूर्ण विकसित होने तक केवल अच्छे से अच्छा खाद-पानी ग्रहण कर अपना विकास ही करना चाहिए और जल्दबाजी में फलोत्पादन की कुचेष्टा नहीं करनी चाहिए। विद्यार्थी-जीवन में यदि कोई राजनीति से आकृष्ट होकर जल्दबाजी में राजनीति के दंगल में उतरना चाहेगा तो न उसका विद्यार्थी-जीवन सफल बनेगा और न ही राजनीति के दंगल की शोभा बढ़ेगी। कच्चा पौधा, अपरिपक्व लता से न फूल सुन्दर होगा न फल सरस होगा और न ही बीज पुष्ट होगा।

इसलिए राजनीति शुद्ध, सूक्ष्म ज्ञान साधना में सबसे बड़ी बाधक है। मेरा यह निश्चित मत है कि छात्रों को राजनीति पढ़नी अवश्य चाहिए पर मेरी स्पष्ट चेतावनी है कि छात्र जीवन में उसे सक्रिय राजनीति में पड़ना नहीं चाहिए। विद्यार्थी-जीवन में यदि उसे राजनीति के कीड़े लग जाएंगे तो उसका विद्या अर्जन का भाव खो जाएगा।

व्यक्ति के नाम का महत्त्व क्या है?

व्यक्ति के नाम का महत्त्व और किन्हीं आदर्शों से उसका सम्बन्ध— हर व्यक्ति की पहचान उसके नाम से होती है। नाम से केवल शरीर की ही पहचान नहीं होती वरन् उसकी जाति, प्रांत, भाषा, संस्कृति, उसके आदर्श और जीवनमूल्य, जिससे वह सम्बन्धित है, पता लग जाता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट नाम होता है। जो उसकी जाति, भाषा, प्रांत, संस्कृति, आदर्श, जीवनमूल्यों का परिचायक होता है। जैसे—किसी का नाम गंगासिंह, किसी का बिशनसिंह, रामलाल जैन, रामलाल आर्य आदि। प्रश्न उठता है कि उसका नाम गंगासिंह ही क्यों पड़ा। बिशनसिंह या रामलाल जैन, रामलाल आर्य ही क्यों पड़ा? उसका नाम मैक्डोनाल्ड क्यों नहीं हुआ? या खुदाबख्श क्यों नहीं हुआ? मोलीटोव क्यों नहीं हुआ? यही नाम क्यों पड़ा? आज जो अपने देश के लोग दूसरे देशों में जाकर बस गए हैं। कोई केनेडा तो कोई अमरीका में। वहां के नागरिक भी बन गए। अब जो बच्चे होते हैं उनका नाम भी अमरसिंह ही क्यों रखते हैं? वास्तव में हम जो नाम रखते हैं उसके साथ हमारी भावना जुड़ी रहती है।

आज राजनीति त्याग का क्षेत्र नहीं भोग का क्षेत्र

आज राजनीति में त्याग का मौका नहीं है। तो भी त्याग कर सकते हैं। जैसे जनक महाराज ने किया। भरत ने आदर्श रखा। लेकिन राजनीति 'स्वाभाविकतः त्याग का क्षेत्र है', ऐसा नहीं कह सकते। त्याग कोई करेगा तो कर सकता है। लेकिन वह स्वाभाविक, नैसर्गिक, प्राकृतिक त्याग का क्षेत्र नहीं है। वह भोग का क्षेत्र है।

आज कांग्रेस का मेम्बर बनना यानी कुछ पाने की बात होगी, खोने की नहीं। सार यह है कि राजनीति में तब त्याग था। उस जमाने में राजनीति में जाना यानी लाठी खाना, जेल जाना, मार खाना, कोड़े खाना, फांसी चढ़ना आदि। यह सारा राजनीतिक क्षेत्र में होता था। आज राजनीति में त्याग नहीं है। त्याग धर्म में, समाज सेवा में है। यदि राज्य सत्ता से क्रान्ति होती तो गौतम बुद्ध सत्ता का त्याग क्यों करते? अत: गांधीजी ने भी इसीलिए कहा था—कांग्रेस को भंग कर दो।

स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात्

चोटी के नेताओं में प्राय: सभी के बारे में यह सत्य है कि उनका राजनीतिक जीवन अब सिमट कर केवल दो भागों में विभक्त हो गया है। एक तो वह जो स्वतंत्रतापूर्व का जीवन था और दूसरा वह, जो उसके बाद राष्ट्रनीति और उसकी विकासशील कल्याणकारी योजनाओं से सम्बद्ध हुआ। इन सबका स्वतंत्रतापूर्व का जीवन चाहे कितना भी विविध क्यों न रहा हो, पर स्वतंत्रता-प्राप्ति के दिन सब मिलकर राष्ट्रीय त्याग और तपस्या का एक ऐसा समुद्र बन गया जिसमें तत्कालीन इतिहास की छोटी-बड़ी लहरियों के निर्विकार रूप को आज भी देखा जा सकता है। वह सामूहिक त्याग और तपस्या का जीवन था। जो लोग भी उस समय उसमें आए, केवल कर्तव्य बुद्धि से आये थे। उनमें फलाशा नहीं थी। वह एक सामूहिक यज्ञ था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की आहुति अग्नि की एक ही शिखा प्रज्वलित करती थी। वह एक अनवरत संग्राम का युग था। उस समय केवल एक सेनापति था और बाकी सब सैनिक थे।

युवक

आधुनिक विश्व इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि अनेक देशों में जो समाज परिवर्तन, लोकतांत्रिक क्रान्ति एवं नवजागरण के आन्दोलन हुए हैं और हो रहे हैं उनमें विद्यार्थी समाज का योगदान सबसे बड़ा है।

आखिर इतिहास निर्माण कौन कर सकता है? क्या दुर्बल नस-नाड़ियों वाले वृद्ध? क्या नन्हे-नन्हे अंगों वाले शिशु? क्या सुकुमार-कोमलांगी असूयम्पश्या ललनायें? निश्चय ही यह उत्तरदायित्व युवा छात्रों पर ही है। अपनी नसों में जवानी का गर्म खून रहते, अपनी उमंग के जवान रहते, अपनी भरपूर जवानी में यदि इतिहास का निर्माण न हुआ तो कब होगा?

हिन्दूधर्म की विशेषताएं

1. हिन्दू धर्म ईश्वर को सर्वव्यापी मानता है। अन्य धर्म मानता है कि ईश्वर केवल बहिश्त या हैवन में रहते हैं।

2. हिन्दूधर्म मानता है कि ईश्वर आत्म के रूप में हरेक जीव के हृदय में है। अन्य धर्म मानते हैं कि ईश्वर किसी के अंदर नहीं रहते। मनुष्येतर प्राणियों में तो आत्मा ही नहीं है।

3. हिन्दूधर्म जन्मान्तर को मानता है। अन्य धर्म नहीं मानते।

4. हिन्दूधर्म के अनुसार अपने सुख दुःख के लिए जीव के पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मफल ही जिम्मेदार हैं।

अन्य धर्म मानते हैं कि ईश्वर ने अकारण ही केवल अपने मनोविनोद के लिए जीवों को सुखी-दुःखी बना दिया।

5. हिन्दूधर्म गो हत्या को महापाप मानता है अन्य धर्म उसे पुण्य मानते हैं।

6. हिन्दूधर्म मोक्षप्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानता है, स्वर्ग को नहीं। अन्य धर्म केवल मात्र स्वर्ग के सुख को ही परम पुरुषार्थ मानते हैं।

7. हिन्दूधर्म के अनुसार मृत्यु के साथ-साथ ही जीव अपने-अपने कर्मानुसार स्वर्ग, नरक या मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अन्य धर्म मानता है कि मृत्यु के बाद जीव यावत्चन्द्रदिवाकरौ कब्र में पड़ा रहता है।

8. हिन्दूधर्म मानता है ईश्वर की इच्छामात्र से ही जगत् की सृष्टि हुई है। अन्य धर्म मानता है पहले पृथ्वी की सृष्टि की उसके तीन दिन बाद सूर्य की सृष्टि की है। सिवाय सूर्य के दिन-रात कैसे बने?

9. हिन्दूधर्म में आत्मा को शुद्ध माना गया है। पाप-पुण्य मन का विषय है।

अन्य धर्म जीवात्मा को जन्म से ही पापी मानता है।

10. हिन्दूधर्म के अनुसार ध्यानावस्थित अवस्था में ईश्वर का दर्शन करके मुक्त हो सकते हैं। ईश्वर स्वयं ही भक्त का उद्धार करते हैं। अन्य धर्म में खुदा को कोई नहीं देखता। पैगम्बर या ईश्वर के पुत्र के पास क्षमा मांगने पर वे ईश्वर से कह कर क्षमा दिलाएंगे। वहां भक्त से भगवान् का सीधा संबध नहीं है।

11. हिन्दूधर्म मानता है कि भक्तों की रक्षा, दुष्कृतकारी का विनाश एवं धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए भगवान् स्वयं अवतार लेकर प्रगट होते हैं। किन्तु अन्य धर्म ऐसा मानते हैं कि ईश्वर का अवतार नहीं होता उनके पुत्र या पैगंबर आते हैं।

12. हिन्दूधर्म के अनुसार ईश्वर प्रत्येक जीव के परम पिता हैं और जीव उनके पुत्र हैं। किन्तु अन्य धर्म मानते हैं कि केवल यीशु ही ईश्वर का पुत्र है अन्य कोई नहीं।

13. हिन्दूधर्म का मत है जो पुण्य करेगा वही स्वर्ग में जायेगा, जो पाप करेगा वह नरक में जायेगा। अन्य धर्म का मत है कि जो पैगंबर को मानेगा वह उनकी सिफारिश से स्वर्ग में जायेगा और जो ईश्वर के पुत्र को नहीं मानेगा पुण्यकर्म करने पर भी वह नरक में जायेगा। आज से 2014 साल पहले बने हुए कायदे से करोड़ों वर्ष पहले जन्मे और मरे जीवों का विचार कैसे खुदा कर पाएंगे?

14. हिन्दूधर्म के अनुसार प्राणीहत्या पाप है। क्षत्रियों के लिए युद्ध करना पाप नहीं। सर्वसाधारण के लिए आत्मरक्षा के लिए आततायी को मारना पाप नहीं।

अन्य धर्म में काफिर एवं हिडेनों को मारने से पाप नहीं।

15. हिन्दूधर्म में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य। अन्य धर्मों में ब्रह्मचर्य पालन का कोई आदेश नहीं है।

16. हिन्दूधर्म सर्वेश्वरवाद को मानता है। ईश्वर में सब है और सब में ईश्वर है ऐसा मानता है।

किन्तु अन्य धर्म एक ईश्वर को मानते हैं और वे सर्वत्र नहीं हैं।

17. हिन्दूधर्म देवताओं का पूजन करता है किन्तु ईश्वर के रूप में नहीं करता केवल भौतिक पदार्थ की प्राप्ति के लिए करता है।

अन्य धर्म भी देवताओं के स्थान पर फरिश्ता, जिब्राइल एडोल्स वगैरह मानते हैं।

18. हिन्दूधर्म मूर्ति के माध्यम से ईश्वर की पूजा करता है। किन्तु अन्य धर्म मक्का के काबा केवलेश्वर (मक्केश्वर महादेव) को खुदा का स्वरूप मानकर पूजा करते हैं।

'हिन्दुत्व भिन्न-भिन्न मत-विश्वासों समस्वर संगीत है, एक विविध रंगों के फूलों का गुलदस्ता है। अनन्त विविधरूपता के उपरान्त भी हिन्दुत्व एक है और उसने युगों से भारत को एक बनाये रखा है। हिन्दू भारत में धार्मिक एकता सदा से लेकर अभी तक उतनी ही सुदृढ़ है, जितनी की अन्य देशों में राजनीतिक एकता। हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम में इम्फाल से श्रीनगर तक और केदारनाथ से कन्याकुमारी तक, हिन्दुत्व ने सब प्रान्तों में एकसमान संस्कृति, एकसमान चरित्र और एकसमान धर्म विकसित किया है। चाहे कहीं रंग भिन्न हों, फिर भी अनिवार्य सारतत्त्व एक और अभिन्न ही है।

रोम्यां रोलां

हिन्दू धर्म की महत्ता

1. हिन्दू धर्म संसार का प्राचीनतम एवं महत्तम धर्म है। वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। हिन्दू धर्म का आधार ईश्वर की वाणी वेद ही है।

2. जहाँ ईसाई मत एवं मुसलमान मत केवल संप्रदाय मात्र हैं, हिन्दू ही केवल धर्म है। मानव मात्र के लिए पवित्र जीवन का संदेश देने वाला मानव धर्म है।

3. जहाँ ईसाई मत एवं मुसलमान मत ईसा तथा मुहम्मद नामक व्यक्तियों द्वारा प्रारम्भ किये हुए हैं, हिन्दू धर्म शाश्वत एवं सनातन है। वह किसी व्यक्ति द्वारा प्रारम्भ नहीं किया गया। अतः किसी महापुरुष के होने या न होने से इस धर्म का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

4. हिन्दू वह है जो इस देश भारत को ही अपनी जन्मभूमि, पितृ-भूमि, पुण्यभूमि एवं अपना सर्वस्व मानते हैं। यही उसके हेतु धर्म और कर्म की भूमि है। हिन्दू का भारत से जन्म, मरण एवं जन्मान्तर का भी संबंध है। हिन्दू मात्र की समूची श्रद्धा भारत के भीतर ही है। भारत के बाहर कहीं नहीं। मुसलमान की पुण्यभूमि भारत नहीं अरब देश है तथा ईसाइयों के लिए येरूशलम पुण्यभूमि बन जाती है, भारत नहीं। इस तरह भारत में रहते हुए भी अहिन्दुओं की श्रद्धा भारत के बाहर चली जाती है। इसीलिए वे पाकिस्तान के नाम पर देश के टुकड़े करते हैं तथा नागालैण्ड और छोटानागपुर को अलग ईसाई राज्य बनाकर भारत को खण्ड-खण्ड करना चाहते हैं।

5. हिन्दू धर्म पूर्णतया स्वदेशी धर्म है। इसकी सभी शाखाएँ भारत में ही जन्मी तथा फली-फूली हैं। अतः हिन्दू धर्म ही भारत का धर्म है। इसी के उत्थान से भारत का उत्थान होगा।

6. हिन्दू धर्म की सभी शाखाएँ इस सत्य में विश्वास रखती हैं कि आत्मा अजर-अमर और अविनाशी है।

7. सभी हिन्दू कर्म के सिद्धान्त को मानते हैं। मनुष्य जो अच्छा-बुरा कर्म करता है, उसके अनुरूप परमेश्वर द्वारा उसका फल मिलता है।

8. हिन्दू मात्र मोक्ष या मुक्ति या निर्वाण को जीवन का चरम लक्ष्य मानता है।

9. हिन्दू गायत्री मंत्र के द्वारा अपनी बुद्धि को उज्ज्वल बनाने के लिए प्रार्थना करता है।

10. हिन्दू सारे संसार भर को अपना कुटुम्ब मानकर, सब को प्रभु की संतान मानकर सबके कल्याण के लिए नित्य प्रार्थना करता है। वह अहिन्दुओं के समान किसी को 'काफिर' या 'नास्तिक' कहकर गाली नहीं देता।

अतः सभी जीव मात्र का कल्याण चाहने वाला, किसी से घृणा नहीं करने वाला, यह विश्वव्यापी महान् हिन्दू धर्म ही सब धर्मों की माता है, सच्चा मानव धर्म है, आधुनिक काल में स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी योगानंद इत्यादि महापुरुषों ने यूरोप तथा अमरीका में भी इसी महान् हिन्दू धर्म के विजय के डंके बजाए तथा अनेक यूरोपियन एवं अमरीकन लोगों को भी इस महान् हिन्दू संस्कृति का अमृत पिलाया।

इस महत्तम धर्म का पालन करके हम पुनः इस हिन्दू धर्म के पावन संदेश से दुःखी मानवता को शान्ति प्रदान कर अपनी खण्डित मातृभूमि के अखण्ड सौभाग्य का निर्माण कर सकते हैं।



क्या अद्भुत देश है यह! इस पुण्य भूमि पर चाहे जो खड़ा हो—वह इस भूमि का पुत्र हो अथवा विदेशी—यदि उसकी आत्मा दुर्दान्त पशुओं के स्तर तक नहीं गिर चुकी है—तो वह स्वयं को पृथ्वी के इन श्रेष्ठतम एवं शुद्धतम पुत्रों के तेजोमय विचारों से घिरा हुआ अनुभव करेगा, जो शताब्दियों तक पशु को देवत्व के शिखर तक उठाने के लिये कार्य करते रहे हैं और जिनका आरम्भ खोजने में इतिहास भी असफल रहा है। यहाँ का वायुमण्डल ही आध्यात्मिकता की तरंगों से ओत-प्रोत है।

—स्वामी विवेकानन्द



यमुना स्तम्भ का आह्वान (कुतुब मीनार या यमुना स्तम्भ?)

मैं भारत की राजधानी दिल्ली की छाती में खड़ा हुआ भारत का एक उच्चतम स्तम्भ 'यमुना स्तम्भ' हूँ। मैं दिल्ली की धरती पर पिछले साढ़े सात सौ वर्षों से खड़ा हुआ पिछली आठ सदियों के इतिहास का साक्षी हूँ। मैंने देखा तो नहीं पर सुना अवश्य है कि मेरे जन्म से बहुत पहले लगभग आठ हजार वर्ष हुए रघुवंश के महान् प्रणवीर नृपति सम्राट् दिलीप ने दिल्ली को बसाया था। कालांतर में उसी सूर्यवंश के एक नृपति चतुर्भुज ने हस्तिनापुर को जीतकर दिल्ली को राजधानी बनाया। द्वापरयुग में पाण्डवों ने वर्तमान खाण्डसा गाँव के पास के विशाल खाण्डव वन को जलाकर इन्द्रप्रस्थ नामक प्रसिद्ध राजधानी बसायी। कहा जाता है कि मेरे पार्श्व में जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की लोहे की लाट खड़ी है उसकी आयु मेरे से तिगुनी लम्बी है। किन्तु जहाँ मेरी दो मंजिलें काल-कवलित हो चुकी हैं वहाँ उस पर अभी तक जंग या मोर्चा तक नहीं लगा। काल की डाहभरी आँखों से बची हुई वह लोहे की अनोखी लाट किसने गाड़ी थी, कौन जानता है, किन्तु मैंने इतिहासकारों को प्रायः उसके पास खड़े होकर यह चर्चा करते सुना है कि वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का विजयस्तम्भ है तथा उस पर उस प्रतापी राजा की कीर्ति अंकित है। पास ही खड़ा भग्नप्राय किला भी विमल कीर्ति सम्राट् विक्रमादित्य का माना जाता है। मैंने इतिहासकारों के मुख से ही सुना है कि महरौली का वह शिलालेख विक्रमादित्य तथा कालिदास का काल-निर्णय करने में अतिशय सहायक सिद्ध हो रहा है। यह महरौली की जनता अपने गाँव का नाम 'महा-अरावली' मानती है।

भोले-भाले ग्रामीण यह भी कहते हैं कि उस लोहे की अनोखी कीली के स्थान पर धर्मराज युधिष्ठिर ने बड़ा भारी यज्ञ किया था या अपने राज्य को सदा स्थिर रखने के विचार से ज्योतिषियों से पूछकर धरती के केन्द्र में एक कीली ठुकवाई। कीली ठीक से केन्द्र में ठुक गई। किन्तु धर्मराज को सन्देह रहा कि शायद ठीक केन्द्र मिला या नहीं। जब कीली को उठाया गया तो धरती को उठाने वाले

शेषनाग के शीश में लगने के कारण वह खून से लथपथ हो गई थी। जो पुनः कीली लगाई गई तो शेष ने अपना फण उस स्थान से हटा लिया था। ऐसी कहानियाँ मैंने अनपढ़ ग्रामीणों के मुख से अनेक बार सुनी हैं।

लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् राजा अनंगपाल दिल्ली के स्वामी बने। वे पाण्डवों के वंशज कहलाते थे। तत्पश्चात् महान् नरकेसरी पृथ्वीराज चौहान ने दिल्ली को राजधानी बनाकर इस धरती का गौरव बढ़ाया। उनकी एक प्यारी पुत्री प्रतिदिन यमुना का दर्शन करके ही भोजन किया करती थी। किन्तु उस कोमलांगी बालिका का प्रतिदिन कालिन्दी के तट तक पहुँचना कठिन था। अतः दिल्लीपति सम्राट् पृथ्वीराज चौहान ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के उस लौह स्तम्भ के पास ही मेरा निर्माण प्रारम्भ कराया। कई वर्षों के परिश्रम से मेरा निर्माण हुआ तथा मेरा नाम 'यमुना स्तम्भ' रखा गया। मेरी उस समय भी पाँच मंजिल ही थी। उन दिनों कालिन्दी मेरे से थोड़ी दूरी पर ही बहती थी तथा प्रतिदिन मेरी चोटी से पृथ्वीराज की पुत्री उसके दर्शन करती थी। अब यमुना तो मुझसे दूर चली ही गई है, मेरा नाम 'यमुना स्तम्भ' भी मुझसे छिन गया है। आज मुझे जब 'कुतुब-मीनार' के झूठे नाम से पुकारा जाता है तब मेरा पत्थर का कलेजा भी फटना चाहता है। मैंने देखा १७ बार पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को पराजित किया। किन्तु देशद्रोही जयचन्द ने भाई से द्वेष के कारण मान को वेश्यागिरी में बेच डाला। जब मैंने सम्राट् पृथ्वीराज को बन्दी अवस्था में घसीटकर गजनी ले जाते हुए देखा तो मैं आपादमस्तक काँप उठी। गजनी में पृथ्वीराज की आँखें निकालने का समाचार सुनकर तो मेरी पत्थर की आँखों से भी आँसू फूट पड़े।

पृथ्वीराज के पश्चात् उनका भाई हरिराज अजमेर के सिंहासन पर बैठा तथा उनका सुपुत्र दिल्ली की गद्दी का स्वामी बना। किन्तु गुलाम वंश के तुर्क शासक कुतुबुद्दीन ऐबक ने अजमेर पर हमला कर दिया। हरिराज को परिवार समेत चिता की ज्वालाओं में कूदकर राजपूती सम्मान को बचाना पड़ा। दिल्ली में पृथ्वीराज के बेटे को पराजित कर कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने अपवित्र हाथ मेरी ओर भी बढ़ाए। उसने 27 हिन्दू मन्दिरों को तुड़वाकर उनकी सामग्री से मेरे समीप ही एक बड़ी मस्जिद बनवाई जिसका नाम 'कुब्बत-उल-इस्लाम' अर्थात् 'इस्लाम की शक्ति' रखा। मैंने मौन व्यंग्य किया—'क्या दूसरों के धर्म-स्थान गिराना 'कुब्बत-उल-इस्लाम' है या 'जिल्लत-उल-इस्लाम'। ऐबक गुलाम वंश का था। उसके मन में गुलामी तथा कमीनापन घर कर चुके थे। उसने उस व्यंग्य का दण्ड देने के लिए हजारों मजदूर-कारीगर लगाकर तेज नश्तरों द्वारा मेरी छाती से संस्कृत के श्लोक तथा हिन्दू धर्म के चिह्न उखाड़ने शुरू कर दिये। जैसे देश में हिन्दुओं की यज्ञोपवीत-शिखा जबर्दस्ती काटकर उनके धर्म पर डाका डाला जा रहा था वैसे

ही मुझे बलात्कार से मुसलमान बनाया गया, हर छेनी और हथौड़े की मार पर मैं चीत्कार कर उठी पर उस राक्षसी शासन में मेरा अरण्यरोदन कौन सुनता था। मुझे जबर्दस्ती कलमा-नमाज पढ़ाकर मेरा नाम 'शेख कुतुब मीनार' रख दिया था। किन्तु मैं हृदय से हिन्दू ही रही। हर इतिहासकार को मैं अपनी मौन भाषा में पुकार-पुकारकर कहती, 'मैं हिन्दू हूँ , निश्चय ही हिन्दू हूँ। मुझे मुसलमान कहकर मेरे जख्मों पर नमक मत छिड़को।' किन्तु पत्थर के कलेजे की चीत्कार कौन सुनता। सदियों तक मुझे तुर्क और पठान-कला का नमूना माना जाता रहा। कुतुबुद्दीन के पीछे अल्तमश ने मेरे ऊपर दो मंजिलें अवश्य बनवाई थीं जिनमें से एक तूफानों के थपेड़ों से गिर गई। एक यूरोपीय इतिहासकार ई. बी. हबेल ने मेरे छिपे हुए हिन्दुत्व की ध्वनि सुन ली। उसने देखा कि मैं उसी हिन्दू कला का वरदान थी जिसने चित्तौड़ के महल तथा राजस्थान के विजयस्तम्भ निर्माण किए थे। गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर के भूतपूर्व इतिहास-प्राध्यापक रायबहादुर कंवरसेन, बार-एट-लॉ ने भी मेरी करुण पुकार सुनी। उन्होंने मेरी निर्माण-कला में छिपे हुए कमल के फूल तथा घंटियाँ देखीं, चौथी मंजिल पर संस्कृत के दो शिलालेख देखे, सारे स्तम्भ का हिन्दू स्वरूप देखा तथा मुझे पुनः हिन्दू घोषित किया। मुसलमान-कला की मीनार तो बीजापुर की चारमीनार जैसी है। मैं उनसे सर्वथा भिन्न, चित्तौड़ के विजयस्तम्भ जैसी हूँ। क्या भारतीय जनगण मुझे इतिहास के सत्यान्वेषी-चक्षुओं से देखकर मुझे मेरा धर्म लौटा देंगे?

थाईदेश में एक उषा का मंदिर है, जो सात खण्ड ऊँचा है। उसके सात खण्डों के नाम—भू लोक, भुवः लोक, स्वः लोक, महालोक, जनःलोक, तपःलोक और सत्यम्लोक है। प्रातःकाल प्राची दिशा में उषा की लालिमा छिटक जाने पर वे वेद के उषा सूक्त से सुनहरी उषा का स्तवन करते हैं और परस्पर एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं—उषा-स्वस्ति। वे Good Morning न बोलकर संस्कृत का अभिवादन उषा स्वस्ति ही कहते हैं। दिन को परस्पर मिलने पर दिवा स्वस्ति, संध्या को भेंट होने पर सांध्य स्वस्ति और रात्रि को अंतिम अभिवादन निशा स्वस्ति कहते हैं।

—डॉ. हरवंशलाल ओबराय



आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज